



अथर्ववेद

प्रथम भाग

(अथर्ववेदके प्रथम तीन काण्ड)

[मूल मंत्र, अर्थ, स्पष्टीकरण और सूत्रावलीका वर्गीकरण तथा
उनके उपयोग करनेकी विधिके साथ]

लेखक

प. श्रीपाद दामोदर सातवनेकर
साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार
अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल, पारडी [त्रि मुक्त]

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

★

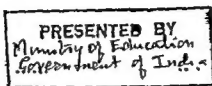
मूल्य ८) रु.

પ્રકાશક :

વસન્ત શ્રીવાદ સાતવહેકર, બી. ઇ.,

સ્વાધ્યાય મંડળ,

પોસ્ટ- 'સ્વાધ્યાય મંડળ (પારઘી)' પારઘી [જિ. સુરત]



બન્ ૧૯૫૮ : સપ્ટે ૧૦૧૫ : શક ૧૯૭૬

દ્વિતીય વાર

પુસ્તક :

વસન્ત શ્રીવાદ સાતવહેકર, બી. ઇ.,

માસ-ગુરુનાલય, સ્વાધ્યાય મંડળ,

કે ૧૩- 'સ્વાધ્યાય મંડળ (પારઘી)' પારઘી [જિ. સુરત]

ॐ

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंका

प रि च य

—

अथर्ववेदमें २० काण्ड हैं। उनमें प्रथम तीन काण्डोंका यह प्रथम भाग है। इसमें सूक्त और मंत्र संख्या इस तरह है—				चतुर्थ अनुवाक		
				द्वितीय प्रपाठक		
प्रथम काण्ड				१७	रक्तश्राव घट करना	४
				१८	सौभाग्यवर्धन	४
प्रथम अनुवाक				१९	क्षत्रनाशन	४
प्रथम प्रपाठक				२०	महानद्यासक	४
सूक्त संख्या	दीर्घक	मंत्र संख्या	२१	प्रजोपाक	४	२०
१	सुदिसंबर्धन	४	पंचम अनुवाक			
२	विजय	४	२२	हृदयभोगनिवारण	४	
३	भारोग्य, मूलदोष निवारण	९	२३	श्वेतकुष्ठनाशन	४	
४	जल	४	२४	कुष्ठनाशन	४	
५	"	४	२५	घीसगर दूरीकरण	४	
६	"	४ १९	२६	मुत्रनाति	४	
द्वितीय अनुवाक				२७	विश्वी घी	४
७	धर्मप्रचार	४	२८	दुष्टनाशन	४	२८
८	"	४	पष्ठ अनुवाक			
९	वधःप्राप्ति	४	२९	वायुसंबर्धन	४	
१०	वायुसे मुक्ति	४	३०	वायुसंबर्धन	४	
११	गुणवर्धन	६ २५	३१	वायुतापक	४	
तृतीय अनुवाक				३२	जीवन-रस-महाभाग	४
१२	रोगनिवारण	४	३३	जल	४	
१३	हृदयको जलन	४	३४	मधुसिद्धा	४	
१४	कुष्ठरूप	४	३५	वज्र और दीर्घांगुष्ठ	४	३१
१५	रोगहर-महाभाग	४				१५१
१६	जीवन-रस	४ २०				

१२ मन्त्र हैं । ७ मन्त्रोंवाला एक सूक्त है और ९ मन्त्रोंवाला एक सूक्त है इस तरह—

४ मन्त्रवाले ३० सूक्त १२० मन्त्र	
५ ,, वाला १ ,, ५	
६ ,, वाले २ ,, १२	
७ ,, वाला १ ,, ७	
९ ,, वाला १ ,, ९	
१५३ कुल मन्त्र संख्या ।	

इस प्रथम काण्डकी प्रकृति ४ सूक्तवाले मन्त्रोंकी है अब द्वितीय काण्ड देखिये—

अब द्वितीय काण्डकी प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मन्त्र संख्या इस तरह है वह देखिये—

द्वितीय काण्ड		
तृतीय प्रपाठक		
प्रथम अनुवाक		
सूक्त संख्या	शीर्षक	मन्त्र संख्या
१	गुह्य अग्न्यामविद्या	५
२	पूजनीय ईदवर	५
३	भारोग्य	६
४	जह्निह भग्नि	६
५	छात्रियधर्म	७ २९
द्वितीय अनुवाक		
६	माझगधर्म	५
७	शापको कौटाना	५
८	अग्निप्रयोग दूर करना	५
९	मन्त्रिवात दूर करना	५
१०	दुर्गतिसे बचना	८ २८
तृतीय अनुवाक		
११	आमाके गुण	५
१२	मनका बल बढ़ाना	८
१३	बन्धनरिवाज	५
१४	बिरगियोंको हटाना	६
१५	निर्भयजीवन	६
१६	विश्वभरकी भग्नि	५
१७	आमपहलनका बल	७ ४३

चतुर्थ अनुवाक
चतुर्थ प्रपाठक

१८	आत्मसंरक्षणका बल	५
१९	सुद्धिकी विधि	५
२०	” ”	५
२१	” ”	५
२२	” ”	५
२३	” ”	५
२४	डाकुओंकी असफलता	८
२५	शुश्रूषणी	५
२६	गोस	५ ४८

पंचम अनुवाक

२७	विश्वप्रसाधि	७
२८	दीर्घायुष्य	५
२९	”	७
३०	पतिपत्नीका मेल	५
३१	रोगोत्पादक क्रमि	५ २९

षष्ठ अनुवाक

३२	हृमिनाशन	६
३३	यक्षमनाशन	७
३४	सुक्तिका मार्ग	५
३५	पशुमें आत्मसमर्पण	५
३६	विवाहका मंगल कार्य	८ ३१

२०७

इस काण्डमें ५ मन्त्रोंवाले सूक्त २२ हैं और मन्त्र ११० हैं ।

०	१	६	५	५	५	३०
०	०	७	५	५	५	३५
०	०	८	५	५	५	३९

द्वितीयकाण्डकी मन्त्र संख्या २०७

इस द्वितीय काण्डकी प्रकृति ५ मन्त्रोंके सूक्तोंकी है क्योंकि ३६ सूक्तोंमें २२ सूक्त ५ मन्त्रोंके हैं ।

अब तीसरे काण्डके प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त और मन्त्र देखिये—

तृतीय काण्ड			२८	पशुस्वास्थ्यरक्षा	६
पंचम प्रपाठक			२९	संरक्षक कर	८
प्रथम अनुवाक			३०	एकता	७
सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	३१	पापकी निवृत्ति	११ ४४
१	शत्रुसेना-संमोहन	६			२३०
२	"	६	इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं मंत्र संख्या ७८ है—		
३	राजाकी राज्यपर पुनः स्थापना	६	७	" ६ "	४२
४	राजाका चुनाव	७	८	" ६ "	४८
५	राजा और राजाके बनानेवाले	८ ३३	९	" २ "	१८
द्वितीय अनुवाक			१०	" २ "	२०
६	वीरपुरुष	८	११	" वाला १ " इसकी "	११
७	आनुवंशिक रोगोंका दूर करना	७	१२	" १ "	१३
८	राष्ट्रीय एकता	६	३१ सूक्त २३० मंत्र		
९	कृषि प्रतिबंधक उपाय	६	इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं अतः इस काण्डकी		
१०	कालका यज्ञ	१३ ४०	प्रकृति ६ मंत्रवाले सूक्तोंकी है ऐसा कह सकते हैं । तीनों		
तृतीय अनुवाक			काण्डोंकी मंत्र संख्या यह है—		
११	हवनसे दीर्घायुत्व	८	१ काण्ड सूक्त ३५ मंत्र संख्या १५३		
१२	गृह-निर्माण	९	२	" " ३६ "	२०४
१३	जल	७	३	" " ३१ "	२३०
१४	गोशाला	६	५९० कुल मंत्र संख्या		
१५	वाणिज्यसे धनप्राप्ति	८ ३८	इन सूक्तोंके क्रमको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि,		
चतुर्थ अनुवाक			इन सूक्तोंकी स्थापना विषयानुसार नहीं है । इसकी रचना		
षष्ठ प्रपाठक			विषयानुसार की जाय, तो पाठकोंको वेदका विषय समझ-		
१६	भगवानकी प्रार्थना	७	में सुगमता होगी । इन तीनों काण्डोंके सूक्त विषया-		
१७	कृषिसे सुख	९	नुसार हफ्ते किये तो इस तरह होते हैं—		
१८	वनस्पति	६	१ ईश्वर— ११३ ईश्वरको नमन, २११ अभ्यारम्भविद्या,		
१९	ज्ञान और शौर्य	८	२१२ पूजनीय हृदय, २१६ विचित्रभरकी भक्ति, ३१६ भग-		
२०	तेजस्विताके साथ अभ्युदय	१० ४०	वानकी प्रार्थना, २११ भारमाके गुण ।		
पंचम अनुवाक			० मुक्ति— २१३४ मुक्तिका मार्ग ।		
२१	कामाग्निदाशन	१०	३ शासक— १२० महान् शासक, १२१ प्रजा		
२२	वर्ष प्राप्ति	६	पालक, ३१३ राजाकी राज्यपर स्थापना, ३१४ राजाका चुनाव,		
२३	वीरपुरुषप्राप्ति	६	३१५ राजा और राजाके बनानेवाले, १३१ आशायाशुकर,		
२४	समृद्धिकी प्राप्ति	७	१२९ राष्ट्रसंवर्धन, ३२९ संरक्षक कर ।		
२५	कामका वाण	६ ३५	४ युद्ध— ३१७-२ शत्रुसेना संमोहन ।		
षष्ठ अनुवाक			५ विजय— १२२ विजय, २२७ विजय प्राप्ति, २१५		
२६	उपश्रितिकी शिक्षा	६			
२७	अभ्युदयकी शिक्षा	६			

धन्निवधर्म, ३११९ ज्ञान और शौर्य, ३१२० तेजस्वितासे सम्बन्ध ।

६ बुद्धि— १११ बुद्धिका सर्वधन, २११२ मनका बल बढ़ाना ।

७ आरोग्य— ११३, २१३ आरोग्य, ११३२ जीवनरक्ष, ११३ रोगनिवारण, ११३२ द्रव्योपनिवारण, ११३३-२४ श्वेतकुष्ठ, कुष्ठनाशन, ११२५ क्षीयस्वर, २१९ संधिवातनाशन, २१८ क्षेपितरोगनाश, २१३१ रोगोत्पादककृमि, २१३२ कृमि नाशन, २१३३ यक्ष्मनाशन, ३१० आनुवंशिक रोग दूर करना ।

८ दीर्घमायु— ११३० आयुर्व्यवधेन, ११३५ बल और दीर्घमायुष्य, २१२८-२९ दीर्घमायुष्य, ३१११ हवनसे दीर्घमायुष्य ।

९ धन— ३११५ वाणिज्यसे धनकी प्राप्ति, ३१२४ समृद्धि की प्राप्ति ।

१० पापसे मुक्ति— १११० पापसे मुक्ति, ३१३१ पापसे निवृत्ति, २११० दुर्गतिसे बचना, २११४ विपत्तिको हटाना ।

११ तेजस्विता— ११९, ३१२० वर्च प्राप्ति ।

१२ यज्ञ— २१३५ यज्ञमें आत्मसमर्पण ।

१३ स्नेहटन— १११५ सघटन यज्ञ, ३१८, ३१३० राष्ट्रीय पुकता ।

१४ सुगमाप्ति— ११२६ सुगमाप्ति ।

१५ आरमरक्षण— २११०, १८ आरमरक्षण बल ।

१६ निर्मयता— २११५ निर्मयप्रवृत्ति ।

१७ वीर— ३१४ वीर पुण्य, ३१३३ वीरपुत्र ।

१८ अमृतद्वय— ३१२० अमृतद्वयकी द्रिया ।

१९ श्रेष्ठमनियथ— ३१९ श्रेष्ठ दूर करना ।

२० शुद्धता— २११९-२३ शुद्धि ।

२१ गृहनिर्माण— ३११२ गृहनिर्माण, ३११४ गोशाला ।

२७ धर्म— ११७-८ धर्मप्रचार ।

२८ जल— ११४, ५, ६, ३२, ३१३३ जल ।

२९ काम— ३१२१ कामाग्रिका धामन, ३१३५ कामका याग ।

३० कृषि— ३११७ कृषिसे सुख ।

३१ प्रसूति— ११११ सुख प्रसूति ।

३२ मणि-धारण— २१४ जगिहमणि ।

३३ श्राप— २१७ श्रापको कौटाना ।

३४ वनस्पति— २१२५ पृथिवीपर्वी, ३११८ वनस्पति ।

३५ पशु— ३१२८ पशुस्वास्थ्य रक्षण ।

३६ पतिपत्नी— २१३६ विवाह मंगल कार्य, २१३० पतिपत्नीका प्रेम ।

३७ काल— ३११० कालका यज्ञ ।

३८ रक्तघ्राय— १११७ रक्तघ्राय बन्ध करना ।

३९ चोर डाकू— २११६ चोरनाशन, १११९ छद्मनाशन, ११२८ दुष्टनाशन, २१२४ डाकूमोकी असफलता ।

हस तरह सुक्तोंकी विषयानुसार व्यवस्था की जाय तो इस व्यवस्थासे वैदिक सुक्तोंका बोध भीम और सुखसे हो सकता है । भाषा है कि पाठकगण इसका विचार करेंगे । हमने इस समय जैसी सुक्तोंकी व्यवस्था है वैसी ही रखी है ।

वैदिक सूक्तियाँ

हस समय विभागमें ३ कण्डोंके सब सुक्त आगये हैं वे ऐसे हैं—

प्रथम	काण्ड	सूक्त	३५	मंत्रसंख्या	१५३	पृष्ठसंख्या	१२०
द्वितीय	"	"	३६	"	२०७	"	१४८
तृतीय	"	"	३७	"	२३०	"	२४८
			१०२		५९०		५१६

गमरूप रहते हैं। जैसा बीजमें मगज होता है, वैसे मंत्रमें सुभाषित होते हैं। पाठक इनका विचार करें और प्रयोगमें भी ला सकते हैं। व्याख्यानमें छेछोंमें तथा अन्यप्रकार इनका बहुत उपयोग होसकता है और जितना इनका उपयोग होगा उतना वेद व्यवहारमें लाया गया वह सिद्ध हो सकता है।

इसके नीचे हम इन तीनों काण्डोंके सुभाषित देते हैं—

परमेश्वर

इन तीन काण्डोंमें परमेश्वर विषयक सुभाषित ये हैं—

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ।

अ. २।१।३

वह ईश्वर सब अन्य देवोंके नामोंको धारण करता है, वह एक ही सबका प्रभु है। उस प्रश्न पूछने योग्य परमेश्वरके पास सब भुवन धात्र्यार्थ जाते हैं।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यत् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

अ. २।१।१

जहाँ सब विद्वत् एकैक रूप होता है और जो हृदयकी गुहामें रहता है उसको ज्ञानी भक्त जानता है।

स नः पिता जनिता स उत बंधुर्यामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

अ. २।१।३

‘वह परमेश्वर हमारा पिता और जनक है, वही बंधु भी है। वह सब भुवनों और स्थानोंको जानता है।

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम ।

अ. २।१।५

सत्यके अमृतके सुखमय तन्तुको देखनेके लिये सब भुवनोंमें मैं घूम आया हूँ। सर्वत्र इस सुखस्वरूप अमर नारमरूप इस तन्तुको मैंने देखा है।

दिव्यो गंधर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः ।

अ. २।२।१

भुवनका एक ही दिव्य गंधर्व स्वामी है जो नमस्कारके योग्य है और प्रजाजनोंकी स्तुति करने योग्य है।

मृडाग्रन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवः ।

अ. २।२।२

भुवनका एक ही स्वामी जो नमस्कारके योग्य है, जो संशय है वही सचका आचार सबको सुखी करे।

यद्य देवा अमृतमानशानाः समाने योनाय-
ध्वैरयन्त ।

अ. २।१।५

जहाँ अमृत पीनेवाले देव उस एक आश्रय स्थानमें रहते हैं। (वह अमर परमेश्वरका आश्रय स्थान है ।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरग्निना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥

अ. २।१।१

प्रातः समय अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विन, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रको बुलाते हैं, इनकी प्रार्थना करते हैं। (एक देवके ये अनेक गुणबोधक नाम हैं ।)

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्य उत मध्ये अह्नाम् । उतोदितौ मघवत्सूर्यस्य यद्य देवानां सुमती स्याम ॥ ४ ॥

अ. २।१।४

हम सब भाग्यवान् हों, सूर्यकाळ जयवा दिनके मध्यमें, सूर्यके उदयके समय भाग्यवान् हों। हम देवोंकी सुमतिमें रहें।

तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव ।

अ. २।२।१

हे दिव्य देव । तेरे साथ ज्ञानसे मैं संयुक्त होता हूँ।

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाताः ।

अ. २।४।३

सजातीय लोग हविष्य ब्रह्मके साथ तेरे समीप आजानें।

उपसद्यो नमस्यो मवेह ।

अ. २।४।१

यहाँ पास जाने योग्य तथा नमस्कार काने योग्य हो ।

नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम् ।

अ. २।२।१

तेरा स्थान एलोकमें है, तुझे मैं नमस्कार करता हूँ।

अणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितृपितासु ।

इसके तीन पाद हृदयकी गुहामें हैं, जो वनको जानता है वह पिताका भी पिता अर्थात् बड़ा होता है।

परि आवापृथिवीं सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथम-
जामृतस्य ।

अ. २।१।४

आवापृथिवीमें मैं सर्वत्र घूम आया हूँ और सत्यके प्रथम प्रवर्तक— परमेश्वरकी मैं उपासना सर्वत्र देखता हूँ।

प्र तद्वाचं दमृतस्य विद्वान् गंधर्वो धाम परमं गुहा यत् ।

अ. २।१।२

जो हृदयकी गुहामें है वह अमृतका धंध स्थान विद्वान् वक्ता ही जानकर उसका वजन का सकता है।

स देवान् यक्षस्त उ कल्पयताद्विदाः । अ ३।११४
वह देवोंका पजन करता है, वह निश्चयसे प्रजाओंको
समर्प करता है ।

यहस्य चक्षुः, प्रभृतिर्मुखं च वाचा ध्रोत्रेण
मनसा जुहोमि । न ३।३५।५

यह प्रभु यक्षका आँख है, सयका धारण कर्ता, और
यक्षका मुख है । वाणी कान और मनसे मैं उसका पजन
करता हूँ ।

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यस्वक् अवयाता हरसो
दैव्यस्य । न ३।३।२

ईश्वर छड़ोकमें रहता है, वह पूज्य है, सूर्यके समान
तेजस्वी है और दैवी आपत्तियोंको दूर करनेवाला वही
प्रभु है ।

ये मूर्त्तियाँ बारबार पढ़नेसे, कण्ठ करनेसे, बारबार
मनन करनेसे परमेश्वर विषयक वैदिक मिथ्यागत तत्काल
प्रधानमें आसकता है । देखिये—

यो देवानां नामघा— वह देवोंके नाम धारण करने-
वाला है ।

ते सं प्रश्नं भुजना यन्ति सर्वा— सब भुवन उस
पूजने योग्य प्रभुके पास जाते हैं ।

येनस्तत्पदयत्— शानी उसको देखता है ।

परमं गुहा यत्— ओ हृदयके गुहास्थानमें रहता है ।

म न पिता जनिता— वह रक्षक और उपपन्न
करनेवाला है ।

घामानि चेद भुवनानि यिदा— सब भुवनों और
स्वाभोंको वह जानता है ।

मृतस्य मनुं यित्तं ददे कं— मृतदायक पैदा
हुआ मरुका मनु- परमात्मा है उसको मैं देवता हूँ ।

भुवनस्य परपतिः— वह भुवनोंका एक पति है ।

एष एव नमस्यः— वह एकही नमस्कार करने
योग्य है ।

प्रातर्भगं— प्रातः काल भाग्यवान् प्रभुकी भक्ति करते हैं ।
उपसद्यो भवेद्— यहाँ पास जाने योग्य हो ।

दिवि ते सघस्यं— आकाशमें तेरा स्थान है ।

त्रोणि पदा निहिता गुहास्य— इसके तीन पाद
उदितमें हैं ।

अमृतस्य विद्वान्— अमृतका जाननेवाला धन्य है ।

घाम परमं गुहा यत्— परम घाम हृदयमें है ।

स उ कल्पयताद्विदाः— वह प्रभु प्रजाओंको समर्प
यनाता है ।

अवयाता हरसो दैव्यस्य— दैवी दु.खोंको वह
प्रभु दूर करता है ।

यहाँ जो मूर्त्तियाँ दी हैं । उनके ये टुकड़े हैं । ये भी
मूर्त्तियाँ ही हैं और ये बारबार भजन करने योग्य हैं ।
'एक एव नमस्यः' प्रभु अकेला एकही नमस्कार करने
योग्य है । 'दिवि ते सघस्यं' आकाशमें तेरा स्थान है ।
'अवयाता हरसो दैव्यस्य' दैवी दु.खोंको दूर करने-
वाला वह प्रभु है । ऐसे वेदमंत्रोंके टुकड़े भजन करनेके होते
हैं । अकेला अपने मनमें इनका भजन करे, अथवा समाजमें
सैकड़ों और हजारों मनुष्य सभके साथ इन वचनोंका भजन
करें । इस तरहका भजन करनेके लिये ही ये टुकड़े हैं ।
जिनकी वेदोंपर धरता है वे अर्थपर प्रधान रखते हुए इन
वचनोंका भजन करें । यह भजन मनमें भी होता है और
तालस्वरमें सामूहिक भी हो जाता है । ऐसे अर्थसहित
भजन होने लगे तो ये मंत्रभाग सबके मनमें स्थिर होते हैं,
और इनका उपयोग बोलने बोलनेके समय होनेकी सुविधा
होती है ।

पाठक मनमें देने भजन करके देखें, भजन करनेके समय
अर्थको अपने मनमें पूर्ण शीतिले भरपूर भरकर रखें, उस
मंत्रके आगते अपना मन भरपूर भरा देना, ओठबोल भरा
दे देना भाव मनमें सुरिधर रखें । ऐसा भजन मनमें कर-
नेसे जैसा काम व्यक्तिको होता है वैसा ही काम ये ही

ईश्वर विश्वका शासक है, जो शासक होता है वह राजा ही होता है, ईश्वर शासक है और निर्दोष शासक है। अतः वह हमारे शासकोंके लिये आदर्श है। इस दृष्टिसे ईश्वरके गुण हमारे शासकोंमें देखने योग्य हैं। वे इस तरह देखे जा सकते हैं—

शासकका वर्णन

वेदमें जो वर्णन है उन मंत्रोंमें शासक, राजा, अधिकारीका वर्णन करनेवाले सुभाषित ये हैं—

सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्यन्तु । अ. ३।१।१
हे राजन् ! सब दिशा उपदिशा (ओमें रहनेवाले प्रजाजन) तुझे (अपने रक्षणके लिये) बुलावें।

तास्त्वा संविदाना ह्यन्तु । अ. ३।१।७
वे सब प्रजापद मिलकर एकमतसे तुझे बुलावें।
त्वां विशो घृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः
पञ्च देवाः । अ. ३।१।२

तुझे ये प्रजापद, तुझे ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली दिव्य प्रजापद राज्यरक्षणके लिये स्वीकार करें।

आ त्वा गन्तामू । अ. ३।१।१
हे राजन् ! तेरे पास राष्ट्र आगया है।
सजातानां श्रेष्ठ आ घेछेनम् । अ. ३।१।३
अपनी जातियोंमें वच्च स्थानपर इसकी रखो।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि अयस्व, ततो न उग्रो
विभजा वसूनि । अ. ३।१।२; ४
राष्ट्रके वच्च स्थानमें रहकर, और वहांसे सबके लिये धनोका विभाग कर दो।

माहू विज्यां पतिरेकदाह त्वं विराज । अ. ३।१।१
प्रजाओंका मुख्य स्वामी एक राजा होकर, तू विराजमान हो।

स्वस्तिदा विशांपतिर्वृष्टा विमृधो वशी ।
अ. ३।२।१।१

प्रजापालक कल्याण करनेवाला, शत्रुनाशक और घातकोंको वध करनेवाला हो।

ग्रहणस्पतेऽग्नि राष्ट्राय वर्धय । अ. ३।२।१।१
हे शानी पुरुष ! राष्ट्रके हित करनेके लिये बढ़ाओ।
ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामप्यश्नये ।
उपस्तान् पर्णे महोत्थं सर्वाङ्गं कृण्वन्ति जनान् ।
अ. ३।५।७

जो राजा और राजाओंको करनेवाले, सूत तथा ग्राम-नेता हैं वे पर्णमणे ! इन सबको मेरे समीप उपस्थित कर (उनकी सहायता मुझे प्राप्त हो ऐसा कर।)

अहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा । अ. ३।२।१।५
मैं शत्रुका नाश करनेवाला, शत्रुओंका वध करनेवाला तथा शत्रुरहित होऊँ।

अहं राष्ट्रस्याभीषर्गे निजो भूयासमुत्तमः ।
अ. ३।५।२

मैं राष्ट्रके भास पुरुषोंमें उत्तम निज बनकर रहूँ।
अथा मनो वसुदेवाय कृणुष्व । अ. ३।४।४
अपना मन धनदानके लिये अनुकूल बनाओ।
क्षत्रेणाशे स्वेन संभस्व । अ. ३।६।४
हे अग्ने ! अपने क्षात्रतेजसे उत्साहित हो।
अति निहो, अति सृधो, अत्यचिन्तो, अतिद्विषः ।
अ. ३।६।५

मारपीट करनेकी वृत्तिसे दूर रह, द्विषकोंसे दूर रह, वारीवृत्तिसे दूर हो, द्वेष करनेवालोंसे दूर रहो।
तेन सहस्रकाण्डेन परि णा पाहि विदवतः ।
अ. ३।७।३

उस सहस्र काण्डवालेसे सब ओरसे हमारा रक्षण कर।
शतारमेतु जपथः । अ. ३।७।५
शाप देनेवालेके पास ही उसका शाप चला जावे।
संशितं म इदं ग्रहं संशितं वीर्यं यलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुयैषामस्मि पुरोहितः ।
अ. ३।११।१

मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है, मेरा वीर्य और बल तेजस्वी है। जिनका मैं विजयी पुरोहित हूँ उनका तेजस्वी और क्षीण न होनेवाला क्षात्रतेज बढता रहे।

क्षिणामि महणाऽमित्रानुन्नयामि स्वानहम् ।
अ. ३।११।३

मैं शत्रुसे शत्रुओंका नाश करता हूँ और अपने लोगोंको मैं उन्नत करता हूँ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुयेषां चित्तं विश्वेऽ-
वन्तु देवाः । अ. ३।११।५
इनका क्षात्रतेज अक्षय हो। इनका विजयी चित्त सब देव सुरक्षित रखे।

जाया. पुत्रा. सुमनसो भवन्तु यहुं वलिं प्रति
पश्यात् उग्रः । अ. ३।४।३
छियां और पुत्र उत्तम मनवाले हों । और उग्रवीर बन-
कर बहुत करमारको देखें ।

पथ्या रेवतीर्वृथा विरूपाः सर्वाः सगत्वा
वरयिस्ते अकन् । अ. ३।४।७
सम्प्राप्तिसे चकनेवाली अनेक प्रकारकी रंगरूपवाली
प्रजायें मिलकर तुम्हें श्रेष्ठ स्थानपर स्थापित करती हैं ।

यलीं वलेन प्रमृणन् स्सपत्नान् । अ. ३।५।१
यह बलवान् वीर अपने बलसे शत्रुओंका नाश करता है ।
ये धीवानो रथकाराः कर्मार ये मनीषिणः ।
उपस्तीन् पर्णं महीत्ये सर्वान् कृष्णभित्तोजनान् ॥

अ. ३।५।६
जो बुद्धिमान् है, जो रथकार है, जो कर्म करनेवाले
लुद्धार हैं, और विद्वान् हैं । हे पर्णमणे ! तु उन सब जनोंको
मेरे समीप उपस्थित कर (बुद्धिमानोंकी सहायता मुझे प्राप्त
हो ऐसा कर ।)

सज्जानानां मध्यमेष्टा राजानमे चिद्व्यो दीदिद्वीह ।

अ. ३।६।४
सज्जानोंमेंसे मध्यम स्थानमें बैठनेवाला हो, और राजाओं,
राजपुरुषोंके द्वारा बुकाने योग्य होकर, वही प्रकाशित
होता रह ।

शास इत्या महीं अस्यामित्रसादो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन ॥

अ. १।२०।४
शत्रुओंका नाश करनेवाला, अपराभूत ऐसा यह महान्
शासक है, जिसका मित्र मारा नहीं जाता और जिसका
मित्र कभी पराभूत नहीं होता ।

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारी ते प्रजापते ।
ताविष्टा वधनां स्फार्ति यद् भूमानमश्वितम् ॥

अ. ३।२५।७
हे प्रजापालक ! पाव लाना और समृद्ध करना ये दोनों
कार्य तु कर, वे कार्य वही वृद्धिको देने और बहुत अश्व
मारणाको प्राप्त हों ।

यत्ते तप ०, दृ०, माचि०, शोचि०, तेजः ।
तेन ते प्रतिपद्योऽस्मान् द्रष्टि ये वर्ये द्विभ्यः ।

अ. ३।१९-२३।१-५

जो तेरी तपशक्ति, हरणशक्ति, तेजशक्ति, प्रकाशशक्ति-
और तेजशक्ति है, उससे उनको कष्ट दे जो हमसफेको
कष्ट देता है और जिसका हमसब द्वेष करते हैं ।

अभूर्गृष्टीनामभिदाक्षिपाया उ । अ. ३।१३।३
विनाशसे मनुष्योंका रक्षण करनेवाला हो ।

विश्वेभर विश्वेन मा भरसा पादि ।

अ. ३।१६।५
हे विश्वके भरण कर्ता ! संपूर्णपोषण शक्तिसे मेरा
रक्षण कर ।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्वस्य पोषणं
यमस्यामी सभासद् । अ. ३।२९।१

जिस तरह नियमसे चकनेवाले राजाके सभाके ये सभा-
सद इष्ट और पूर्वका सोकहवा भाग वृषक् कर रूपसे
रखते हैं ।

यासां राजा वदणो याति मध्ये सत्यानृते
अवपश्यन् जनानाम् । अ. १।३३।२
जिनका राजा वदण कोर्गके सत्य वा असत्य जाचरण
देखता हुआ जाता है ।

ये ऐसे संज्ञाभाग इस विषयमें विचार करने योग्य हैं ।
इनमें और छोटे ध्यानमें सदा रखने योग्य सुभाषित ये हैं ।
त्वां विशो वृणतां राज्याय— सब प्रजा राज्यके
लिखे तुझे शासक करके स्वीकार करें ।

वर्षमन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्त्र— राष्ट्रके श्रेष्ठ स्थान
पर रह ।

विशां पतिरेकराट् त्व विराज— प्रजापालक एक
राजा होकर तू सुशोभित हो ।

स्वस्तिदा विशांपति— यह प्रजापालक कल्याण
कामेवाला हो ।

अभि राष्ट्राय वर्धय— राष्ट्रके हित करनेके लिये यत्न
कर ।

त्वं सर्वान् ठण्वभित्तोजनान्— तू सब जनोंको
अपने चारों ओर इकट्ठा कर ।

अद् शत्रुहोऽस्तानि— मैं शत्रुका नाश करनेवाला
होऊंगा ।

अद् राष्ट्रस्याभीर्गो निजो भूयास्— मैं राष्ट्रके
उत्तम पुरुषोंमें निज होकर रहूंगा ।

अनि द्विष— द्वेष करनेवालोंको दूर करता हूँ ।

अति स्त्रियः— हिसकोको दूर करता हूँ।

परिणः पाहि विश्वतः— चारों ओरसे हमारी रक्षा कर।

संशितं धीर्यं बलम्— हमारा धीर्य और बल तीक्ष्ण हो।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रबल तीक्ष्ण होकर क्षीण न हो।

क्षिणामि ब्रह्मणाऽमित्रान्— शत्रुओंको ज्ञानसे क्षीण करण हूँ।

उक्षयामि स्नानहम्— स्वकीयोंकी उन्नति करता हूँ।

क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रवैज क्षीण न हो।

जिष्ण्वेषां चित्तम्— इनका चित्त विजयी हो।

जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु— स्त्री, पुत्र उत्तम मनवाले हों।

यत्नी बलेन प्रमृणन् सपरतान्— बलवान् बलसे शत्रुओंको मारे।

सज्जातानां मध्यमेष्टाः— स्वजातीयोंके मध्यमें बैठने वाला हो।

शास हत्या महौ असि— तू शासकऐसा मदान् है।

अमित्रसादो अस्तृतः— शत्रुको पराभूत करनेवाला और स्वयं अपराजित हो।

न यस्य हन्यते सखा— जिसका मित्र मारा नहीं जाता।

उपोद्ब्रक्ष समूहश्च— पात लाना और समूह करना (ये दो कार्य करने योग्य हैं।)

इस प्रकार इन सुभाषितोंमें मननीय वचन हैं। ये वारं-वार प्रचारित करनेसे यदा आनन्द प्राप्त हो सकता है। 'स्वास्तिदा विशांपतिः' यह वचन वारंवार उच्चारनेसे राजाके कल्याण स्थानमें आ सकते हैं और परमेश्वरके गुण भी मनमें स्थिर होते हैं। परमेश्वर 'स्वस्ति-दा' है अर्थात् कल्याण करनेवाला है। सबका कल्याण वह करता है। जो परमेश्वरका पुण्य देवही गुण राजामें तथा साधारण प्रजाजनमें भी देखना चाहिये। अर्थात् हर एक मनुष्य 'स्वस्ति-दा' कल्याण करनेवाला हो, राजाका अधिकारी कल्याण करनेवाला हो, राजा भी प्रजाका कल्याण करनेवाला हो। परमेश्वर तो सबका कल्याण करनेवाला है ही।

२ (अ. प.)

'राष्ट्राय वर्धय' राष्ट्रका वर्धन कर। राष्ट्रकी उन्नति कर। राष्ट्रका अभ्युदय हो ऐसा कर। 'अहं शत्रुहो अस्तानि' मैं शत्रुको मारूंगा। शत्रुको दूर करना हर एकका कर्तव्य है। शत्रु तो व्यक्तिके, समाजके, धर्मके तथा राष्ट्रके अनेक प्रकारके होते हैं। उन सब शत्रुओंको दूर करना योग्य है।

'जिष्ण्वेषां चित्तं' सब मनुष्योंका चित्त जयशाली हो, विजयी हो। कभी चित्त निरुसाही न हो। 'न यस्य हन्यते सखा' जिसका मित्र मारा नहीं जाता ऐसा परमेश्वर है। राजा भी ऐसा हो, और मनुष्य भी ऐसा हो।

इस प्रकार इन सुभाषितोंका भजन, मनन तथा अपने जीवनमें डालनेका यत्न करना चाहिये। ईश्वर, विश्वतासक है और राजाके गुणधर्म इनमें प्रकट हुए हैं। शासन हुआ तो वहाँ पुराइयोंसे, शत्रुओंसे युद्ध करना ही पड़ता है। इस कारण सब युद्धके विषयके सुभाषित देखिये—

युद्ध

दुरोका शमन करनेके लिये जामृत रहकर युद्ध करना चाहिये, इस विषयके ये सुभाषित हैं—

स्वे गये जायृष्टप्रयुच्छन्। अ. २।६।३

अपने घरमें प्रमाद न करता हुआ जामृत रह।

प्रेता, जयता, नर उग्रा यः सन्तु बाहवः।

अ. ३।१९।३

हे बीरो! आगे बढ़ो, विजय कमाओ, आपके बाहु धौंय करनेवाले हों।

तेऽधराज्यः प्र भुवतां छिन्ना नौरिव यन्धनात्।

अ. ३।६।७

जैसी नौका बंधनसे छूटनेपर जड़ जाती है, उस तरह वे शत्रु अधोमार्गसे नौकेकी ओर चले जायें।

अमी ये चित्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि।

अ. ३।८।५

जो ये विचित्र कर्म करनेवाले हैं उनको मैं एक विचार-वाले करता हूँ।

नश्येतेतः सदान्वः। अ. २।१७।३

यहाँसे दानववृत्तियाँ नष्ट हों।

वि त्वमग्रे आरारयाः। अ. ३।२।१।

हे अग्ने! तू शत्रुसे दूर रहता है। शत्रु तुमारे पास नहीं आसकता।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वय द्विधमस्तं यो जग्मे दधमः ।

अ. ३।२।१-६

जो एक हम सबका द्वेष करता है और जिस अकेलेका हम सब द्वेष करते हैं वसको दे प्रभो ! तुम्हारे जबदेमें देते हैं ।

समहमेपां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।

वृध्नामि शत्रूणां वाहननेन हविषाऽहम् ॥

अ. ३।१।२

इनका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनाता हूँ । इस इनसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूँ ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरघ्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।

इन्द्रस्य यज्ञात्तीक्ष्णीयासो येपांमस्मि पुरोहितः ॥

अ. ३।१।४

जिनका मैं पुरोहित हूँ उनके शस्त्र अस्त्र परासीसे तीक्ष्ण, अग्निसे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे मो वीले बनाता हूँ ।

उज्ज्वन्ता मघयन् वाजिनान्पुद्गिराणां जयतामेतु घोषः । अ. ३।१।६

हे इन्द्र ! उनके बल उत्तेजित हों । विजयो घोरोँका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णयमोऽवलघ्नयवो हतोप्रायुधा अवलानु-
प्रयादयः । अ. ३।१।७

हे तीक्ष्ण बाणवालो ! उग्र आयुधोंवालो ! उग्र बाहु चाड़े घोरोँ । निर्बल धनुष्यवाले निर्बल वीरोंको मारो ।

एषा तान् सर्वान् निर्मग्धि यानह द्वेष्टि ये च माम् । अ. ३।१।८

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर, जिनका मैं द्वेष करता हूँ और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

प्रते यज्ञः प्रमृणस्तेतु शत्रून् । अ. ३।१।९

तेरा वज्र शत्रुओंको काटता हुआ भागे भेदे ।

इन्द्र सेना मोहयामिभ्रानाम् । अ. ३।१।१०

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयप्रार्ताकृत्या चर ।

अग्नेरानीस्य धाज्या तान् विपूचो विनाशय ॥

अ. ३।२।३

हे इन्द्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करने शुभ सबकपके भाष हमारे पास आ। और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुको जालों जालों विनष्ट कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणव-
जातवेदाः । अ. ३।२।१

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तोंको मोहित करे और उनको हस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

अग्नीपां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृणानाङ्गान्यध्वे परेहि । अ. ३।२।५

हे व्याधी ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके अवयवोंको जकड़ कर दूरतक चली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणवजात-
वेदा । अ. ३।१।१

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको हस्तहीन करे ।

अथमग्निर्मूहयानि चित्तानि यो हृदि ।

वि यो घमयोरुस्तः प्र यो घमतु सर्वतः ।

अ. ३।२।२

शत्रुके हृदयके विचारोंको यह अग्नी मोहित करे । शत्रुको घरसे बाहर निहाल देवे और शत्रुको सब ओरसे हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्मिमांस्त-
मरातिम् । अ. ३।२।१

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत घातपात करनेवालों शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले ।

अग्नि प्रेहि, निर्दह हस्तु शोकैर्प्राद्यामिमांस्त-
मस्ता विध्य शत्रून् । अ. ३।२।५

अग्रे बढ, हृदयोंको शोकसे जला दो, जकड़नेवाले रोगसे, तथा मूर्खोंके शत्रुओंको बीध हो ।

यूयमुग्रा मरुत ईदशे स्यामि प्रेतमृणत सहध्वं ।
अ. ३।१।२

हे मानवक लघ्नेवाले वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो, इसलिये आगे बढ़ो, काटो और जीत लो ।

आतृव्यक्षयणमसि आतृव्यक्षयण मे दाः ।

सपन्नक्षयणमसि समरन्नक्षयण मे दाः ।

अरायक्षयणमसि अरायक्षयण मे दाः ।

पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयण मे दाः ।

सदान्वक्षयणमसि सदान्वक्षयण मे दाः ।

अ. ३।१।८-५

वैरियों, सपरनों, निर्धनताओं, मांसभक्षकों तथा आसुरी
वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य मुझे दो ।

भूतपतिर्निरजतु, इन्द्रश्चेतः सदान्याः ।

गृहस्य वुध्न आसीनास्ता इन्द्रो यज्ञेणाधितिष्ठतु ।

अ १११७४

भूतपति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहाँसे दूर करे ।
घरकी जड़में जो घुराहवा होँ उनको इन्द्र यज्ञसे दूर दशा
देवे ।

विपूचेतु कृन्तती पिनाकमिव विधत्ती ।

विध्वक् पुनर्भुवा मनः । अ ११२०१२

धनुष्य धारण करती हुई, काटनी हुई धीरसेना चले ओ
घातुसेनाका मन विचलित करे ।

अरे अस्मा यमस्यथ । अ ११२६११

किसीने मारा पाथर हमसे दूर हो ।

अधमं गमया तमो यो अस्मौ अभिर्दोसति ।

अ ११२११२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें
पहुँचा दो ।

अपेन्द्र द्विपतो मनोऽप जिज्ञासतो घद्यम् ।

अ ११२११४

हे प्रभो ! हे धीर ! द्वेषिका मन हटल दे और हमारे
नाश करनेवालेके शस्त्रको दूर कर ।

इदं विष्कंधं सहते इदं वाधते अग्निः ।

अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥

अ. ११२६१३

यह सीसा दुष्टका परामव करता है, यह शत्रुको बाध
करता है, पिशाचोंकी सब जातियाँ हमसे परामव होती
हैं । (सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है ।

आराच्छत्थयाऽस्मद्विपूचीरिन्द्र पातय ।

अ ११२९११

हे इन्द्र ! चारों ओर फैलनेवाले बाण हमसे दूर आकर
गिरे ।

यो नः स्यो यो अरणः सजात उत निष्ठयो यो
अस्मानभिर्दासति ।

रुद्र शरव्ययैतान् ममामित्रान् विविधयतु ।

अ ११२९१३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन
जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें तु छ देता है,
ऐसे मेरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे बँधे ।

मा नो विददमिभा, मो अशस्तिः । अ ११२०११
परामव हमारे पास न आवे, अग्रशस्त्रता हमारे समीप
न आवे ।

इतश्च यदमुतश्च यदधं वरुण यायय ।

अ ११२०१३

हे वरुण ! यहाँसे और वहाँसे जो शस्त्र हैं उनको
दूर कर ।

सीस म इन्द्रः प्रायच्छत्तदंग यातु-चातनम् ।

अ १११६१२

‘सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले
दुष्टोंको दूर करती है ।

विलपन्तु यातुधाना अग्निणो ये किमीदिनः ।

अ ११७१३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, घातक हैं वे विज्ञाप
करें । (दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और
सदा क्या खाऊ ऐसा सोचना विज्ञाप करानेवाला है ।

त्वमशे यातुधानानुपयद्धा इहावह । अ. ११७१७

हे अशे ! तू यातना देनेवालोंको बाधकर यहाँ ला ।

यातुधानस्य प्रजां जहि नयस्व च । अ ११८१३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका परामव कर और उसको
ले चक ।

यवा मे शत्रोर्मूर्धान विप्रग्मिन्वि सहस्र च ।

अ. ११६१६

हस शरह मेरे शत्रुके सिर तोड़ दो और उसको जीत लो ।

म हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम् ।

अ ११६११, ११ ५

यह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूँ
और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

अमित्रसेनां मधवदम्पाऽऽज्यतीमभि ।

युव तानिन्द्र वृत्रहघ्नश्चि ददतं प्रति ॥

अ ११११३

हे इन्द्र ! शत्रुवत् नाचाण करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र
और अग्नि तुम दोनों मिलकर जला दो ।

योऽसान्द्रेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

अ. ३।२।१-६

जो एक हम सबका द्वेष करता है और जिस अकेलेका हम सब द्वेष करते हैं उसको द्वे प्रभो ! तुम्हारे जबड़ेमें देते हैं ।

समहमेपां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।

वृश्चामि शत्रूणां याह्नतनेन हविषाऽहम् ॥

अ. ३।१।२

हमका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनता हूँ । इस हवनसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूँ ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरस्त्रेस्तीक्ष्णतरा उत ।

इन्द्रस्य घज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥

अ. ३।१।४

जिनका मैं पुरोहित हूँ, उनके शस्त्र अस्त्र फरशीसे तीक्ष्ण, जिनसे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे भो तोखे बनता हूँ ।

उद्धर्षन्तां मध्वन् वाजिनाभ्युद्धीराणां जयतामेतु घोषः ।

अ. ३।१।६

हे इन्द्र ! उनके बल उत्तेजित हों । विजयी वीरोंका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णेपवोऽवलघ्नवो हतोप्रायुधा अवलानु-
प्रमाह्वयः ।

अ. ३।१।७

हे तीक्ष्ण बाणवालो ! उम्र लायुर्धोवालो ! उम्र बाहु-
वाले वीरों ! निर्बल घनुष्यवाले निर्बल वीरोंको मारो ।

एषा तान् सर्वान् निर्मगध यानहं द्वेभि ये च
माम् ।

अ. ३।६।३

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर, जिनका मैं द्वेष करता हूँ और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

प्रते घजः प्रमणमेतु शत्रून् ।

अ. ३।१।७

मेरा वज्र शत्रुओंको काटता हुआ जागे बड़े ।

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् ।

अ. ३।१।५

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयप्रधांङ्काकृत्या चर ।

अग्निर्वातस्य प्राज्या तान् विपूचो विनाशय ॥

अ. ३।२।३

हे इन्द्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करके तुम लोकपते गाय हमारे पाप भा ! और अग्नि और वायुके बलसे शत्रुओंको जलाने लो ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणव-
ज्जातवेदाः ।

अ. ३।२।१

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तको मोहित करे और उनको हस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृणानाह्वान्यध्वे
परेहि ।

अ. ३।२।५

हे व्याधी ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके अवयवोंको जकड़ कर दूरतक चली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्ताश्च कृणवज्जात-
वेदाः ।

अ. ३।१।१

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको हस्तहीन करे ।

अयमग्निर्मूमुहयानि चित्तानि वो हृदि ।

वि वो धमस्वोक्तः प्र वो धमनु सर्वतः ।

अ. ३।२।२

शत्रुके हृदयके विचारोंको यह भ्रमणी मोहित करे । शत्रुको परसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदृहन्नभिः शक्ति-
मरातिम् ।

अ. ३।२।१

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत वातपात करनेवाली शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले ।

अभि मेहि, निर्देह हस्तः शोकैर्प्राह्यामित्रांस्त-
मसा विध्य शत्रून् ।

अ. ३।२।५

आगे बढ़, हृदयोंको शोकसे जला दो, जकड़नेवाले रोगसे, तथा मृगोंसे शत्रुओंको घोंघ लो ।

यूयमुद्रा मरुत इदृशे स्यामि मेत मुणत सहध्वं ।

अ. ३।१।२

हे मानवक लड़नेवाले वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो, इसलिये आगे बढ़ो, काटो और जीत लो ।

आनृत्यक्षयणमसि आनृत्यक्षयणं मे दाः ।

सपत्नक्षयणमसि समनक्षयणं मे दाः ।

अरायक्षयणमसि अरायक्षयणं मे दाः ।

पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयणं मे दाः ।

सद्वान्वक्षयणमसि सद्वान्वक्षयणं मे दाः ।

अ. २।१।१५-५

वैरियों, सपानों, निर्धनताओं, मांस भक्षकों तथा आसुरी
वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य मुझे दो ।

भूतपतिर्निर्जतु, इन्द्रश्चेतः सदान्वाः ।

गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो यज्रेणाधितिष्ठतु ।

अ. २।१७।४

भूतपति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहाँसे दूर करे ।
घरकी जड़में जो बुराईयाँ हों उनको इन्द्र यज्रेसे दूर हटा
देवे ।

विपूचेतु कृन्तती पिनाकमिव विभर्ती ।

विप्वक् पुनर्भुवा मनः । अ. १।२७।२

धनुष्य धारण करती हुई, काटती हुई धीरसेना चले जो
शत्रुसेनाका मनः विचलित करे ।

आरे अस्मा यमस्यय । अ. १।२९।१

किसीने मारा पत्थर हमसे दूर हो ।

अधर्मं गमया तमो यो अस्मा अभिर्दासति ।

अ. १।२१।२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें
पहुँचा दो ।

अवेन्द्र द्विपतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।

अ. १।२१।४

हे प्रभो ! हे धीर ! द्वेपीका मन बड़ल दे और हमारे
नाश करनेवालेके शत्रुको दूर कर ।

इदं विष्कर्षं सहते इदं याघते अत्रिणः ।

अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥

अ. १।१६।३

यह सीसा टुटका परामत्र करता है, यह शत्रुको बाधा
करता है, पिशाचोंकी सब जातियाँ इससे परामृण होती
हैं । (सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है ।

आराच्छरवयाऽस्मद्विपूचीन्द्र पातय ।

अ. १।१९।१

हे इन्द्र ! शरों और फैलनेवाले बाण हमसे दूर जाकर
गिरे ।

यो नः स्त्रो यो वरणः सजात उत निष्ठयो यो
अस्मानभिर्दासति ।

रुद्रः शरव्यपैतान् ममामित्रान् विविष्यतु ।

अ. १।१९।३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन
जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें दुःख देता है,
ऐसे भरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे वीधे ।

मा नो विददमिभा, मो अशस्तिः । अ. १।२०।१

परामत्र हमारे पास न आवे, अवशस्त्रता हमारे समीप
न आवे ।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यायय ।

अ. १।२०।३

हे वरुण ! यहाँसे और वहाँसे जो शस्त्र हैं उनको
दूर कर ।

सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदंग यातु-चातनम् ।

अ. १।१६।२

‘सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले
दुष्टोंको दूर करती है ।

विलपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः ।

अ. १।७।३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, वातक हैं वे बिलाप
करें । (दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और
सदा क्या खाऊँ ऐसा योक्तना बिलाप करनेवाला है ।

त्वमग्रे यातुधानानुपयदा इहावह । अ. १।७।७

हे अग्रे ! तू यातना देनेवालोंकी पीचकर यहाँ ला ।

यातुधानस्य प्रजां जहि नयस्व च । अ. १।८।३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका परामत्र कर और उसको
ले भक्ष ।

पथा मे शत्रोर्मूर्धानि विप्वग्निमन्त्रि सहस्र च ।

अ. ३।६।६

इस तरह मेरे शत्रुके सिर तोड़ दो और उसको जीत लो ।
म हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेभि यै च माम् ।

अ. ३।६।१; ३।५

वह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूँ
और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

अमित्रसेनां मघवन्नम्यान्शत्रून्यतीमभि ।

युवे तानिभ्र वृत्रहभ्रमिश्च ददत प्रति ॥

अ. ३।१।३

हे इन्द्र ! शत्रुघ्न आपाण करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र
और अग्नि तुम दोनों मिलकर जला दो ।

इन्द्रः सेनां मोहयतु, मत्तो मन्त्र्योजसा ।

चक्षुष्यमिरा दत्तां पुनरेतु पराजिता । अ ३।१।६

इन्द्र (सेनापति) शत्रुसेनाको मोहिव करें। मरुत (सैनिक) वेगसे हमला करें। अग्नि उनकी आँखें छेवें। इस तरह पराभूत होकर शत्रुसेना पीछे हटे।

विष्णुः सत्यं कृणुहि चित्तमेवाम् । अ. ३।१।७

सत्य रीतिसे इन शत्रुओंका चित्त चारों ओरसे व्यग्र करो।

अज्ञेपं सर्वानाजीन् वः । अ. २।११।६

सब युद्धोर्में मैंने विजय प्राप्त किया है।

अह्ना अरातिं, अविदः स्पोतं, अप्यभूः भद्रे
सुवृत्तस्य लोके ॥ अ. २।१०।७

कृपणताको गुमने छोडा है। सुखको प्राप्त किया है,

कल्याणकारी पुण्यलोकमें तू भाषा है।

अरातीनां मा तारीन्मा नस्तारिपुरमिमातयः ।

अ. २।७।७

अनुदार शत्रु हमारे आगे न बढें। ओ दुष्ट हैं वे आगे न बढें।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हान् पृष्टारवि शृणीमसि ।

अ. २।७।५

दुष्ट मनुष्यके आँख और पीठ हम शीघ्र देखे हैं।

मा ते रिपन्नुपस चारः । अ. २।१।२

हारे अनुयायी बिनष्ट न हों।

देवैर्देवैर्न मणिना जङ्घिडेन मयोभुजः ।

विष्कंधं सर्वा रक्षांसि व्यापामे सहामहे ।

अ. २।४।४

देवोंने दिये, सुपदायक अग्निद मणिसे, शीघ्रक रोगको तथा सब रोगहर्मियोंको हम दबा सकते हैं।

म शशा, यादि दूर दृष्टिग्याम् । अ. २।५।४

भाग बढ, दो शीशोंको जितकर चले।

इन्द्रस्तुरापाणिमत्रो वृष यो जघान यतीर्न ।

अ. २।५।३

पान करनेवालों समान, त्वरासे हमला करनेवाला

इन्द्र धरनेवाले शत्रुको मारता रहा।

प्रतिदृष्टं यातुघानान् प्रति देव किमीदिनः ।

११ दृष्टं यातुघान्य । अ. १।२२।२

पानना देनेवालोंको जला दो। मरुत मृगोंको जला दो।

पातना देनेवाली छिपोंको भी जला दो।

अभीषतों अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।

राष्ट्रायमह्य बन्धयतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥

अ. १।२९।४

अभीषतमणि शत्रुका पराभव करनेवाला और दुष्टोंको दूर करनेवाला है, राष्ट्रहितके लिये तथा शत्रुओंको पराभूत करनेके लिये वह मणि मेरे शरीरपर बांधे।

मेम प्रापत्पोरुपेयो वधो यः । अ. १।३०।१

जो मनुष्यनाशक शस्त्र है वह इसके पास न भावे।

(अर्थात् यह न मरे)

असमृद्धा अघायव । अ. १।२७।२

पापी लोग समृद्ध न हों।

आरेरेसावसादस्तु हेतिः । अ. १।२६।१

शस्त्र हमसे दूर रहे।

मा नो विदन् विद्याधिनो मो अभिव्याधिनो

विदन् । अ. १।१५।१

विदेष वेधनेवाले शत्रु हमें न प्राप्त करें। चारों ओरसे वेधनेवाले शत्रु हमारे पास न भावे।

यो अथ सेम्यो यघोऽघायूनामुदीरते ।

युवं तं मित्रायरुणा असपाचपतं परि ॥

अ. १।२०।२

जो आज सेनाके शूर पुरुषोंका वध पापी शत्रुओंसे हो रहा है, दे मित्र वरुण। तुम उसको हमसे दूर कर।

वि न इन्द्र मृघो जहि, नीचा घच्छ पृतन्यतः ।

अ. १।२१।२

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे शत्रुओंको मार, सैन्य हम-
पर भेजनेवालोंको डीन स्थितिमें पहुँचाओ।

वि मनुमिन्द्र वृषहन् अमित्रस्याभिदासत ।

अ. १।२१।३

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे घात करनेवाले शत्रुके उत्साह-
हटा नाश कर।

परियो यायया यचम् । अ. १।२१।४

शत्रुके शस्त्रको हमारे दूर कर।

देधीमनुष्येययो ममामित्रान् वि विभ्यत ।

अ. १।१९।२

मनुष्योंसे दँके गये दिव्य बाण, भरे शत्रुओंको बाँधे।

यातुधानान् वि लापय । अ १।७।६

यातना देनेवालोंको बलाओ ।

नीचेः पद्यन्तामधरे भयन्तु ये नः सूरि मघवान्
पृतन्यान् । अ ३।१९।३

जो शत्रु हमारे धनवान् और विद्वान् पर सैन्य भेजते हैं
वे नीचे गिरे और भयन्त हो

एषामहमायुधा संस्थाम्येषां राप्त्रं सुवीर वर्धयामि ।
अ ३।१९।५

इनके आयुध मैं तीक्ष्ण करता हूँ तथा इनका राप्त्र उत्तम
वीरोंसे युक्त करके उत्तम करता हूँ ।

पृथग्योषा उलूलय, केतुमन्त उदीरताम् ।
अ ३।१९।६

शङ्खे लेकर हमला करनेवाले वीरोंके घोष पृथक् पृथक्
कर देंगे ।

अवयुष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् म मघस्व, जष्टोषा वरं वरं,

मामीषां मोधि कश्चन । अ ३।१९।८

हे शानसे तेजस्वी बने राज । दू छोडा जानेपर दूर जा,
शत्रुओंकी जीत को, आगे बढ़, शत्रुके वीरोंसे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ

वीरोंकी मार डाल, इनमेंसे किसीकी न छोड़ ।

असौ या सेना मघतः परेषामस्मानित्यभ्योजसा
स्पर्धमाना । तां विभ्यत तमसापवतेन यथै-

षामन्यो अन्यं न जानात् । अ. ३।२।१

हे मघो ! यह जो शत्रुकी सेना वेगसे स्पर्धा करती
हुई हमारे ऊपर भारही है, उसको अपमत्त तमसास्त्रसे

वीथो जिससे इनमेंसे एक दूसरेको न जान सके ।

उग्रस्य मभ्योददिमं नयामि । अ १।१०।३

उग्र क्रोधसे इसको ऊपर मैं लेजाता हूँ ।
सपत्ना असदृघ्ये भयन्तु । अ १।१।२, ४

शत्रु हमसे नीचे रहें । शत्रुका अथ पात हो ।
जहि एषां शततर्हम् । अ. १।८।४

इन दुष्टोंका सिकंदी कष्ट देनेका साधन दूर कर, शत्रुको
पानिष कर ।
एषामिन्द्रो यज्ञेणापि शीर्षाणि वृध्यतु । अ १।७।७

इन्द्र वज्रसे इन दुष्टोंके सिर काट दे ।
मधीतु सयौ यातुमानयमस्मित्येव । अ १।७।४

‘सब यातना देनेवाले भाकर बोलेंकी हम यहाँ हैं ।’
दस्यो- हन्ता यभूयिथ । अ १।७।१

तू दस्युका विनाशक है । (दस्युका विनाश करना
योग्य है)

वि रक्षो विमृषो जहि विवृत्रस्य हनू रुच ।
अ १।२।३

राक्षसो, शत्रुओंको पराभूत कर । घेरनेवाले शत्रुके
जबड़े तोड़ ।

य. सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विपन् छपाति न. ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरम् ।

अ १।१।२

जो सपत्न और जो असपत्न हैं, पर जो शाप देकर हमें
द्वेष करके कष्ट पहुँचाता है, सब देव उसका नाश करें ।

मेश आ-तमिक कवच मद्रज्ञान है ।
ज्ञानरूप कवच जो पढ़नता है, उसका उत्तम रक्षण

होता है ।

मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या । अ १।२०।१

जो द्वेष करनेवाले कुटिल हैं वे हमारे पास न आवें ।
निष्वस्त्रो असत् छरय पतन्तु ये भस्ता ये

चास्याः । अथ १।१९।२

जो फेंके गये हैं, और जो फेंके जानेवाले हैं वे बाण
चारों ओर हमसे दूर जाकर गिरें ।

यच्च आत्मानि तन्वां घोरमस्ति ।
यद्वा फेदेषु प्रतिचक्षणे धा ।

तत्सर्वं याचाप हन्मो ययं । अ. १।१८।३

जो इसके शरीरमें, बुद्धिमें, केशोंमें, देखनेमें घुरा है,
उस सबको हम बाणोंकी मारणासे दूर करते हैं । (बाणोंसे

मूचना देकर उस दोषको दूर करते हैं ।)
ददन्नप ह्ययाधिन यातुधानान् किमीदिन ।

अ. १।२।१

दुष्टुओं, यातना देनेवालों और अब क्या खाजें ऐसे
बोलनेवाले दुष्टोंको क्षमि जला देता है ।
प्रेतं— मागे बढो ।
प्रस्फुरतं— फुलती फूलो ।
पृणता मृद्धान् घटतं— सगोष देनेवालोंके घर जालो ।
अ. १।२०।४

अभिनृत्य सपत्नान् अभि यो नो वरातयः ।
अभि पृतन्यन्त तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥

अ. १।२९।२

शत्रुओंको पराभूत करके, हमारे अंदर जो कंजूम हैं
उनको दूर करके, सेनासे जो चढाई करता है और जो
हमसे दुष्टताका व्यवहार करता है, उन सबको पराभूत करो ।

विश्व्या ह्यश्वे दुरिता तर । अ. १।६।५

सब पापवृत्तियोंको, पापियोंको दूर कर ।

स्वयुग्मिर्मर्त्येह महे रणाय । अ. १।५।४

अपनी योजनाओंसे तू यहां आविर्भूत होकर रह और
बड़े युद्धके लिये तैयार रह ।

ससहे शत्रून् । अ. १।५।३

शत्रुका पराभव करता हू ।

प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विषमः ।

अ. १।१।३

इसपर चढाई कर जो अनेक। हम सबका द्वेष करता है ।
और जिसका हम सब द्वेष करते हैं ।

पृथ्वामि तं कुलिशेन धुंक्षं यो अस्माकं मन
ईदं दिनस्ति । अ. १।३।३

जो हमारे हम मनको दिगाहता है, इसको कुटारसे धूल
काटनेके समान बाटता हू ।

सपत्नहास्ये अभिमातिजिदु भव । अ. १।६।३

हे अमे ! साधनोंका विनाशक हो तथा बैरियोंकी जीतने
वाला हो ।

अग्नेर्यान्तम ध्राज्या तान् विपूषो वि नाशय ।

अ. १।१।५

अग्नि और वायुद्वेगमे जैसा नाश होता है जैसा नाश
शत्रुओंका चारों ओरसे करे ।

जदि प्रतीचो अनून् पराचः । अ. १।१।४

सममुख रहे, पीछेसे आवेवाले और सामनेवाले शत्रुको
बिखर करे ।

अग्नीमृणन् घमयो नाधिता इमे, अग्निर्गो
दूतः प्रयेत् पिष्टान् । अ. १।१।३

वे बलवान् घमानेवाले और बाटते रहे हैं, इनका विद्वान्
अग्नि समान तेजस्वी दूत चढाई करता हुआ आगे बढे ।

अग्निर्ना शत्रून् प्रयेत् पिष्टान् प्लिददधभिदा
निमगानिम् । अ. १।१।३

विद्वान् तेजस्वी और घातपात करनेवाले शत्रुको जलाता
हुआ हमारे शत्रुओंपर हमला करे ।

इन वृत्तियोंमें विशेष महत्त्व रखनेवाली ये हैं—

स्वे गये जागृदि— अपने घरमें जाग्रत रह । अपने
राष्ट्रमें जाग्रत रह ।

उग्रया घः सन्तु याहवः— आपके बाहु कम हों ।

मेत— शत्रुपर हमला कर ।

जयत— विजयी हो ।

नश्यतः सदान्वयः— दानवोंका यहाँ नाश हो ।

समहमेपां राष्ट्रं स्यामि— इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी
बनाता हू ।

पृथ्वामि शत्रूणां वाहन— शत्रुओंके बाहुओंकी
काटता हू ।

उद्धर्पन्ता वाजिनानि— इनके बल डकेजित हों ।

तीक्ष्णपचोऽवलधम्वनो हत— तुम्हारे तीक्ष्ण बाणोंसे
निबंद शत्रुवाले शत्रुकी मारो ।

एवा तान् सर्गान् निर्मिथि— इन तरह इन सब
शत्रुओंका नाश कर ।

सेनां मोहयामित्राणां— शत्रुकी सेनाको मोहित कर ।

तान् विपूषो विनाशय— शत्रुको चारों ओरसे
बिखर कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां— वह शत्रुओंके चित्त
मोहित करे ।

स सेनां मोहयतु परेषां— वह शत्रुकी सेनाको
मोहित करे ।

अभि मेहि, निर्दह— आगे बढ, शत्रुकी जला दो ।

अग्नि मेत, मृणत्, सह्ये— हमला करो, काटो और
जीतलो ।

भूतपतिर्निरजतु— भूतोंका पविर्दुर्गुणियोंको दूर कर ।

विपूष्येतु घ्नन्तती— काटती हुई सेना आगे बढे ।

आरे अदमा— पाया हमसे दूर रहे ।

अपेन्द्र द्विपतो मन— द हृद्ग । शत्रुका मन बदल दे ।

मा नो विददमिमा— परामम हमारे पाम न आवे ।

विलपन्तु यातुघाना— यातना देनेवाले शत्रु रोते
रहे ।

यातुघानस्य मजां जदि— यातना देनेवाली प्रजाका
शासन कर ।

स हन्तु शत्रून् मामकान्— वह मेरे शत्रुओंका वध करे ।

अजैपं सर्वांनाजोन्— सब युद्धोंमें मैं विजय प्राप्त करता हूँ ।

अद्या अरार्ति— कृपणताको छोड़ो ।

अविद्ः स्योनें— सुखमार्गको जानो ।

अभूः भद्रे सुकृतस्य लोके— कहवाणकारी पुण्य लोकमें रहो ।

अरातीर्नो मा तारीत्— कंजुष हमारे पास न बड़े ।

मा नस्तारिपुरभिमातयः— शत्रु हमारे भागे न बड़ें ।

प्र घह— भागे बड़ ।

याहि शूर— हे वीर ! भागे बड़ ।

प्रतिदह यातुधानान्— यातना देनेवालोंको जला दो ।

मेमं प्रापःपीदपेयो वधो यः— मनुष्यनाशक शत्रु मेरे ऊपर न पड़े ।

असमृद्धा आघायय— पापी ससृष्ट न हों ।

मा नो विद्न् विव्याधिनः— वैध करनेवाले शत्रु हमें न जानें ।

मो अभिव्याधिनो विद्न्— चारों ओरसे आक्रमण करनेवाले शत्रु हमें न जानें ।

वि न इन्द्र मृधो जहि— हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओंको मार ।

नीचा यच्छ पृतन्यतः— सैन्यसे हमला करनेवालोंको हीन अवस्थामें पहुँचा दो ।

चरीयो यावया चधम्— शत्रु हमसे दूर रख ।

इषको मममित्रान् वि विध्यत— बाण में शत्रुओंको वीधे ।

यातुधानान् विलापय— यातना देनेवालोंको रुलाओ ।
एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि— इनके राष्ट्रको वीर बनाकर बढ़ाता हूँ ।

जयामित्रान्— शत्रुपर विजय प्राप्त कर ।

अक्षेपां चरं चरं— शत्रुवीरोंके प्रमुखोंको मार ।

मामीपां मोचि कश्चन— शत्रुओंमेंसे किसीको न छोड़ ।

विध्यत तमसापद्यतेन— शत्रुको अपद्यत तमसाखले वीधो ।

सपत्ना अस्सद्धरे भवन्तु— शत्रु हमसे नीचे रहें ।

वस्योर्हन्ता चभूविध— शत्रुका विनाशक बन ।

वि रक्षो विमृधो जहि— राक्षसों और हितकोंका पराभव कर ।

मा नो विद्द् वृजिना द्वेष्या या— कुटील और पापी मुझे न जाने ।

दहक्षप द्वयाविनः— दुमुखोंको मैं जलाता हूँ ।

प्रेतं— हमला करो ।

प्रस्फुरतं— फुरती बढ़ाओ ।

पृणतः मृद्धान् पहतं— संतोष देनेवालोंके घरोंके पास जाओ ।

अभि पृतन्यन्तं तिष्ठ— सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका पराभव कर ।

विश्वा दुरिता तर— सब पापोंको तर जा ।

मस्वेह महे रणाय— बड़े युद्धके लिये आनन्दसे तैयार रह ।

ससहे शत्रून्— शत्रुका पराभव करता हूँ ।

अभिमातिभिद्भय— शत्रुका पराभव करनेवाला हो ।

शत्रून् प्रत्येतु विद्वान्— विद्वान् शत्रुपर चढाई करे ।

इस तरह इन वृत्तियोंमें अनेक वाक्य अलगमें बोलने योग्य हैं । इस तरहके वचन सब बोलने होते हैं जब शत्रुके विरुद्ध अपने लोगोंको, अपने वीरोंको बढ़ाना या तैयार करना होता है । ईश्वर शक्तिके वेदवचन उपासनाके समय बोलने होते हैं और ये वीरता बढ़ानेवाले वचन वीरता बढ़ानेके समय उच्चार करने होते हैं । विवेकी पाठक इसको अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

शत्रुपराजय करनेके लिये अपने राष्ट्रको तैयार रखनेके समय ये वचन बड़े उपयोगी हैं । राष्ट्रको संजीवित करनेके लिये राष्ट्रमें एकता प्रस्थापित करनेकी आवश्यकता होती है । वह एकताका विषय अब देखिये—

एकता

एकता बढ़ानेका उपदेश वेद इस तरह करता है—

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि यः ।

अ. ३।३०।१

सहृदयता और उत्तम मनवाला होना और विद्वेष न करना ये तुम्हारे अन्दर हों ऐसा मैं करता हूँ ।

अन्यो अन्यमभिर्दयत वर्त्सं जातमिवाच्या ।

अ. ३।३०।१

एक दूसरे पर ऐसा प्रेम करो जैसा नवजात बच्चेपर यौ प्रेम करती है ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

अ. ३।३०।२

पिताके अनुवृद्धव्रत धारण करनेवाला पुत्र हो और वह मातासे समान मनवाला हो ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।

अ. ३।३०।३

श्री पतिके साथ मधुर और दाम्पत्य भाषण करे ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

अ. ३।३०।४

भाई भाईसे द्वेष न करे, बहन बहनसे द्वेष न करे ।

सम्यक्चः समता भूत्या वाचं वदतु मद्रया

अ. ३।३०।५

मिलजुलकर एक समतापालन करनेवाले होकर कसयाण करनेवाला भाषण करो ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्टु संराधयन्तः

सधुराश्चरन्तः । अग्नौ अग्न्यस्य वदतु यद्वन्त

पत सध्रीचीनान्वः संमनसस्त्रुणोमि ॥

अ. ३।३०।६

गृद्धोका समान करनेवाले, और उत्तम विचार करनेवाले बनो, सिद्धिदक पान करनेवाले, एक धुराके भीचे चलने-वाले होकर आपसमें विरोध न करो, परस्पर प्रेम पूर्वक भाषण करनेवाले और उत्तम विचार करनेवाला होकर रहो ।

समानो प्रया सह यो अन्नभागः समाने योपदे

सह यो युनजिम् । अ. ३।३०।७

पानी पीनेका भापका स्थान एक हो, भापका अन्नभाग एक हो, एक जोतेके अन्नर साथ-साथ भापको जोतता हूँ ।

सम्यञ्जो अग्नि सपर्यन्तरा नाभिमियाभितः ।

अ. ३।३०।८

मग्न मिलकर अग्निकी पूजा करो और चक्री नाभिके चारों ओर जैसे आगे होते हैं वैसे तुम परस्पर जुड़कर रहो ।

सध्रीचीनाचः संमनसस्त्रुणोम्येक इनुष्टीन्त्सं-
वननेन सध्रीन् । अ. ३।३०।९

परस्पर प्रेम भावका बर्ताव करनेवाले, साथ साथ पुष्ट-पार्थ करनेवाले, उत्तम मनवाले और एक नेठाकी आज्ञाओं कार्य करनेवाले मैं तुमको बनाता हूँ ।

देवा इवामृतं रक्षमाणा सायं प्रातः सौमनसो
वो अस्तु । अ. ३।३०।१०

अमृतका रक्षण करनेवाले देव जैसे प्रेमसे रहते हैं वैसा परस्पर प्रेम आपके व्यवहारमें सबेरे और शामको होवे ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकृतीर्नमामसि ।

अ. ३।३०।११

तुम्हारे मनोको एक करो, तुम्हारे व्रत एक हों, तुम्हारे संस्कारोंको एक भावसे युक्त कराता हूँ ।

मम व्रतेषु हृदयानि यः कृणोमि

मम यातमनुष्मन्मन एत । अ. ३।३०।१२

मेरे व्रतोंमें तुम्हारे हृदय सज्ज हों ऐसा मैं कराता हूँ ।

मेरे चाल-चलनके अनुकूल तुम होकर चलो ।

अ-दार-रुद भवतु । अ. ३।३०।१३

आपसमें झूट उत्पन्न करनेवाला कोई न हो ।

अहं गृष्णामि मनसा मनांसि

मम चित्तमनु चित्तेभिरेत । अ. ३।३०।१४

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोको लेता हूँ । मेरे चित्तके साथ अपने चित्तोंको चलाओ ।

यथा नः सर्वे इज्जनः संगरयां सुमना असत्

दानकामश्च नो भुवत् ॥ अ. ३।३०।१५

हमारे सपूर्ण लोग संगतिमें उत्तम मनवाले हों और दान देनेकी भी इच्छा करें ।

स चेन्नयायो अभिना, कामिना स च वक्षथः ।

सं चां भगासो अगमत, सं चित्तानि, समुव्रता ॥

अ. ३।३०।१६

हे परस्पर कामना करनेवाले अहिदेवो ! मिलकर चलो, मिलकर बढो, एक-दूसरेकी मिलकर प्राप्त करो, तुम्हारे चित्त एक हो, तुम्हारे व्रत एक हों ।

शियाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिर्पाष्ठाः

शुवचाः । सयासिनी पियतां मय्यमेत अभिनी

रूपं परिचाय मायाम् ॥ अ. ३।३०।१७

कल्याणकारिणी विद्याओं द्वारा तेरे हृदयको तृप्त करता हूँ । बीरोंग और तेजस्वी होकर जानन्दमें रहो । साथ रहकर अश्विनौके रूपको कर्मकी कुशलताको प्राप्त होकर इस रसको पीओ ।

इस रीतिसे सबकी एकता करनेका उपदेश वेद करता है । घरकी तथा परिवारकी एकता करनेके लिये प्रथम कहा है—

मा भ्राता भ्रातरे द्विश्चन्— भाई-भाईसे द्वेष न करे । यह आदेश यदि भाई-भाई मनमें रखते, तो कौरव पांडवोंकी एकता होती और आपसका कलह न होता और १८ अश्विणिनी सेनाका नाश न होता । और भारत देश क्षात्र तेजसे हीन न होता ।

सम्यञ्चो अग्नि सपर्यत

आरा नाभिनिवाभितः । अ. ११.०१६

जैसे चूल्हे के आगे नाभिके चारों ओर रहते हैं, उस तरह भीषमें अग्नि रहे और चारों ओर बैठकर हवन करो यह सामुदायिक उपासना कही है जो एकता बढ़ानेवाली थी । सामुदायिक संध्या, सामुदायिक हवन होनेसे समुदायकी एकता होती थी । इस स्थानपर आज वैयक्तिक संध्या हो गयी है जो एक दूसरेको पुण्य करती है ।

अपनेमें 'अदारस्तु भवतु' आपसकी कूट बढाने-बाढा कोई न रहे । परंतु आपसकी एकता सब बचावें और सब सुसंगठित हों । इस कारण कहा है—

अहं शृण्वामि मनसा मनांसि । अ. ११.०१७

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंकी एकत्रित करके लेता हूँ अर्थात् मैं अपना मन ऐसा बनाता हूँ कि जो सबके मनोंकी आकर्षित करे और सबके विचार एक प्रकारसे बनावे और सबको संगठित करे । इस रीतिसे राष्ट्रके सब कौमोर्गोंकी संगठित किया जाय और राष्ट्रका बल बढ़ावा जाय ।

इस तरह संघटनाके सुकय वे मंत्र हैं । पाठक इनका विचार करें और आपसमें सुसंपर्क होकर अपने राष्ट्रका बल बढ़ावें इससे राष्ट्रका अमृदुष होगा ।

अमृदुष

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानथीः पञ्च कृष्टयः ।

पृष्टे शापं नश्विदेद रतातिं समायदन् ॥

अ. ११.०१८

३ (अ. प.)

जो ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली मानवीकी पांच आतियाँ हैं, वे समृद्धिको प्राप्त हों, जिस तरह वृष्टिसे नदी बढती है ।

जैसी घृष्ट होनेसे नदी बढती है उस तरह सब प्रजा-जनोंका अमृदुष हो । मनुष्योंकी सब प्रकारकी ऐदिक तथा पारमार्थिक उन्नति हो, सब राष्ट्र एकतासे अपना अमृदुष करने लगेगा तो ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है । एकता मूलक सब उन्नति है ।

राष्ट्रकी एकता होनेके लिये राष्ट्रमें यज्ञ भावना होनी चाहिये । सज्जनोंका सरकार, राष्ट्रकी एकता अर्थात् संघटना करना और दानका भाव ये गुण यज्ञमें हैं । इन गुणोंसे राष्ट्रका उत्कर्ष होता है ।

यज्ञ

प्रज्ञ यज्ञं च यर्धय । अ. ११.०१९

ज्ञान और प्रज्ञासम कर्मको यज्ञाओ ।

हमें यज्ञ वितर्त विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनः

मस्यमानाः ॥ अ. ११.०२०

विश्वके रचयिताये यह यज्ञ कैलाश है । उसम मनसे सब देव इस यज्ञमें भावें ।

उताद्विस्मन्तं दापयतु प्रज्ञानम् । अ. ११.०२१

दान न देनेवालेकी जानबूझकर दान देनेकी चेष्टा कर ।

य इंशे यनुपतिः यन्नां यनुपदामुत यो

द्विपदाम् । निष्कीतः स यस्मिन् भागमेतु,

रापरपोषा यजमानं सचन्ताम् ॥ अ. ११.०२२

जो यनुपद यनुओंका तथा दिशार्थ-मनुष्योंका स्वामी है, वह यज्ञके भागको प्राप्त हो, उसकी उतासना हो, धन और पोषण यजमानको मिले ।

विद्वानोंका सरकार करना चाहिये, आपसकी उत्तम संपरना होनी चाहिये और जो हीन होंगे इनकी दीनता दूर करनेके लिये दान देना चाहिये । दानमें शिवादान, बलदा मंत्रधन, धनदा दान और कर्मसक्रिया उत्कर्ष यह यनुधिब महत्त्व होना चाहिये । यह जहाँ होगा वहाँ यज्ञ होगा । और इसमें राष्ट्रका परम उत्कर्ष होगा ।

मधुरता

मधुरतासे दुःखना होनी है । इन विषयमें वेदमंत्रोंका

स्पर्त आदेश यह है—

मधोरसि मधुरो मधुधान्मधुमत्तरः ।

अ. १।३।१४

मैं मधुसे भी अधिक मीठा हूँ, मधुर पदार्थसे भी अधिक मधुर हूँ ।

याचा यदामि मधुमद् भूयासे मधुसंदृशः ।

अ. १।३।१३

मैं याणीसे मीठा आपण करूँगा और मैं मधुरताकी मूर्ति बनूँगा ।

मधुमन्मे निष्क्रमणे मधुमन्मे परायणम् ।

अ. १।३।१२

मेरा जाना और जाना मीठा हो ।

जिह्वाया धमे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।

अ. १।३।१२

मेरी जिह्वाके मूलमें मधुरता रहे और जिह्वाके अग्रभागमें मीठास रहे ।

ऐसी मीठास होवेसे शत्रुमें प्रेम बढ़ता है और प्रेमसे सगठना होती है । मित्रता बढ़ती है । परस्पर सहायता करनेकी इच्छा बढ़ती है । हमसे सबका मिलकर कल्याण होता है ।

मित्रता

यः सुहृत्ति तेन नः सहः । अ. २।१।१४

जो उत्तम हृदयवाला है उसके साथ हमारी मित्रता हो ।

सखासायस्सम्यस्तु रातिः । अ. १।२।१२

साथरूपी मित्र हमारे साथ रहे ।

मित्रेणाग्रे मित्रघा यतम्य । अ. २।१।१४

मित्रके साथ मित्रके समान व्यवहार कर ।

दियं ते धायानृषियो उमे स्तम् । अ. २।१।१३

येरे छिपे ये दोनो तु और नृषियों छोग उद्वेग करने-वाले हो ।

नादममद् यायय दिष्टुं । अथर्व १।२।३

दिष्टुं शब्द अममद् यायय- शत्रुके नेत्ररूपी बाणको

हमने दूर कर (शत्रुका बाण हमारा न आवे ।)

पमोपतिं नि रमय । अथर्व १।३।३

हैं वधुबीट ध्वनि- शत्रु आनन्द सुख कर ।

पयमह्यायति ध्यामम्यपायोः परियाभिजः ।

अ. १।४।१३

पापी और दुष्टोंके आँख हम तक देते हैं ।

पापी और दुष्ट दूर हों और उत्तम हृदयसे सबकी एकता बढे और एकतासे बल बढे ।

बल

अदमानं तन्वं कृधि । अथर्व १।१।२

शरीरको परापर जैसा सुदृढ़ कर ।

पह्यदमानमा तिष्ठ, अदमा भवतु ते तनुः ।

अ. २।१।१४

आ, इस शिलापर खड, तेरा शरीर पत्थर जैसा सुदृढ़ बने ।

वाचस्पतिः तेषां तन्वः यत्ना मे अद्य दधातु ॥

अथर्व १।१।१

वाचस्पति उनके शरीरके बलोंको मुझमें आज धारण करे । (विश्वमें जो पदार्थ हैं उनके बल मुझे प्राप्त हों और मैं उनसे बलवान् बनकर इस विश्वमें विश्वसेवाका कार्य करता रहूँ ।)

वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥

अथर्व १।२।२

वीडुः वरीयः अरातीः द्वेषांसि अपाकृधि— हमारे शरीर बलवान् और श्रेष्ठ बने । शत्रुओं और द्वेष करनेवालोंको दूर कर ।

ओजोऽस्योजो मे दाः । सहोऽसि सहो मे दाः ।

यलमसि यलं मे दाः । आयुरसि आयुर्मे

दाः । श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः । चक्षुरसि

चक्षुर्मे दाः । परिपाणमसि परिपाणं मे दाः ।

अ. २।१।१-३

सामर्थ्य, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, बल, आयु, ज्ञान, श्रोत्र, चक्षुष्य बल सुहृदारा रूप है अथ. ए. मुमें ये शुभ है ।

अधस्योऽसि, प्रतिसरोऽसि, प्रत्यभिचरणोऽसि ।

अ. २।१।२

ए (आत्मा) गतिशील है, ए आगे बढ़नेवाला है, ए

दुष्टकाको दूर करनेवाला है ।

सुकोऽसि, अजोऽसि, स्वरसि, ज्योतिरसि ।

अ. २।१।१४

ए सुदृढ़ तथा शीघ्रवान् है, ए नेत्ररूपी है, ए आत्म-शक्ति है, ए ज्योति है ।

प्र च वर्धयेमम् । अ. २।६।२
इसको विशेष ऊँचा कर ।
सबका बल, तेज, शक्ति, बल, बढ़े और सब लोग
तेजस्वी बनें और सबका सामर्थ्य बढ़े ।

वीरता

प्रजां त्वष्टरधि निघेह्यस्मे । अ. ३।२९।२
हे त्वष्टा ! इसको सुप्रसाद दे ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ।
अ. ३।२३।२
तेरे लिये दसवें मासमें अम्भनेवाला वीर पुत्र होवे ।
अथास्माकं सह वीरं ररिं दा' । अ. २।६।५
हमें वीरोंके साथ रहनेवाला धन दे ।
सुप्रजसः सुधीरा धयं स्याम पतयो रयीणाम् ।
अ. ३।५।५
हम उत्तम प्रजावाले तथा उत्तम वीरोंसे युक्त होकर
बनेंके स्वामी बनें । -

तनूपातः सयोनिर्योते धीरेण मया । अ. ३।५।८
तू सजातीय वीर मुझ वीरके साथ रहकर शरीररक्षक है ।
धुपेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ।
अ. ३।२।११

बलवान्, शान्ति करनेवाला, सोमरस पीनेवाला वायु-
भाषक वीर हमारा अनुवा बने ।

ज्ञान

घोरा ऋषयो, नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेयां मन-
सश्च सत्यम् । अ. २।३।५
एहि षडे तेजस्वी हैं, उनको हमारा प्रणाम प्राप्त हो,
इसकी आज्ञा और मन सत्यस्वरूप रहते हैं ।
येन देवान विपन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तारुण्यो मल्ल घो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥
अ. ३।२।१४

जिससे जानी आपसमें झगड़ते नहीं और आपसमें द्वेष
भी नहीं करते, वह भेद ज्ञान आपके घरके पुरोहित लिये मैं
करता हूँ ।

प्रक्षान्तस्ते यदासः सन्तु, माय्ये । अ. २।६।२
शान्ति ही तेरे पासके भागी बनें, न दुःख ।

मयि एव अस्तु मयि ध्रुतम् । अथर्व० १।१।२;३
यदा हुआ, सुना हुआ ज्ञान मेरे अन्दर स्थिर रहे । (प्रस-
क्त ज्ञान मूला न आप ।)

सं ध्रुतेन गमेमहि । मा ध्रुतेन विराधिपि ॥

अथर्व० १।१।४

हम सब ज्ञानसे युक्त हों । हम कभी ज्ञानसे विद्युक्त
न हों ।

इमं वर्धयता गिरः । अ. १।१।५।२
वाणिधी इसका गुणवर्धन करें । गुणमान करें ।

अनगसं प्रहृणा त्या कृणोमि । अ. २।१।०।१
ज्ञानसे मैं तुझे निष्पाप करता हूँ ।

उपासान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् । अथर्व० १।१।४
जानी हमें शुभावे (और उपदेश करे, हमें मार्ग बतावे ।)

सूर्यं चक्षुषा मा पाहि । अ. २।१।६।३
हे सूर्य ! आँखसे मेरी सुरक्षा कर ।

विहृदि, शक्र चिया इहि आ नः । अ. २।५।४
उत्तम राज्यशासन कर, हे इन्द्र ! हमारे पास बुद्धि की
योजनासे आओ ।

एहि देवेन मनसा सह । अथर्व १।१।२
दिश्य मनके साथ इषर (मेरे तमीर) जा । (मनमें
दिश्य शक्ति है, उस दिश्य शक्तिसे प्रभावित हुए मनसे यही
आओ । मनमें दिश्य शक्ति धारण करके, जहाँ जाना हो,
जाना चाहिये ।)

व्यापस्तृष्णयासरन् । अ. ३।२।१३
जल प्यासे दूर रहना है ।

इमामग्रे शरणिं मीकृत्यो नः । अ. ३।१।५।४
हे अग्ने ! मेरी इस मूँछकी क्षमा करो ।

तर्पुणं तस्मै धृजिनानि सन्तु प्रसद्विपं घोर-
मिसंतपाति । अ. २।२।६

ज्ञानका द्वेष करनेवाले उस दुष्टकी सब कार्य तार-
दायक हों । उस ज्ञानके द्वेषकी आकाश संगत करे ।

सूर्यमृतं तमसो प्राप्ता अधिदेवा मुद्रयन्ते अमृत-
जधिरेणसः । अ. २।१।०।८

देवोंने अमृतकाही पकड़ते तथा पापते मृत्यु दारके
सब स्वरूपी सूर्यको पकड़ दिया है ।

प्रापेयं सर्वा आकृतीर्मनसा हृदयेन च ।

अ ३।२०।९

मनसे और हृदयसे सब मन्त्रोंको प्राप्त कर सकू ।

ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।

अ २।१२।६

जो हमारे ज्ञानकी निंदा करता है । (वह पतापको प्राप्त हो)

तेजस्विता

सह घर्चसादिहि । अ ३।१।१

तेजके साथ ऋषको प्राप्त हो ।

तेन मामग्न घर्चसाग्ने घर्चस्विन वृणु ॥

अ ३।२२।३

हे अग्ने ! इस तेजसे मुझे आज तेजस्वी कर ।

देवासा विश्वघायसस्ते माभ्यन्तु घर्चसा ।

अ ३।२२।२

मन्त्रका धारण करनेवाले देव मुझे तेजसे तेजस्वी करें ।

देवा इम उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ।

अ ३।१।१

माणवायु मय ओसे मुझे घरे और खड़ा मुझे पुष्टि देवे ।

इष्टापूर्तमवतु नः । अ २।१२।४

इष्ट कर्म तथा पूर्व कर्म हमारी रक्षा करें । (इच्छापूर्वक क्रिया कर्म इष्ट और अपूर्णको पूर्ण करनेका कर्म पूर्व है ।)

धन

त्वं नो देव दातवे रयि दानाय चोदय ।

अ ३।२०।५

हे देव ! तू दान देनेवालेके लिये दानके अर्थ धनको प्रेरित करो ।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा घावा पृथिवी संचरन्ति । ते मा जुपन्तां पयसा घृतेन

यथा घ्रीत्वा धनमाहराणि ॥ अ ३।१५।२

जो सज्जनोंके जाने मानेके बहुतसे मार्ग छावा पृथिवीके बीचमें चल रहे हैं, वे मुझे घी और दूधसे तृप्त करें ।

जिनसे पटकर ऋषविक्रय करके मैं धनको प्राप्त करू ।

यमघवानमगाम दूरम् ।

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपण ।

फटिनं मा वृणोतु । अ ३।१५।४

मे दूर मार्गपर जाया हू । ऋषविक्रय हमें हितकारी

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्ष-
माणो विभरद्विरपयम् । अ. १।३५।२

इन्द्रके समान हम इंद्रियोंको धारण करते हैं जो दक्ष-
वासि सुवर्ण धारण करता है (उसमें कतम इंद्रिय शक्ति
रहती है ।)

नैनं रक्षांस्त्रिंशति पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः
प्रथमजं ह्येतत् । अ. १।३५।२

इस सुवर्णको राक्षस और पिशाच (सूक्ष्मरोग कृमि)
वर्गी सह सकते । क्योंकि यह देवोंका पहिला सामर्थ्य है ।

तं जानन्नग्न आरोहाद्या नो वर्धया रयिम् ।

अ. १।३५।३

हे भो ! उस मार्गको जानकर ऊपर चढ़ और हमों
धन बढ़ा दो ।

नुदघ्नपातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा
अस्तु मद्यम् । अ. १।३५।३

मार्गपर छटनेवाले, बँहते रहनेवाले शत्रुको दूर करके, बड़
ईश्वर मुझे धन देनेवाला होवे ।

भग प्र णो जनय गोमिरश्चैर्मगं प्र नृभिर्नृयन्तः
रूपाम । अ. १।३५।३

हे भग ! गौकों और लघोंके साथ हमारी संज्ञान वृद्धि
कर । हम लच्छे मानवोंके साथ रहकर मानवोंसे युक्त हों ।

तं स्वा भग तस्य ह्यजोदधीमि स नो भग पुर-
एता भवेद् । अ. १।३५।४

हे भगवान् प्रभो ! तुमको मैं सब प्रकारसे भजता हूँ ।
यह तू हमारा अनुयायी हो ।

मयि पुण्यं यद्धृत्तु । अ. १।३५।२

हे गौर्भो ! जो धन दे हमसे मेरे साथ तुम इष्ट-पुष्ट
बनो ।

मथास्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः । अ. १।३५।४

हमें और तुमोंके साथ धन दो ।

रयिं देयी दधातु मे । अ. १।३५।३

रखी मुझे धन देने ।

और बड़ हमारा अनुयायी बने । (इन्द्र-शत्रुका विनाश
करनेवाला)

यावदासौ ब्रह्मणा चन्दमान इमां धियं शतसे-
याय देवीम् । अ. १।३५।३

जिससे इस दिव्य बुद्धिका ज्ञान द्वारा सम्मान करता
हूँ मैं सैकड़ों सिद्धियोंको प्राप्त करने योग्य होऊँ ।

श्रुतं नो अस्तु चरितमुत्थितं च । अ. १।३५।४

हमारा चावचलन और बर्तान हमें लाभदायी होवे ।
भग प्रणेत्तमंगं सत्यराघो भगेमां धियमुदवा-
ददन्नः । अ. १।३५।३

हे भग, हे वरुण नैता, सत्य त्रिदिव देनेवाले प्रभो ! इस
बुद्धिसे देकर हमारा रक्षण कर ।

भग एष भगवां अस्तु देवचरतेन धर्मं भगवन्तः
न्याम । अ. १।३५।४

भाग्यवान् भगदेव मेरे साथ रहे, जिसके साथ रहनेसे
हम भाग्यवान् हों ।

भगस्य नावमारोह, पूर्णामनुपदस्वतीम् ।

तपोपप्रतारय, यो परः प्रतिपादयः ॥ अ. १।३५।५

पूर्ण तथा लट्ट देवधर्मकी लौकापर चढ़, हम लौकासे
उपरके पास जा जो वर तेरी कामनासे योग्य हो ।

परि मां, परि मे प्रजां परिणः पादि यस्तनम् ।

अ. २।३।४

मेरी रक्षा कर, मेरी प्रजाकी रक्षा कर, हमारी धनधी
रक्षा कर ।

उद्य निष्ठ मदते सौमगाय । अ. २।३।५

बड़े मोक्षरथके लिये ऊँचा होकर रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः । अ. १।३५।२

हममें वर्णित धन रहे ।

तास्तु त्वन्तर्जरस्या दधामि, प्र यक्ष्य पतु
निश्रान्तिः पराचैः । अ. २११-१५

तुलको धृष्टावस्थामें मैं धारण करता हूँ । क्षय रोग तथा
अथ सय कष्ट तुलसे दूर चले जाय ।

अग्नी रक्षोहमीवचातनः । अ. ११२-८१

अग्नि राक्षसोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है ।

(१४:- रोगक्रान्ति)

अनुसूर्यमुद्यतां हृषोतो हरिमा च ते ।

गौरादितस्य चणैन सैन रया परिद्वभेति ॥

अ. ११२-२११

तुम्हारा हृद्यविकार तथा कथिला या योछापन सुखों-
हृयके क्षय जानेवाले छाल हिरणोंके बाल वर्णसे तुमसे चारों
ओर घेर कर मैं दूर करता हूँ ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशयत् पुणत् ।

अ. ११२-२१२

हम शरीरसे कुछ व सकेदु धरके दूर कर ।

अस्थियजस्य किलासस्य तनूवस्य च यस्ववि ।

दूषया हृतस्य प्रलणा लक्ष्म भ्येतमनीनशम् ।

अ. ११२-२१३

दोषके कारण स्वभावर कपट्य हूय, अस्थिसे तथा शरीरसे
बायब हूर, दुष्टका ओ रबभावर सिद्ध है कलको हम ज्ञानसे
विनष्ट करते हैं ।

सोऽप्यक वोरभ पुनर्वो यन्तु यातयः पुनर्दतिः ।

किमीदिनः । यक्ष स्य तमस्य, यो यः प्राद्वि-

त्तमस्य, स्या मांसाभ्यस्त ॥ अ. ११२-२१४

हे वक्ष करनेवाले शस्त्र ! तुम्हारे बाधना देनेवाले शस्त्र,
तथा है लाज लोगों ! तुम मिलके हो इसको व्याधो, जिन्होंने
पुण्ड्रे येमा दे बन्दो व्याधो, अपने ही मांस व्याधो । (हम
सुरक्षित रहें ।)

गिरिनेनां आवेत्तय कपयान् जीवितपोपनाम् ।

हृद्यमहृद्यमहृद्यमेषा कुक्कुमवृद्धम् । अलग्नुहन्
रत्नार्वाञ्जलुनाटिकीमोचला जम्भयामसि ॥

अ. २१३-११२

दोखनेवाले, व दोखनेवाले कृमियोंको मैं मारता हूँ ।
रंगनेवाले कृमियोंको मैं विनष्ट करता हूँ । बिलो पर रहने-
वाले सब कृमियोंको मचासे मैं नष्ट करता हूँ ।

निःशालां धृष्टुं धिपणमेकवाद्यां जिघाक्षम् ।

सर्वाश्चण्डस्य नश्यो नाशयामः सदान्याः ॥

अ. २१३-११३

घादार न होना, भयभीत होना, एकवचनी निश्रयामक
पुष्टिका नाश करना, प्रोद्यको सब सत्राने, दानवकृतियों
आदिका हम नाश करते हैं ।

प्रादिजंमाह यथेतदेनं तस्या इन्द्रासी प्रमुमुक-

मेनम् । अ. २१३-११४

यदि अकटनेवाले शेतने इसको पकट गया हो, तो उस
पीडासे इन्द्र और मरि इसको मुझसे ।

आ रया स्यो पिशतां वर्णः परा शुक्रानि पातय ।

अ. २१३-११५

तुम्हारे शरीरका निश्रवणें तुम्हें प्राप्त हो और चेत भ्रष्टे
दूर हों ।

अमुकया यक्षमात् दुरितादवपाद् मुदः पादाद्

प्राद्याश्वोन्मुकया । अ. २१३-११६

क्षयभोग, शय, निषेधमं, मोहिषोंक पाग और अकटने-
वाले रोग आदिमें मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ ।

दृष्ट्वा भूविशति, देत्या देतिरसि, मेम्या मेनिरसि ।

अ. २१३-११७

दोषको दूर करनेवाला, हविषाका हविषा, यज्ञका
यज्ञ (आत्मा) है ।

नो वधेया रयि— हमारा धन बढाओ ।

ईशानो धनदा अस्तु मह्यं— परमेश्वर मुझे धन देनेवाला हो ।

मयि पुप्यतु यद्वसु— जो धन दे वह मेरे पास बढता रहे ।

अस्मभ्यं सहवीरं रयि दा— हमें वीर पुरुषोंसहित धन दो ।

रयि देवी दधातु मे— देवी मुझे धन देवे ।

रयि च नः सर्वधीरं नियच्छ— धन और वीर पुत्र हमें दो ।

ययं भगवन्तः स्याम— हम धनवान् हों ।

भगस्य नायमारोह— देववर्गकी नौका पर चढ़ ।

परिणः पाहि यज्जनम्— हमारे धनका संरक्षण कर ।

उद्य तिष्ठ महते सौमगाय— बड़े सौभाग्यके लिये उठकर खड़ा रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः— इसके पास धन रहे ।

एते वधन हैं जो मनमें रखने योग्य होते हैं । इनमेंसे कोई एक वधन मनमें १०।२० बार विचारपूर्वक रखिये ।

वेना करनेसे धनका महान् उपानमें भा जायगा और धन पास रहनेसे कैसा सुख होगा, इसका भी पता लग जायगा ।

आरोग्य

तेना ते तम्यं नं करं, पृथिव्यां ते निषेचनं
यदिष्टे अस्तु यादिति । अथर्व १।१।१-५

जबमें मेरे शरीरका बहवाण करना हूँ, पृथिवीपर मेरा पुष्पमें रटना हो । मेरे शरीरमें मक्ख दोष दूर हो ।

अर्वाष्ट्यं दीर्घायमयो पाँदयं कृमिन् ।

अथर्क्यं व्याध्वर्त्तं किमिन् पयसा जम्बयामसि ॥

उद्यन्नादित्यः कृमीन् हन्तु, निम्नोचन् हन्तु राक्षसिभिः ।

ये अन्तः क्रिमयो गयि ॥ अ. २।२।१

उद्य होनेवाला सूर्य रोगकृमियोंका नाश करे, अन्त होनेवाला सूर्य किरणोंसे कृमियोंका नाश करे जो कृमि भूमि पर हैं ।

विश्वरूपं चतुरक्षं किमि सारंगमजुनम् ।

शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥

अ. २।२।२

अनेक रूपोंवाले, चार भाँखवाले, रंगनेवाले, श्वेतगंवाले ऐसे अनेक प्रकारके कृमि होते हैं, उनके पीठ और सिर मैं छोड़ता हूँ ।

अत्रिवहः क्रिमयो ह्यग्निं कण्ववज्जमदमियत् ।

अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनप्स्यहं कृमीन् ॥

अ. २।२।३

अग्नि, कण्व, जमदग्नि के समान मैं कृमियोंका नाश करता हूँ । अगस्त्यकी विद्यासे मैं कृमियोंको कुचलता हूँ ।

इतो राजा कृमीणां उतेषां स्वपतिर्हृतः ।

इतो हनमाता क्रिमिर्हृतध्राता हतस्वस्ता ॥

अ. २।२।४

कृमियोंका राजा मारा गया, इनका स्थानपति मारा गया है । कृमियोंका माता, बहिन और माई मारा गया है ।

हनासो अस्य चेक्षसो हनासः परिवेशसः ।

अयो ये क्षुद्रका इय सर्वे ते कृमयो हताः ॥

अ. २।२।५

इस कृमिके परिचारक मारे गये, इसके सेवक पीसे गये, ओ क्षुद्रक कृमि हैं वे सब मारे गये हैं ।

प्र ते शृणामि शृष्टे याम्यां यितुदायमे ।

तासु त्यान्तर्जराभ्यां दधामि, प्र यक्ष्म प्लु
निश्चयैः पराचैः । अ. २।१-१५
तुलसी धृष्टावस्थामें मैं धारण करता हूँ । क्षय रोग तथा
मन्य सब कष्ट तुलसे दूर चले जाय ।

अग्नी रक्षोहामीधेचातनः । अ. १।२८।१
अग्नि राक्षसोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है ।
(रक्षः- रोगकुट्टि)

अनुसृत्यमुदयतां हृद्योतो हरिमा च ते ।
गोरोहितस्य चर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ॥

જા. ૧૨૨૧૩

गुह्यद्वारा हृदयविकार तथा कामिला या पीडावन सुयो-
दके साथ आनेवाले छाल किरणोंके छाल वर्णसे गुरो धारों
भोर घेर कर में दूर करता है ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशय^१ पृषत् ।

अ. ११२३१५

इस बारीसे कुछ व सकेद धरने दूर कर ।
 अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्तुवि ।
 इत्य । कृतस्य ब्रह्मणः लक्ष्म श्वेतमतीनाम् ।

४१२३१४

होपके कारण खचापर दरदर हुए, अक्सिसे तथा दादीरसे
 बरपण हुए, कुटका जो खचापर बिगड़ है बसको हम आगसे
 दियन करते हैं ।

शेरमक शेरम पुनर्वो यन्तु यातयः पुनर्दोतः
किमोदितः । यस्य स्य तमच, यो यः माह-
चमच, सा मांसायच ॥ ३१३॥

हे सब करनेवाले राज । तुम्हारे बाहना देनेवाले दास,
पा दे लाऊ छोर्गों । तुम जिनके हो इसको खाओ, जिनहीं
तुम्हें भेजा है इनको खाओ, अपने ही मांस खाओ । (हम
प्राणिन रहें ।)

गिरिमेर्ना भाविशय कण्ठान् जीवितयोपनान् ।

ज. २१२५१४

इस शोधितका नाश करनेवाले, पीडा देनेवाले कृमियोंको
पहाड़पर पहुंचाओ (ये रोगकृमि हमें कष्ट न दें ।)

क्षेत्रियात्वा निर्वर्तया जामिर्वासाद् इदो
मुञ्चामि घट्टणस्य पाशात् । अ. २।१०।०

आनुवंशिक रोग, कर्, संश्लेषीते बट, दाह तथा
मरणके पाछे मुंसे मै सुखवाता हं ।

दृष्टमदृष्टमदृष्टमथो कुरुकुरुमदृष्टम । अलगण्डन्
त्सर्वाञ्छ्रुत्वात्किमीन्यचरा जम्भयामसि ॥

अ. २१६१२

दीखनेवाले, न दीखनेवाले कृमियोंको मैं मारता हूँ।
रंगनेवाले कृमियोंको मैं बिनाष्ट करता हूँ। बिस्तार पर रहने-
वाले सब कृमियोंको घघासे मैं नष्ट करता हूँ।

निःशालां धृष्टं धिपणमेकवाद्यां जिघासम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नदयो नाशयाम। सुदान्याः ॥

५. २११२१३

घरदार न होना, नपभीत होना, एकवचनी निधनानक मुद्रिका नाश करना, प्रोथकी सव सताने, दानववृत्तिपां जादिका हन नाश करते है ।

आदिर्जमाह यद्येतदेनं तस्या इन्द्रासी प्रमुक्त-
मेतम् । अ. ३।३।३

यदि जकड़नेवाले रोगने हस्तको पकड़ रखा हो, तो उस पीड़ासे इन्द्र और मणि हस्तको टुटाने ।

आ तथा स्यो विद्यतां घर्णः परा शुक्रानि पातय ।

अ. ११२१२

सुन्दर शरीरका निजवन सुन्दे प्राप्त हो और श्रेष्ठ धरमे
वर हो ।

अमुक्या यक्षमात् दुरिताशय्याद् दृढः पाशाद्
प्राप्त्यथोदमक्या । अ. २१०/१

क्षयरोग, पाद, निःशर्करा, द्रोणियों के पाद और जठरने-
पाले रोग आदिमें ये पुष्पें इस्तेमाल हैं ।

दृष्या दृषिरसि, देस्या देतिरसि, मेन्या मेनिरसि ।

ज. १११११

होवको वृत्त करनेवाला, हथियारका हथिया, वज्रका वज्र (आत्मा) है ।

दशवृष्ट मुन्धेसं रससो माता बधि येन
जमाद परेतु । मयो एनं यनमने जीवानो
लोहमन्त्रय । अ. १५५

हे दण्डवत् ! हम राजाजी गठिवारोगमें हम लोकीको
बुरा कर । जो रोग हमको संपिचोमें पड़त राजा दे । हे
ब्रह्मचरि ! हमको जोरित लोकीमें बना बना ।

ममः शोनाय लक्ष्मणे ममो ह्याय शोनिने

व्याप्त्या पचमानः । अ. ३।३।१२

शुद्ध मनुष्य पीडासे दूर रहता है ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवन्त्या कमश्चात यद्मा-

दुत राजयद्मात् । अ. ३।३।१३

सुखपूर्वक जीवनेके क्रिये तुझको हम भोजन रोगसे तथा राजयद्मासे हवन द्वारा छुड़ाने हैं ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्त्वयि ।

अ. ३।३।१२

हमारे शरीरोंको सुख हो, हमारे बाह्यचर्चोंको सुख हो ।

वि मद्बल्लमे यच्छ, वरीयो यावया वधम् ।

अ. ३।३।१३

बड़ा शान्तिसुख हमें दो, शत्रुका शस्त्र हमसे दूर कर दो ।

कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता । अ. ३।३।१४

काम दाता और काम ही लेनेवाला है ।

कृतस्य कार्यस्य चेद्द स्फातिं समावह ।

अ. ३।३।१५

क्रिये हुए कार्यकी यही बुद्धि कर ।

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं

तन्वः स्वायाः । तं लोकं यमिभ्यमसंयभूय

सा नो मा हिंसीत् पुच्छान् पशून् ॥ अ. ३।३।१६

जहाँ सुहृद् तथा सत्कर्मकर्ता, अपने शरीरके रोगको त्याग कर आनन्दसे रहते हैं, वे तुम्हारे वधे देनेवाली गौ । इस स्थानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न हो ।

सर्घान् कामान्पूरययामयन् प्रमयन्मयन् ।

आकृतिप्रोऽधिर्दत्तः शितिपाप्रोप दस्पति ॥

अ. ३।३।१७

यह दिया हुआ करमार सब प्रजाके संकष्टोंको पूरे करता है । हिंसकोंको दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है । प्रमावी बनकर, भस्मिलका रक्षण करता है और विनाशसे बचाता है ।

यिभ्यं सुभूतं सुयिदन्नं नो अस्तु । अ. ३।३।१८

हम सबके क्रिये यह भिन्न भिन्न सहायक तथा शान देनेवाला हो ।

अग्रे अष्टौ पदेद नः प्रत्यम् नः सुमना भय ।

अ. ३।३।१९

यहाँ हमारे साथ अष्टौ तरह बोक । हमारे सम्मुख उत्तम मनवाला हो ।

वि पण्यानो दिशं दिशम् । अ. ३।३।१९

मार्ग भिन्न दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।

ये यध्यमानमसु दीध्याना अन्वैश्वन्त मनसा

चक्षुषा च । अग्निष्टान्तमे प्रमुमोक्तु देवो

विश्वकर्मा प्रजया स्तराणाः ॥ अ. ३।३।२०

ब्रह्मका जो मनसे और आँखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं, उनकी विषयका यन्त्रनेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।

पृहस्पतये महिष शुमन्त्रमो, विश्वकर्मन्, नम-

स्ते, पाहास्मान् ॥ अ. ३।३।२१

महाशक्तिमान् । शानी तेजस्वी विश्वके रचयिता, मावको हमारा नमस्कार हो, आपकी नमस्कार है, हमारी सुरक्षा कर ।

स्वर्णोप त्वां मदाः सुवाचो अगुः । अ. ३।३।२२

स्वर्णय आनन्दके समान उत्तम मायणसे देनेवाले आनन्द तुम्हारे पास पहुँचे हैं ।

सुपूदतः मृडतः, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके-

भ्यस्त्वयि । अ. ३।३।२३

आधम दो, सुखी करो, हमारे शरीरोंको सुखी रखो । हमारे बाह्यचर्चोंके क्रिये आनन्द प्राप्त हो देना करो ।

इमां देवा असाधिषुः सौमगाय । अ. ३।३।२४

इस कन्याको देवोंने सौभाग्यके क्रिये शपथ की है ।

शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ।

अ. ३।३।२५

‘मेरे चारों अंगोंके क्रिये आरोग्य हो, मेरे शरीरके क्रिये भीरुपिता हो ।

अग्निं च विश्वशंभुयम् । अ. ३।३।२६

अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।

यो ददाति शितिपादयिं लोकं संमितम् ।

स नाकमभ्यारोहति यत्र पुत्रो न जीयते

अचलेन घटीयसे ॥ अ. ३।३।२७

जो लोकोंसे संयमित, हिंसकोंका नाश करनेवाले साधक करमारको देता है, वह पुत्र रहित स्थानको प्राप्त करता है, जहाँ निर्विकको बहुराजके क्रिये क्षण नहीं देना देना है ।

कृणोमि। यो अन्येद्युर्भयशुरभ्येति तृतीय-
काय नमोऽस्तु तक्षमने ॥ अ. १।२५।४

श्रीतज्वरके लिये नमस्कार, रुक्ष ज्वरके लिये नमस्कार
जो एक दिन छोड़कर आता है, जो दो दिन आता है, जो
तीसरे दिन आता है उस ज्वरके लिये नमस्कार हो।

अर्थात् यह ज्वर हमसे दूर हो।

यदिस्थ क्षेत्रियाणां यदि पुरुषेपिताः।

यदि दस्युभ्यो जाता नदयतेतः सदान्वाः ॥

अ. २।१४।५

यदि क्षात्रवशिक दोष हैं, यदि मनुष्यकी प्रेरणासे हुए
हैं, यदि दस्युओंसे हुए हैं वे सब दोष दहाले होंगे।

आसुरी चक्रे प्रयमेदं किलासभेपजमिदं
किलासनाशनम्। अनीनशत् किलासं सरू-
पामकरत्त्वचम् ॥ अ. १।२४।२

क्षामुनीने पहिले यह कुटनाशक औषध बनाया। इससे
कुछ दिनके दुखा और रक्का ममान रंगवाली बनी।

आरोग्यके विषयमें रोगकृमिका नाश करना मुख्य है।
स्वच्छता की जाय, शुद्ध वायु धाता रहे, सूर्यप्रकाश
आशाय, हवाम गौके घोड़ा होता रहे ये सब बातें आरोग्य-
मयधनके लिये अत्यावश्यक हैं।

सूर्य रोगकृमिघोषा नाशक मुख्यतया है। सूर्यप्रकाश
माफमपाई करनेवाला है इसलिये रहनेके घरमें सूर्यप्रकाश
बिबुल जाना चाहिये।

भग्री रक्षोहाऽमीपचानतः।

अग्नि रोगकृमिघोषा नाशक और रोग दूर करनेवाला है।
हम रोगिने इन मंत्रोंका निपात करना चाहिये।

विजय

सपान-क्षयणो गृधामिराण्डं पिरासदिः।

यथाहमेवां वीराणां पिराजानि ऊनस्य च ॥

पितेय पुत्रानभि रक्षतादिमम्। अ. २।१३।१
पिता पुत्रोंकी रक्षा करता है उस तरह इसको रक्षा करो।
आसीर्ण, ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं, दक्षं धत्तं
द्रविणं सचेतसां। जयं क्षेत्राणि सहसाय-
मिन्द्र कृष्णानो अभ्यानधरान्सपत्नान् ॥

अ. २।२५।३

हमें आशीर्वाद दो, हे संतुष्ट मनावालों। बल, सुपजा,
दक्षता तथा धन हमें दो। यह अपने बलसे विविध क्षेत्रोंमें
जय प्राप्त करे और दूसरे शत्रुओंको नीचे करे।

विश्वा रूपाणि विभ्रतः त्रिपत्ताः परियन्ति।

अथर्व १।१।१

सब रूपोंको धारण करके, तीन गुणा सात (अर्थात्
इकौस) पदार्थ सर्वत्र चकते हैं। (ये इकौस पदार्थ विश्वमें
होखनेवाले पदार्थोंके रूप धारण करते हैं।)

यः सहमानध्वरति सासहान ह्य ऋषयः।

तेनाभ्वरथ त्वया चयं सपत्नान्सहदिपीमहि।

अ. १।१।४

जो बलवान् शत्रुको दबादेवाला, सामान्यवान् होकर
चकता है, उस वीरसे हम शत्रुओंको पराजित करेंगे।

मनुष्यके जीवनमें शत्रुका पराभव करना और विजय
प्राप्त करना मुख्य बातें हैं। इसीसे मनुष्य सुखी हो
सकता है।

सुरमाप्ति

६ स्थिति मात्र उत पित्रे नो अस्तु सहित गोभ्यो
जगते पुरुषेभ्यः। अ. १।३।१४
माता, पिता, गौरे, पुरुष तथा चकनेवाले प्राणिनोंको
सुख प्राप्त हो।

ते पिदि क्षेममदीधरन्। अ. १।३।५

मन्त्राजनोंमें तेरा क्षेम धारण करे।

मातेयास्मा अदिते शर्म यच्छ। अ. १।२४।५

हे अदिने ! मातादे समान इसे सुख दे।

यन् प्रथमाजानामुपिता पुरः। अ. १।२४।४

व्यात्यो पवमानः । अ. १।११२

शुद्ध मनुष्य पीडासे दूर रहता है ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमडात यद्मा-

दुत राजयद्मात् । अ. १।११३

सुखपूर्वक जीवनके लिये तुझको हम अज्ञात रोगसे
तथा राजपदमासे हवन द्वारा छुड़ाले हैं ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्तृधि ।

अ. १।११४

हमारे शरीरोंकी सुख हो, हमारे बाहबलोंकी सुख हो ।

वि महच्छमं यच्छ, चरीयो यावया घघम् ।

अ. १।२० ३

बड़ा शान्तिमुख हमें दो, शत्रुका शस्त्र हमसे दूर कर दो ।

कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता । अ. १।२१४

काम दाता और काम ही लेनेवाला है ।

श्रुतस्य कार्यस्य चेद् स्फातिं समायह ।

अ. १।२४५

किये हुए कार्यकी यही वृद्धि कर ।

यत्रा सुहार्दः शुकृतो मन्त्रि विहाय रोमं

तन्वः स्वापाः । तं लोकं यमिन्यभिसंपभूव

स्त नो मा हिंसीत् पुत्रान् पशून् ॥ अ. १।२८५

जहाँ सुहृद् तथा सत्कर्मकर्ता, अपने शरीरके रोगको
त्याग कर आनन्दसे रहते हैं, हे तुम्हारे बच्चे देनेवाली गो ! उस
स्थानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा
न हो ।

सर्वान् कामान्पूरयत्यामयन् प्रमयन्मयन् ।

आकृतिप्रोऽपिर्विचः शितिपात्रोप दृश्यति ॥

अ. १।२९२

यह दिया हुआ करमार सब प्रकाश संकल्पोंकी पूर्ण
करता है । हिंसकोंकी दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है ।
प्रभावी बनकर, अस्तित्वका रक्षण करता है और बिगाड़से
बचाता है ।

यिभ्यं शुभ्रं सुविदग्धं नो भरतु । अ. १।३१४

हम सबके लिये यह विश्व उत्तम सहायक तथा ज्ञान
देनेवाला हो ।

अग्रे अच्छा यदेद नः प्रत्यर् नः सुमना भय ।

अ. १।५५३

यहाँ हमारे साथ अच्छी तरह बोल । हमारे सम्मुख
उत्तम मनवाला हो ।

वि पन्थानो दिशं दिशम् । अ. १।३१४

मार्ग भिन्न दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।

ये यच्चमानमनु दीध्याना अन्यैश्चन्त मनसा

चक्षुषा च । अग्निष्टानन्ने प्रमुमोषतु देवो

विश्वकर्मा प्रजया संतराणः ॥ अ. २।३४३

बुद्धी जो मनसे और आँखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं,
उनकी विश्वास बनानेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला
अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।

यूहस्पतये महिष युमन्ममो, विश्वकर्मान्, तम-

स्ते, पाण्डुस्मान् ॥ अ. २।३५४

महाशक्तिमान् । शमी तेजस्वी विश्वके रचयिता, ताम्रकी
हमारा नमस्कार हो, आपकी नमस्कार है, हमारी सुरक्षा
कर ।

स्वर्णैव त्वां मदाः सुयाचो अगुः । अ. २।५१२

स्वर्ण के आनन्दके समान उत्तम भावणसे होनेवाले आनन्द
तुम्हारे पास पहुँचें हैं ।

सुपूत, मृडत, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके-

भ्यस्तृधि । अ. १।२६४

भाग्य हो, सुखी करो, हमारे शरीरोंकी सुखी रहो ।
हमारे बाहबलोंके लिये आनन्द प्राप्त हो देना करो ।

इमां देवा असायिषुः सौमगाय । अ. १।५८२

इस कन्थाकी देवीने सोमागवके लिये गायत्री की है ।

तो मे चतुर्थ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्ये मम ।

अ. १।१२४

‘मेरे शरीर अंगोंके लिये आंगोप हो, मेरे शरीरके लिये
वीतीषा हो ।

अग्नि च विभ्यंशुयम् । अ. १।११२

अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।

यो ददाति शितिपाद्वि लोकं क्षेमिमतम् ।

स जाकमग्यारोदति यत्र शुद्रको न कोपते

अस्तेन वलीयसे ॥ अ. १।११३

जो कौतवीने समाहित, हिंसकोंका नाश करनेवाले मरुज
करमारको देता है, वह शुद्र शक्ति त्यागकी बात करता
है, जहाँ निर्दलको बलवानके लिये खन नहीं देना होता है ।

इस तरह सुख प्राप्त हुआ तो मनुष्यकी भायु दीर्घ होती है। रोग दूर हो, स्वास्थ्य प्राप्त हो, मन आनन्द प्रसन्न रहे तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

दीर्घ आयु

इस प्रकरणमें आये मन्त्रोंका विशेष उपयोग है। इन मंत्रमार्गोंका जप करनेसे लाभ होता है—

शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः। अ. ३।१।१६
इसका शरीर और इसके अवयव वृद्धावस्थातक पहुँचाओ।

ये देवा विधिष्ठ, ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्ष
ओषधीषु पशुध्वन्तः। ते कृणुत जरसमागुरसे
शतमग्न्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ अ. १।३।०३

जो देव पृथ्वी, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर हैं। जो औषधियों और पशुओंमें हैं। वे देव इसके लिये वृद्धावस्थातककी भायु करें। सेकड़ों अन्य प्रकारके मृत्यु दूर करें।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शतम्।

अ. २।१३।४

सब देव तेरी भायु सौ वर्षकी करें।

तं त्रिपासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शत-
शतदाय। अ. ३।५।४

उस त्रिपासकी प्राप्त कर, बहुत प्रकाशित होकर, सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त कर।

दशमीमुग्रः सुमना वज्रोह। अ. ३।४।७

तू यहाँ डमवीर तथा उत्तम मनवाला होकर दसवीं दशक तक सब राज्योंके अपने वशमें (अर्थात् अपने अनुकूल) कर।

परि घत्त, घत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत
दीर्घमायुः। अ. २।१३।२

हमारे इस पुरुषकी धारण करो, तेजसे युक्त करके इसकी धारण करो, दीर्घायु इसको देकर जरावस्थाके पश्चात् इसकी मृत्यु हो ऐसा करो।

शतं च जीय शतदः पुरुर्ची, रायस्पोषमुपसं-
ध्यस्य। अ. ३।१३।३

सौ वर्षतक एवं रीतिसे जीवों और घन और गोबलन रीतिसे प्राप्त करो।

एन्द्र पता सद्यसे विदो मद्र ऊर्जा स्वयाम-

जरां, सा त एषा। तथा त्वं जीव शतदः
सुवर्चा, मा त आ सुन्नोद्भिपजस्ते अक्रन् ॥

अ. २।२१।७

इन्द्रने मक्ति करनेपर अन्न, धन, धारकशक्ति, अक्षीणता आदिकी अपेक्षा किया, यह शक्ति तुम्हारे लिये है। इससे तू युक्त होकर बहुत वर्ष जीवित रह, तेजस्वी बन, तेरे लिये न्यूनता न हो। वैद्योंने तेरे लिये यह रसयोग बनाया है।

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा।

अ. ३।११।८

जिस तरह गाय और बैलकी रज्जुसे बांधते हैं वैसे वृद्धावस्था तेरे साथ बंधी रहे।

जराये त्वा परिददामि। अ. ३।११।७

वृद्धावस्थाके लिये तुझे देता हू।

वि देवा जरसावृतन्। अ. ३।३।११

देव जरासे दूर रहते हैं।

स्वस्त्येनं जरसे यहाय। अ. १।३।०२

इसकी वृद्ध भायुतक सुखसे पहुँचा दे।

विश्वेदेवा जरदृष्टिर्यथासत्। अ. २।२।८५

सब देव यह वृद्ध होनेतक जीवे, ऐसा करें।

जराये निधुचामि ते। अ. ३।११।७

वृद्धावस्थातक तुझे पहुँचाता हू।

जरा त्वा भद्रा नेष्ट। अ. ३।११।७

तुझे वृद्धावस्था सुख देवे।

वि यश्मेण, समायुषा। अ. ३।३।११-११

यश्मरोगसे मैं दूर रहूँ। दीर्घायुसे मैं संयुक्त रहूँ।

मित्र पत्नं चरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां
संविदानौ। अ. २।२।८२

मित्र तथा शत्रुनाशक वरुण जानते हुए इसकी जराके पश्चात् मृत्युको प्राप्त होनेवाला दीर्घायु करें।

दीर्घायुत्वाय महते रणायारिष्यन्तो वृक्षमाणाः
सदैव। मार्णि विष्णन्धूषणं जङ्गिं विभृमो
घयम् ॥ अ. २।४।१

दीर्घायु प्राप्त हो, बड़ा जानेंद प्राप्त हो, वीरकरोम दूर हो इसके लिये जंगल मणिको, हम सब विनष्ट न होने-
वाले और अपना बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाले सदैव
प्राण करते हैं।

रायस्पोषं सवितरा सुवासमै शतं जीवाति
शरदस्तवायम् । अ. १।२९।२
धन और पोषण, हे सविता ! इसे तू दे । और यह तेरा
घनकर सो वर्ष जीवित रहे ।

हन्त्रो यथैन शरदो नयात्यति विभ्वस्य दुरि-
तस्य पारम् । अ. १।११।३
तब पापजनित दुःखके पार इसको हन्त्र के जाय और
यह सो वर्षकी आयु इसे मिले ऐसा करे ।

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्
शतमु घसन्तान् । अ. १।११।४
सो वर्षतक बढ़ता हुआ जीवित रहे । सो हेमन्त, सो
वसन्त और सो शरद ऋतुतक जीवित रहे ।

सहस्राक्षेण शतवर्षेण शतायुषा द्रविषा
द्वापमेतम् । अ. १।११।५
सहस्रों शतियोंसे युक्त, सो बीसोंसे युक्त, शतायु करने
वाले हवनसे इसको मैं मृत्युसे वापस लाया हूँ ।

शतायुषा द्रविषाद्वापमेतम् । अ. १।११।६
सो वर्षकी आयु देनेवाले हवनसे मैं इसे वापस
लाया हूँ ।

शत जीवाति शरदस्तवायम् । अ. १।११।७
सहस्रा यह मनुष्य सो वर्ष जीवित रहे ।
आयुस्समं घेद्वि जातवेद । अ. १।२९।३
हे जातवेद ! इसको दीर्घायु दे ।

यस्तवा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य दस्ताभ्या उदमुञ्चदृष्टदपतिः ॥
अ. १।११।८

जित मृत्युने तुझे उलपन्न होते ही बांध रखा है बस
तुझको वृक्षरूपि सत्यके हाथोंसे तुझा देना है ।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्ययो
दिसिषुः शत ये । अ. १।२९।४
हे वृद्धावर्य ! तेरी आयुतक यह मनुष्य बढ़े । वे जो
मेझको मृत्यु हैं वे इसकी हिंसा न करें ।

इममां आयुषे वर्धसे नय प्रियं रेतो यदण
मित्र राजन् । अ. १।२९।५
हे भान्ने, हे बरन, हे मित्र राजन् ! इसको बीर्यवान्
कर दे दीर्घायु तथा तेझके प्रति के आ ।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरतिकं
नीत एव । तमा हरामि निर्कृतेरपस्यादस्वार्प
मेनं शतशरदाय ॥ अ. १।११।९

यदि इसकी आयु समाप्त हुई हो, यदि यह मृत्युके
समीप पहुँचा हो, तो भी बिनाशके वाससे मैं इसको वापस
लाऊँ हूँ और इसको सो वर्षतक मैं जीवित रखता हूँ ।

यो विभर्ति दाक्षायण हिरण्यं स जीघेषु
वृणुते दीर्घमायु । अ. १।१५।२
जो दाक्षायण सुवर्ण शरीरपर धारण करता है वह
जीवोंमें दीर्घायु धारण करता है ।

परि त्वा रोहितैर्यगेर्दार्श्यायुः प्राय दभ्रमसि ।
यथायमरणा असद्यो अहरितो भुवम् ।
अ. १।२९।२

एक रंगोंके किणोंमें मैं तुझे दीर्घायु प्राप्त होनेके लिये
धरता हूँ । इससे यह नोरोग होगा और बीड़िमा भी
इससे दूर होगी ।

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन ।
अ. १।११।१०

आयुषसे उद्य वन, दीर्घायुसे युक्त हो, औषधियोंके
रससे उच्छतिको प्राप्त हो ।

उत्पादुरियं मणिरयो अरातिदृषि ।
अयो सहस्वाङ्गद्विदः प्र ण आयुषि तारियत् ॥
यह जगिद मणि हिमामे वरानेवाका है, शत्रु भूत शीतोंको
दूर करनेवाका है और बल बढ़ानेवाका है, यह हमारी
आयुको बढ़ावे ।

यदा यशनाक्षायणा हिरण्यं शतानीवाय सुम
नस्यमानाः । तले यशाम्यायुषे वर्धसे कलाय
दीर्घायुयाय शतशरदाय ॥ अ. १।२५।३

उपम मनवासे बज्रकी वृद्धि करनेकी कामना करनेवाले
येष्ट पुत्र मँझकी बज्र प्राप्त करनेके लिये शरीरपर सुवर्ण
(का आयुषय) रखते हैं । वह सुवर्ण दीर्घायु, मेत्राभिया,
बल, औषधोंकी शीघ्र आयु दान् शत हो इसलिये तेरे
शरीरपर बाँधना हूँ ।

वर्धये यन्तु मृत्युयो यानादुरितरान् शतम् ।
अ. १।११।५, १०
मेझकी वृद्धिके मृत्यु का दुःख हटाने दूँ हो ।

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम् ।

अ. ३।३।१११

पर्जन्यकी वृष्टिजलसे हम ढकीको प्राप्त हों और हम मर न बनें । हमें श्रीमन्न मृत्यु न आवे ।

इदं स्तं प्राणापानी माय गातमितो यूयम् ।

अ. ३।३।११६

हे प्राण और अपान यहाँ रहो, मुम इससे दूर न जाओ ।

प्राणेन प्राणतां प्राणेद्वैव भव, मा मृथाः ।

अ. ३।३।११९

जीविष रहनेवालोंकी जैसी प्राणशक्ति प्राप्त कर और यहाँ जीवित रह, मृत नर जा ।

प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः । अ. ३।२८।४
प्राण तथा अपान द्वारा सुरक्षित होकर यह सौ हिम-
काण्ड-सी बर्फ-जीवित रहे ।

आयुष्मतामायुष्मतां प्राणेन जीव, मा मृथाः ।

अ. ३।३।११८

दीर्घ आयुवालों और आयुष्य बढ़ानेवालोंकी जैसी प्राण-
शक्तिसे जीवित रह, मृत नर जा ।

प्राणापानां मृत्योर्मा पातं । अ. ३।१।११

हे प्राण और अपान ! मृत्युसे मेरी मुक्ति करो ।

म पिदार्तं प्राणापानायनद्याहायिव मज्जम् ।

तु रिता और श्रापिनी माता ज्ञानपूर्वक इसको जराके पश्चात् मृत्यु हो देता करें ।

अनुष्य दीर्घ आयु चाहता है । इसलिये दीर्घायु वाहने-
वाला अनुष्य यहाँदिये, घबर्नोका जर करें, बारंबार ढक्का-
रण करें, बारंबार भजन करें । काम अवश्य होगा जैसा—

शरीरं अस्याङ्गानि जरसे घृतं— इसका शरीर
और इसके अंग दूध अवस्थातक पहुँचा दो ।

यह वचन अपने शरीरके विषयमें भी बारंबार बोला जा
सकता है । मनके वह विश्वाससे काम होता है । तथा—

कृणुत जरसे आयुः अस्मै— इसकी आयु दूध
अवस्थातक करो ।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतं— सबदेव
सौ वर्षोंकी मुंहदारी आयु करें ।

दशर्मा उग्रः समना यशेद्— यह सप्तवीर बनकर
दसवीं दशकतक जीवित रहे ।

जतमृत्पुं कृणुत दीर्घमायुः— इसकी दीर्घायु करके
जाते पश्चात् आयु हो ।

शतं च जीव शरदः पुरुषीः— सौ वर्षोंकी दीर्घायु
इसे मिले ।

एवं जीव शरदः सुपर्वाः— जतम तेजस्वी होकर
सौ वर्ष जीवित रह ।

आयुस्मै घेहि— इसको आयु प्रदान करो ।

मेममन्ये मृत्युधो हिंसिषुः शतं ये— सैकड़ों मृत्यु
इसका नाश न करे ।

इमंश्च आयुषे वर्चसे नय— हे भस्मे ! इसे आयु और
वैजय के लिये ले जा ।

अस्पर्शमेनं शतशारदाय— सौ वर्षकी आयुके लिये
मैं इसे स्पर्श करता हूँ ।

तत्ते चक्षामि आयुषे— आयुष्यकी प्राप्ति के लिये तुझे
यह मणि बाँधता हूँ ।

मा मृधाः— मत मर ।

प्राणेन जीव— प्राणसे जीवित रह ।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं— प्राण और अपान मृत्युसे
मुझे बचावे ।

जरा मृत्युं कृणुतां— जराके पश्चात् मृत्यु हो ।

इस तरह अन्याय्य वचनोंका भी उपयोग हो सकता
है । कोई बीमार पड़ा हो, तो पवित्र होकर सिरकी ओरसे
पवित्रक अपने हाथोंको घुमाता और ये मंत्रभाग बोलता,
मनमें ही निमग्नपूर्वक बोलता । धारदार बोलता । अपने
हाथोंमें बीमारी दूर करनेकी शक्ति है ऐसा मानकर
इससे बीमारी दूर होगी ऐसे विश्वाससे यह करता ।
रोगीका भी साथ-साथ विश्वास हो तो लाभ शीघ्र होगा ।
अन्य वचन अन्य समय बोलनेके लिये हैं । यह विचार
करके पाठक जान सकते हैं ।

वनस्पति

शं नो देवी पृश्निपर्वणं निर्मात्या अकः ।

अ. २।१५।१

हे शक्तिपर्वी देवी, हमारे लिये कल्याण कर, और
प्राणियोंको दुःख प्राप्त हो ।

अरायमस्तृकपावानं यश्च स्कार्ति जिहीर्षति ।

गर्भादि कण्यं नाशाय पृश्निपर्णि सहस्र च ॥

अ. २।२५।१

गोमा हथनेवाला, रक्त पीनेवाला, जो पुष्टिको हटाता है,
गर्भको सानेवाला जो रोगभीज है उसका नाश कर । हे
शक्तिपर्णि ! दुःखको दूर कर ।

यीरुत् क्षेप्रियनाशायप शेप्रियमुच्छतु ।

अ. २।८।२-५

आनुवंशिक रोगको दूर करनेवाली यह औषधि आनु-
वंशिक रोगको दूर करे ।

इषामा सरूपं करणी पृथिव्या अशुद्धता ।

इदमूषु प्र साधय पुनः रूपाणि कल्पय ।

अ. १।२५।२

इषामा वनस्पति सरूप करनेवाली है, पृथिवीसे ऊपर
उछाड़ी गयी है, इस कर्मका उत्तम साधन कर और पुनः
पूर्ववत् शरीरका रंग कर ।

ग्रं सोमः सहोपधीभिः । अ. २।१०।२

औषधियोंके साथ सोम कल्याण करनेवाला हो ।

इदं जनासो चिदध महद्मल्ल वदिष्यति ।

न तत्पृथिव्या नो दिवि येन प्राणन्ति धीरधः ।

अ. १।३२।१

हे लोगों ! यह जानो कि ज्ञान यही घोषणा करके
कहेगा । जिससे वनस्पतिर्था गोबिल रहती हैं वह पृथिवीमें
नहीं है और न पुच्छोंमें है ।

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव ।

असिरूपासि औषधे निरितो नाशया धृष्ट ॥

अ. १।२३।३

तेरा लयस्थान कृष्ण है और नास्थान भी कृष्णवर्णका
है । हे औषधे ! तुझको वर्णवाली है, इसलिये तू हमके
सित धरने दूर कर ।

सरूपहरयमोषये सा सरूपामिदं धृष्टि ।

अ. १।२५।३

हे औषधे ! तू सरूप रचकाओ करनेवाली है । अतः तू
रचकाओ सरूप कर ।

यधू

सोमजुष्टं मल्लजुष्टं अर्यग्णा रसभूतं भगम् ।

धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम् ।

अ. २।२१।२

आत्मज्ञानसे सेवित, मादृशों द्वारा सेवित, श्रेष्ठ मन-
वर्तने हुकूम किया यह चन दे, धाता देवके मन्त्र नियमा-
नुसार पतिकी प्रशंसके लिये मैं इसको सुयोग करता हूँ ।

इदं दिण्यं शुक्लस्यमोक्षो भयो भगः ।

पते पतिव्यसयामनुः प्रतिवामाव येस्ये ।

अ. २।११।०

यह उत्तम सुवर्ण दे, यह देव दे, और यह धन दे ।

ये पतिकी कामनाके लिये और तेरे लाभके लिये तेरे पतिको देते हैं ।

आ नो अग्रे सुमति संभलो गमेदिमां कुमारौ
सह नो भगेन । अ. २।३६।१

हे अग्रे ! धनके साथ उत्तम वक्ता पति इस उत्तम बुद्धि-
मयी कुमारोंके प्रति जा जावे ।

यदन्तरं तद्वाह्यं यद्वाह्यं तदन्तरम् ।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौपधे ॥

अ. २।३७।४

जो अन्दर हो वही बाहर हो, जो बाहर हो वही अन्दर
हो । विविध रूपवाली कन्याओंका मन प्रहण कर ।

या ग्रीहान् जोषयति कामस्येयुः सुसयता ।

अ. ३।३५।३

कामका बाण लगनेपर ग्रीहाको जोड़ित करता है ।

यथैवं भूम्या अधि तृण वातो मधायति ।

एवा मन्नामि ते मनो, यथा मां कामिन्वसो,
यथा मन्नापणा असः ॥ अ. ३।३७।१

हे स्त्री ! जैसा यह पृथ्वीपरका घास वायु दिखाता है
वैसा मैं तेरे मनको दिखा देता हूँ, वैसे मेरी इच्छा करनेवाली
हो, तुमसे दूर जानेवाली न हो ।

शिया मय पुरुषेभ्ये मोक्ष्यो अश्वेभ्यः शिया ।
शिवार्म सयर्म क्षेत्राय शिया न इदेषि ॥

तास्त्वा पुत्रविधाय देवी प्राचन्त्वोपधयः ।

अ. ३।२३।४

वे दिव्य औपधियां पुत्रप्राप्तिके लिये तेरी रक्षा करे ।

एवा मगस्य जुष्टेयमस्तु नारी सम्रिया पत्या-
विराधयन्ती । अ. २।३६।४

ऐश्वर्यसे सेवित हुई यह स्त्री पतिको पिय और पतिसे
विरोध न करती हुई यहाँ रहे ।

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।

भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥

अ. ३।२३।३

पुरुष पुत्र उत्पन्न कर, उसके पीछे भी पुत्र ही होते रहें ।
ए पुत्रोंकी माता हो, जो हो चुके तथा जो होनेवाले सब
पुत्र ही हों ।

तं त्वा धातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां

चहयः सुजातम् । अ. २।३३।५

उस तुल्य उत्तम जन्मे हुए बड़े हुएके पीछेसे बहुतसे
बढ़नेवाले भाई उत्पन्न हों ।

पति-पत्नी

परि त्वा परितस्तुनेक्षुणागामविद्विषे ।

यथा मां कामिन्वसो यथा मन्नापणा असः ॥

अ. ३।३५।५

कार्य कर । सब कार्य उसके दाहिनी ओर कर, जो वर तैरी कामनाके अनुकूल है ।

देवा गर्भे समैरयन् तं व्यूर्णयन्तु सूतवे ।

अ. १।१३२

देव इस गर्भको घेरना करें, प्रसूतिके लिये उस गर्भको घेरित करें ।

अहमसि सहमानाधो स्वमसि सासहि ।

उभे सहस्रती भूर्या सपत्नी मे सहायद्वै ॥

अ. ३।१८५

मैं विजयी हूँ और तू विजयी है । दोनों विजयी होकर सपत्नीका पराभव करेंगे ।

पला सौमयत्वमस्त्वसौ । अ. २।३११

इस कुमारीको इस पतिसे सौभाग्य प्राप्त हो ।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा
सुभगां कृणोति । अ. २।३१३

हे अग्ने ! यह नारी पतिको प्राप्त करे, राजा सोम इसको वधम माग्यवती करे ।

धूर्क्ष यद् गावः परिपस्वजाना अनुस्फुरं शर-
मर्चन्त्युभुम् । अथर्व १।१।३

धूर्क्ष परिपस्वजाना गावः क्षभुं शरं अनुस्फुरं अर्चयन्ति— धूर्क्ष (से उत्पन्न धनुष्यके साथ रहकर) गो (घर्मसे बनी दोगीश) क्षीये बाणकी स्फूर्तिके साथ क्षिम तरह फैकती दें (इस तरह पुत्र्यके साथ मिलकर रहनेवालों बिना स्फूर्तिके वीर पुत्रकी शत्रुघ्न भर्जे ।)

धनुष्यकी छद्दी पुण है, क्षीयी क्षी है, इनकी पुत्र बाण है । जिस तरह धनुष्य शत्रुघ्न बाण फैकता है उस तरह गृहस्थ अपने पुत्रको बलवान् बनाकर शत्रुघ्न भर्जे और शत्रुघ्न पराजय करें ।

रट्याभि चि तनु उभे आरत्वा इय उपया ।

अथर्व १।१।३

(उभे जानी उपया इय) धनुष्यके दोनों ओर जैसे शीतले उभे रहने हैं, इस तरह (इस पक्ष अग्नि बिजु) वही ही दोनोंको नगानी । (धनुष्यकी क्षीयी धनुष्यके दोनों ओरकी तनाकर रखती है, जिससे बिजय मिळता है । इस तरह इस संगममें दोनों-बध-बीज, भीमल द्वाद,

विद्वान् अविद्वान्- कार्य करनेके लिये जिस देवमें सिद्ध रहने हैं, वह देव विजयी होता है ।)

त्वष्टा दुद्धिरे वहतुं (चि) युगकि । अ. ३।३१५

पिता पुत्रकी दूधजे देनेके लिये बलव करके रखता है ।

सुसप्रसूति

आ ते योनिं गर्भं पतु पुमान् बाण इत्युधिम् ।

अ. ३।२३/२

जैसा बाण भातेमें जाता है वैसा यह पुरुषका गर्भ ठेरे गर्भाशयमें भावे । (बाण शत्रुनाश करता है वैसा यह गर्भ वीर बने, शत्रु नाश करे ।)

आ योनिं गर्भं पतु ते । अ. ३।२१५

ठेरे उदासे पुरुष गर्भ भावे ।

रक्तप्राव दूर करना

तेभिर्मे सर्वैः संक्षारिषेणं से ध्यायशमसि ।

अ. १।१५।३

उन सब योगोंसे इस सब घनको सम्प्रक्ष रीतिसे हृष्टा करवे हैं ।

नियमसे चलना

चायस्पतिर्नयच्छतु । अथर्व १।१।३

विद्वान् नियमसे चलाये । (विद्वान् नियमसे अथ शोध लें, जिससे उनकी दृष्टि होगी ।)

गणि धारण

परीदं पासो अधिधाः स्मरन्वे । अ. २।१३३

इस बचको अपने बह्मपाण्डे लिये धारण करो ।

जगिहो जम्माद् विशारद् विशरंघाद्विमिशो-

चन्नाम् । गणिः सदृघ्योयः परि जाः पातु

विष्मत्तः ॥ अ. २।१२

यह अतिव गणि सदृघ्य गोवोंमें गुण होनेके कारण उग्न-हार्द, क्षीयता, शीघ्र रोग, तथा शोध करनेकी रोगवद्-तिसे, सब ओरसे हमारा हान करे ।

अयं विष्मत्तं सदृघ्येयं याचते अग्निपः ।

अयं जो विष्मत्तपत्नी अग्निपः याचतेदया ॥

अ. २।१३

यह अतिव अग्नि शीघ्र रोगसे बच पावे, सदृघ्य अथ

करनेवाले क्रिमियोंको साधा पहुँचाता है, यह सब जाँचधी शक्तियोंसे युक्त है यह पापसे हमें बचावे ।

क्षणश्च मा जगिदश्च विष्कधादभि रक्षताम् ।

अरण्यादय आभृत कृप्या अन्यो रसेभ्य ॥

अ २।१।५

क्षण और जगिद ये दोनों शापक रोगसे मेरा रक्षण करें । एक वनसे लाया है और दूसरा खेतीके रसोंसे बनाया है ।

काम

कामेन त्वा प्रति गृह्णामि, कामेतत्ते । अ ३।२९।७
कामसे प्राप्त होता हूँ । यह सब है काम । तेरा कर्तव्य है ।

पापसे बचना

यदेनश्चकृवाञ्, यद्ग पप, तविश्वकर्मन् प्रमुञ्चा
स्वस्तये । अ. २।३।३

इसने पाप किया, इसलिये यह बन्ध हुआ है । हे विश्वके रचना करनेवाले प्रभु ! उसको कल्याण प्राप्त हो इस लिये उसे मुक्त कर ।

पापमार्तव्यकामस्य कर्ता । अ २।१२।५

कनिष्ठ कार्य करनेवाला पापको प्राप्त होवे ।

मातेव पुत्र प्रमत्ता उपस्थे मित्र एन मित्रिया

स्वारयहस । अ २।२८।१

जैमी माता प्रेमसे पुत्रका गोदमें लेती है । उस तरह मित्र मित्रसबधि पापसे इसको बचाव ।

ते नो निर्मत्त्या पाशेभ्यो मुञ्चताहसो-अहस ।

अ १।११।२

ये देव विनाशके पाशोंसे तथा पापसे इसे मुक्त करें ।

विश्व सुप्र निचिकेपि द्रुग्धम् । अ १।१०।२

हे उग्र वीर ! सब पापको तू जानता है । पाप कहाँ रहता है वह तू जानता है ।

व्याकृतय प्यामितायो चित्तानि मुह्यत ।

अथो यददीपा हृदि तदेवा परि निर्जदि ॥

अ ३।२।४

इस शत्रुओंके सदृशों और इनके चित्तोंको मोहित करो । और या इनके हृदयमें विचार है उन सबका नाश करो ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना । अ. ३।३।१-५, १०-११

सब पापोंसे मैं दूर रहता हूँ ।

वि शक्र. पापकृत्यया । अ ३।३।२

समर्थ मनुष्य पापकर्मसे दूर रहता है ।

सजातानुग्रेहा वद् ब्रह्म चाप चिकीहि नः ।

अ १।१०।४

हे उग्र वीर ! स्वजातियोंसे धोषणा करके कद दे कि हमारा शत्रु ही दोषोंको दूर कर सकता है ।

आत्मरक्षण

तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः । अ २।१३।५

सब देव तेरी सुरक्षा करें ।

सूरिरसि, वर्चाधा असि, तनूपानोऽसि ।

अ २।१।४

तू शानी है, तू तेजस्वी है, तू शरीरका रक्षण करने वाला है ।

अन्न-जल

तौलस्य प्राशान । अ १।७।२

तोलकर खाओ । (मित्र भोजन करो)

क इद कसा अदात् काम कामयादात् ।

अ ३।२९।७

किसने यह किसको दिया । काम ही कामके लिये देता है ।

दानाय चोदय ।

अ ३।२०।७

दानके लिये मेरणा कर ।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त स फिर ।

अ ३।२४।५

शत हस्तोंसे प्राप्त कर और हजार हाथोंसे दान कर ।

धृत पीत्वा मधु चाय गन्धम् ।

अ २।१।१

मीठा सुगन्ध गोधा घी पीओ ।

इह पुष्टिरिह रस इह सदद्यसातमा भव ।

पशून् यमिनि पोषय ।

अ ३।२८।४

यहाँ पुष्टि और यहाँ रस है । यहाँ हजारों काम देनेवाली होकर रह । हे उग्र वीर यद्य देनेवाली गो । यहाँ पशुओंको पुष्ट कर ।

सा न आयुधमतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ।

अ. ३।१०।३८

यह व हमारी दीर्घायुवाली प्रजाको धनकी दृष्टिसे युक्त कर ।

अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपातस्वधा ।

अ. ३।११।१

यह (सोलहवां भाग कर) दिया हुआ रक्षक बनकर हितकौंसे रक्षण करनेवाला तथा अपनी धारणा करनेवाला होता है, और यह दुःखसे मुक्त करता है ।

दुर्गा मे पञ्च प्रदिशो दुःहामुयीं यथावलम् ।

अ. ३।१२।१

ये सभी पाँच दिशाएँ यह दृष्टी यथाशक्ति मुझे साम-
र्थ्य देवे ।

एष धां चावाणुधिषी उपस्ये मा धुघन् मा दपत् ।

अ. ३।१३।१

हे आवाणुधिषी ! यह तुम्हारे समीप रहता हुआ तुमसे
नपचा तुमसे दुःखी न हो ।

गृहनिर्माण

गृहानलुभ्यतो यपं संयिरोमोप गोमयः ।

अ. ३।१०।११

हमारे घरोंमें बहुत माँसे हों और इन्हीं वस्तुओंकी मूल्यता
न रहे ।

तं स्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिद्वीरा
उपसंचरेम ।

अ. ३।११।१

हे घर ! तैरे जातों और हम सब उत्तम वीर, उत्तम
पाशक करते हुए संभार करते रहेंगे ।

इदेष भुया तिष्ठ शालेऽभ्याघर्षा गोमतीम्बु-
तायताः । ऊर्जस्वतां घृतयनी पयसायुच्युरयस्य
महते सोममाय ॥

अ. ३।१२।१

हे घर ! तुम्हीं रह, यहाँ खड़ा रह, गौमीसे युक्त,
गोहीसे युक्त, मधुर भावसे लज्जशान् घीसे युक्त, दूधसे युक्त
होकर महान् सोमपति युक्त होकर पत्नी पका रह ।

मा तया पातो गमेदा गुपार माघेनयः स्वाप-
माहपद्मानाः ॥

अ. ३।१३।१

आने वाला बरखा और कपड़ा तथा दूधकी दूध और
गर्वाह आ जावे ।

धरुणयसि शाले बृहच्छन्दा प्रतिधान्या ।

अ. ३।१४।१

हे घर ! तुम्हारे छतवाला और पवित्र धाम्यवाला होकर
धारणाकिये युक्त होकर रह ।

सृणं चसना सुमना अतस्तथं ।

अ. ३।१५।१

पासकी पढ़नेवाला व घर हमारे लिये उत्तम मनवाला
हो ।

मानस्य पतिन शरणा स्योता देवी देवेभिर्नि-
मित्तस्यमे ।

अ. ३।१६।१

संनमनकर रक्षक, बहने योग्य, मुक्तकर यह दिव्य घर
देवीदेवा पहिले बनाया गया था ।

अनेन स्याममधि रोद घंशोमो विराजतप्र
वृक्ष्य दाम्भम् ।

अ. ३।१७।१

हे बाँध ! अपने तीर्थरक्षके अपने आभारपर खड़ा रह ।

उमगौर बनकर वापुर्बोको दूर रह ।

शाले शान्तिं जियेन दादः सर्ववीराः ।

अ. ३।१८।१

हे घर ! सब वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सब वीरोंक
जीवित रहेंगे ।

एमां कुमारतक्षण मा पारो अगता सद् ।

एमां परिच्छुतः युगम आ दमः बरदशैरुगः ॥

अ. ३।१९।१

हम घरके पाप कुमार काटे, गदन काटे, बरदेके साथ
बहनेवाले गो आदि जानी काटे, हमने पाप मधुर रससे
पका पका दूहीके कलशोंके साथ आ काटे ।

असी यो अपराद् गृहः तत्र समपरादः ।

तत्र सोदिव्यं च्यतु सर्वाध पातुपापः ॥

अ. ३।२०।१

जो यह मीच घर है, वहाँ विचलित रहें, वहाँ जंग हो,
तब पापका बहा रहें ।

मा मे रिगनुपसमारो गृहाम् ।

अ. ३।२१।१

हे घर ! मेरे आभारसे इन्हींसे विरह न हो ।

पूर्वं मादि म भर बुद्धमेने घृतस्य धाममम्

तेन वसुधाम् । इमां पातुमन्तेना समद्वर्षा-

अ. ३।२२।१

द्वर्षांमेमि ब्रह्मण्येनाम् ॥
हे घर ! हम पूर्व में बरदेके साथ समद्वर्षके मीची

धाराको अच्छी तरह भरकर ले जाओ । पीनेवालोंको अच्छी तरह भर दे । यज्ञ और अन्नदान इस घरका रक्षण करते हैं ।

गौ

स नः प्रजास्वात्मस्तु गोषु प्राणेषु जागृहि ।

यह तू हमारी प्रजा, आत्मा, गौर्वों और प्राणोंके विषयमें जागता रह ।

इहैव गाव पतनेहो अक्रैव पुष्यत ।

इहैवोत प्रजायध्यं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥

अ. ३।११।३

हे गौर्वों ! यहाँ आओ, सड़के समान हुए बनो, यहाँ

बच्चे उत्पन्न करो और आपका प्रेम सुसपर रहे ।

मया गावो गोपतिना संचध्यं अयं वो गोष्ट

इह पोदयिष्णुः । रायस्पोषेण यहुला भवन्तो-

र्जावा जीयन्तीरुप वः सदेम ॥ अ. ३।११।४

हे गौर्वों ! मुझ गोपतीके साथ मिली रहो । तुम्हारा पोषण करनेवाली यह गोशाला यहाँ है । शोभायुक्त वृद्धिके साथ बढ़ती हुई, जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं ।

संज्ञमाना अविभ्युपरिहमिन्गोष्टे करीयिणीः ।

विधत्ते सोऽयं मध्वनमीवा उपेतन ॥

अ. ३।११।५

इस गोशालामें मिलकर रहती हुई, निर्भय होकर गोबरका उत्पन्न खाद उत्पन्न करनेवाली, शांति उत्पन्न करनेवाले रस-दूध-का धारण करती हुई हमारे पास हमारे समीप गौर्वें जा जाय ।

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत ।

इहैवोत प्रजायध्यं मया वः संयुजामसि ॥

इमं गोष्ठं पशवः सं स्नवन्तु । अ. ३।२६।१

इस गोशालामें पशु रहें ।

अध्वावतीर्गोमतीर्न उपासो वीरवतीः सदमु-

च्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ अ. ३।१५।७

कल्याण करनेवाली उपायें घोटों और गौर्वोंके साथ तथा वीर पुत्रोंके साथ हमारे घरोंको प्रकाशित करें । घी देवें, सब ओरसे संतुष्ट होकर आप सदा हमें कल्याणोंसे सुरक्षित रहें ।

तीम्रो रसो मधुपृचामरंग आ मा प्राणेन सह

वर्चसा गमेत् ।

अ. ३।१३।५

यह मधुररासे भरा तीम जलरूप रस, प्राण और तेजके साथ मुझे प्राप्त हो ।

ऊर्जमसा ऊर्जस्वती घत्तं पयो असै पयस्वती

घत्तम् । ऊर्जमसै घाशावृथिरी अघातां विश्वे-

देवा मदत ऊर्जमापः ॥ अ. ३।२९।५

अन्नवाली (घाशावृथिरी) इसे अन्न देवे, दूधवाली इसे दूध देवे, घाशावृथिरी इसको बल देवे, सब देव, मदत और लज इसे शक्ति प्रदान करे ।

आ हृतामि गवां क्षीरं आहार्यं घान्यं रसम् ।

आहृता अस्माकं घोरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥

अ. ३।२६।५

मैं गौर्वोंका दूध लाता हूँ, घान्य और रस लाता हूँ । हमारे घोरे आगये हैं, ये पत्नियाँ हैं और यह घर है ।

सं सिचामि गवां क्षीरं समाज्येन घलं रसम् ।

सं सिक्ता अस्माकं घोरा भुवा गावो मयि गोपतौ ॥

अ. ३।२६।५

यदि नो गां हंसि यद्यभ्यं यदि पुरुषम् ।

तत्त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसौ अविरहा ॥

अ. ३११६४

यदि हमारी गौका वध तू करेगा, यदि घोड़ेका या यदि पुरुषका वध करेगा, तो तुझे सीसेकी गोलीसे बंध करूंगा, जिससे हमारे समीप कोई धोरेका नाश करनेवाला नहीं रहेगा ।

कृपि

सीते वन्दामहे त्वाचां च सुमये भव ।

यथा नः सुमना असौ यथा नः सुफलं भुवः ॥

अ. ३११७८

हे हलकी रेपा ! तुझे हम वन्दन करते हैं, तू संमुख हो, और भाग्यवाली हो । तू उत्तम हृष्टावाली हो और सुफल देनेवाली हो ।

शुनं वाहाः, शुनं तरः, शुनं कपतु लांगलम् ।

शुनं वर्या बध्यन्तां शुनमप्टासुदिरुष ॥

अ. ३११७९

बैक सुखी हों, मनुष्य प्रसन्न रहें, हल सुखसे जमीन खोदें, रक्षियों सुखसे बांधी जाय, और बायूक सुखसे चलाया जाय ।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता

महद्भिः । सा नः सीते पयसाभ्यामिष्टस्योर्जं

स्वती घृतधरिण्यमाना ॥ अ. ३११७९

घी और मधसे सिंचित हलकी रेपा सब देवों और बायुओंसे अनुमोदित हुई । हे हलकी रेपा ! तू घीसे सिंचित होकर हमें सब देनेवाली होकर दूधसे पुत्र कर ।

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा च

अनुयन्तु वाहान् । शुनासीरा हविषा तीक्ष्ण-

माना सुविष्यला गोपधीः कर्तमसे ॥ अ. ३११७९

मुत्तर हलके पाठ भूमिकी उत्तम रीतिसे खोदें । किमान सुखसे बैलोंको चकावें । हे बायु और सुन ! तुम हविसे समृद्ध होकर हमके लिये उत्तम फलयुक्त धान्य देवें ।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।

सा नः पयस्वती दुदामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥

अ. ३११७९

इन्द्र हलकी रेपाकी रक्षा करे, पूषा उसकी चारों ओरसे रक्षा करे । यह समृद्ध होकर आगेके वनोंमें हमें अधिक अधिक रस प्रदान करे ।

नेदीय इत् सृण्वः पक्वमाधन् । अ. ३११७९

हंसूये परिपक्व घान्यको हमारे निकट ले आवें ।

विराजः शुष्टिः सभरा वसन्तः । अ. ३११७९

अन्नकी उत्पन्न हमारे लिये भरपूर हो जावे ।

सीरा युञ्जति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।

धीरा देवेषु सुन्नयौ ॥ अ. ३११७९

जो शत्रुियोंमें उत्तम मनवाले बुद्धिमान् कवि हैं वे हल जोतते हैं । और जनोंको प्रपन्न करते हैं ।

भगो नो राजा नि कृपि तनोतु । अ. ३११८४

राजा भग हमारे लिये हृषिको बडावे ।

युनक्त सीरा, विद्युगा तनोत, कृते योनौ घ-

तेह धीजम् ॥ अ. ३११८२

हल जोतो, बुनोओ फेडा दो, भूमि तैपार करनेपर धीज वही दो ।

जल

अप्सु मे सोमोऽप्रयात् । अमृतैर्विभ्यानि भेषजा ॥

अथर्व ११४२

सोमने सुखे कहा कि जलमें सब औषधियां हैं ।

अप्सन्तरसृत् अप्सु भेषजम् । अथर्व ११४४

जलमें अमृत है, जलमें औषधि गुण है ।

आपः पूर्णीत भेषजं वरूयं तन्वे मम । अ. ११९३

हे अल ! तुझे औषध दो और मेरे शरीरको संरक्षण दो ।

ईशाना वार्याणाम् । क्षयन्तीर्ध्वणीनाम् ।

अपो याचामि भेषजम् ॥ अथर्व ११५४

वरणीय सुखोंका स्वामी तू है । प्राणिनोंका निवासक जल है । इस जलसे मैं औषधकी याचना करता हूं ।

आप इहा उ भेषजोरापो अमीषचातनीः ।

आपो विश्वस्य भेषजोस्तास्त्या मुञ्जन्तु क्षेत्रियात् ।

अ. ३१७९

जल औषधी है, जल रोग दूर करनेवाला है, जल सब रोगोंकी औषधी है, इस जलसे जानुवैतिक रोगसे तुझे मुक्त करवा दूं ।

अयां तेजो ज्योतिरोजो घलं च पनस्वतीनामुग

धीर्याणि । अमित्राधि पारयामः । अ. ११९५४

जलका तेज, प्रकाश, जोश, बल और वनस्पतिविकी चीर्ष (हम सुखमें हैं) उनका हम पारण करते हैं ।

(आपः) अग्ने रणाय चक्षसे (दधानतः) ।

अथर्व ११५९

जल बली शक्तीवज्रादे दधानते लिये हमें पारण करे । (हमारे जन्मा शक्तीवज्रा रहे)

ता न आपः जं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।१-४
वे जल हमारे लिये सुखदायित्व देनेवाले हों ।

इमा आपः प्रभरास्ययद्मा यद्मनाशिनोः ।
गृहानुपप्रसीदामि अमृतेन सदाश्रिना ॥

अ. ३।१२।९

ये रोगनाशक और रोगरहित जल मैं भर लाता हूँ ।
अमृत, अन्न और अग्नि के साथ मैं घरों में जाकर बैठता हूँ ।

जं नः खनित्रिमा आपा । अ. १।६।४

खोदकर निकाला जल हमें सुख देवे ।

मिया नः सन्तु वार्षिकोः । अ. १।६।४

वृष्टि से प्राप्त जल हमें कल्याण करनेवाला हो ।

शन्तु सन्तु अनूत्याः । अ. १।६।४

जलपूर्ण अवशेष जल हमें शान्ति देवे ।

शानु या कुम्भ आभूताः । अ. १।६।४

जो जल घड़े में रखा है वह हमें शान्ति देवे ।

शं न आपो घन्वन्त्याः । अ. १।६।४

रेतीले अवशेष जल हमें कल्याण करनेवाला हो ।

घृतश्रुतः शुच्यो याः पावकास्ता न आपः

शं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।४

तेजसी, पवित्र, शुद्धता करनेवाला जल हमारे लिये
सुखदायी हों ।

शंयोरभिध्वजन्तु नः । अथर्व १।६।१

जल हमें शान्ति और इष्ट प्राप्ति देनेवाला होवे ।

शिवया तन्वोप स्फुटत त्यजं मे । अ. १।३३।४

अपना कल्याण करनेवाले शरीर से मेरी त्वचा को स्पृश करो ।

(हे आपः !) यो वः शिवतमो रसः तस्य

भाजयते ह नः । अथर्व. १।५।२

हे जलो ! जो आपमें कल्याण करनेवाला रस है, उसका

हमें भागी करो । (हमें वह कल्याण करनेवाला तुम्हारा
भाग मिले ।)

आपो जनयथा च नः । अथर्व. १।५।३

हे जलो ! हमें अशांति ।

आपो भयन्तु पीतये । अथर्व १।६।१

जल हमारे पीने के लिये, रक्षण के लिये हो ।

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः । अ. १।३३।४

हे जलो ! कल्याणकारी नेत्र से आप मुझे देखो ।

आपो हि प्रा मयो भुवः ता न ऊर्जं दधातन ।

अथर्व. १।५।१

जल सचमुच सुखदायी है, वह जल हमें शक्ति दे ।

शं नो देवीरभिप्रेये । अथर्व. १।१।१

दिग्ब जल हमें शान्ति सुख देवे ।

तस्मा अरोगभावो यस्य क्षयाय जिव्यथ । ।

अथर्व. १।५।३

जिसके निवास के लिये आप यत्र काते हैं, आपसे
पर्याप्त मात्रा में (वह बल) प्राप्त हो ।

अपामृत प्रशस्तिभिरश्व्या भवथ वाजिनः ।

गावो भवथ वाजिनी । अथर्व. १।४।४

जल के प्रशंसनीय गुणों से घोड़े बलवान् होते हैं और
गौवं बलशालिनी होती हैं ।

सुभाषितोंका उपयोग

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंके सुभाषित यहाँ दिये
हैं । ये इतने ही हैं ऐसा नहीं । संख्यामें ये सुभाषित
अधिक भी हो सकते हैं । वे किस तरह अधिक हो सकते हैं
यह इत लेखमें बताया ही है । व्यवहारमें उपयोगी सार्थ
अत्र भाग सुभाषित कहा जाया है ।

सूरिरसि, यचोँचा असि, तनूपानोऽसि ।

अ. २।१।४

तू शानी है, तू सेजली है, तू शरीर रक्षक है । यह
एकमेत्र है, पर इसमें तीन सुभाषित हैं ।

सीसेकी गोली

‘तं स्या सीसेन विध्यामः’ उस तुम्हको सीसेसे
हम वेध करेंगे । सीसेसे वेध करनेका अर्थ सीसेकी गोलीसे
वेध करेगे । गौछा वध करनेवालेको या पुरुषका वध करने-
वालेको सीसेकी गोलीसे वेध करनेका दण्ड कहा है ।
सीसा था, सीसेकी गोली थी और गोलीसे वेध करनेका
साधन बंदूक जैसा कुछ था ऐसा यहाँ पता लगता है ।

जलचिकित्सासे सब रोग दूर होते हैं ऐसा पाठक जलके
सुभाषितोंमें देखेंगे । सुभाषितोंका उपयोग करनेकी रीति
यहाँ बताई है । वेदके उपदेशको मानवी आचार और
व्यवहारमें खानेकी रीति यह है । पाठक इसका उपयोग
करके वैदिक जीवनमें व्यवहार करके अपना काम प्राप्त करें ।



अथर्ववेद

का

सुक्तेषु भाष्य ।

प्रथमं काण्डम् ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सावरकर,
साहित्य-याचरगति, चेदाचार्य, गीतालङ्कार,
भाष्यर व्याख्याय मंडल, आनन्दाश्रम पारदी [नि गुरु]

तृतीय बार

मार् २००९, इ. १८५१, ग. १९५०

ब्रह्म और ज्येष्ठ ब्रह्म ।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेदे परमेष्ठिनं यश्च वेदे प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्वम्भर्मनुसंविदुः ॥

(अथर्व १०।१०।१०)

“ (ये) जो (पुरुषे ब्रह्म) पुरुषमें ब्रह्म (विदुः) जानते हैं, वे (परमेष्ठिनं) परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानता है, और जो प्रजापतिको जानता है, तथा जो (ज्येष्ठ ब्राह्मणं) श्रेष्ठ ब्राह्मणको जानते हैं, वे स्वम्भर्मको (अनुसंविदुः) उत्तम प्रकार जानते हैं । ”



अथर्ववेद के विषयमें

स्मरणीय कथन ।

(१) अथर्ववेदका महत्त्व ।

अथर्ववेदका नाम "मन्त्रवेद, अमृतवेद, आत्मवेद" आदि है, इससे यह आत्मज्ञानका वेद है, यह स्पष्ट है। इसी लिये कहा है, कि—

श्रेष्ठो ह वैदस्तपसोऽग्निं जातो ब्रह्मज्ञानं हृदये संव्यूव ॥

(गोपथ भा. १।१)

एतद्दे भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भूयवतिरसः। येऽन्निरसः स रसः।
येऽन्नवागस्त्वज्ञेयम् । यदेतन्नं तदमृतम् । यदमृतं तद्ब्रह्म ॥

(गोपथ भा. ३।४)

आचार्यो वा इमे वेदा क्रयवेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः ॥

(गोपथ भा. २।१६)

"(१) यह छेद वेद है, ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयमें यह प्रविष्ट रहता है। (२) भूयविंश वषा ब्रह्म ज्ञान है, जो अंगिरस है वही रस अर्थात् सत्त्व है, जो अथर्व है वह भेदज (द्वा) है, जो भेदज है वह अमृत है, जो अमृत है वही ब्रह्म है। (३) अद्, यद्, ताम और तन्न येही आचार्य हैं।"
अथर्ववेदको इस रूपमें 'भेदज' अर्थात् विवेकीय वर करनेवाली औद्योगिक, 'अमृत' अर्थात् मृत्युको दूर करनेवाला, तथा 'ब्रह्म' वषा ज्ञान कहा है। ये तीन छन्द अथर्ववेदका महत्त्व स्पष्ट ऋषिसे व्यक्त कर रहे हैं। और देखिये—

अथर्वमन्त्रसम्प्रापया सर्वमिदमिच्छिष्यति ॥
(अथर्वशिखण्ड १।५)
" अथर्ववेद संयत्नी संशानि होवेसे सब पुण्याभिधि होने।"
यह अथर्वमन्त्रोंका महत्त्व है, इस वेदमें (लासिक कर्म) शांति स्वास्तके कर्म, (पीठिक कर्म) पुष्टि वनादि आदि

सिद्धिके कर्म, (राजकर्म) राज्यशासन, समाजव्यवस्था आदि कर्मके वादेश होनेके कारण यह वेद प्रजादितको रहित विद्येय महत्त्व रखता है। इस विषयमें देखिये—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वी शान्तिपारागः ।

निवसत्यपि तस्माद् धर्मो निरपद्रवम् ॥

(अथर्वशिखण्ड. ४।१)

" जिस राजाके राज्यमें अथर्ववेद ज्ञानकेवाला विद्वान् शांति स्थापनके कर्मपर निरत रहता है, वह राज्य अपद्रवहित होकर बढ़ता जाता है।

(२) अथर्व-शास्त्राः ।

१ वैपलाद, २ सोद, ३ वीद, ४ धीनदीय, ५ जायल, ६ जलद, ७ ब्रह्मचार, ८ देवर्षी, ९ आणवेय ये अथर्वके गो शाखाभेद हैं। इनमें इस समय विष्णुवाद और धीनदीय दो शाखायें उपलब्ध हैं, अन्य उपलब्ध नहीं हैं। इनमें षोडशा मंत्रशास्त्रेय और सूक्त वनभेद भी हैं, अन्य व्यवस्था प्रायः समान है।

(३) अथर्वके कर्म ।

- १ स्वाधीपाराक — अन्तर्गति ।
- २ मेधाजननम् — बुद्धिसे बुद्धि करनेका उपाय ।
- ३ ब्रह्मण्यम् — शीघ्र शरण, ब्रह्मचर्यन आदि ।
- ४ आय-नगर-नाहू-पर्यन्तम् — ग्राम, नगर, शीमे, राज्य आदि की प्राप्ति और उनका संवर्धन ।
- ५ पुत्ररक्षणपाप्मनजातीकृतिपुत्रागामादौ निष्कर्मिणः लतापकवि- पुत्र, वधू, धन, धान्य, व्रजा, धी, हारी, बोधे, रथ, वाक्वी आदि देवदेवके आचरणी फल देने उपाय ।

६ साम्मनस्यम्—जनतामें ऐक्य, मिलाप, प्रेम, एकता आदिही स्थापना के उपाय ।

७ राजकर्म — राजाके लिये करनेयोग्य कर्म ।

८ शत्रुनाशनम्—शत्रुको वध पहुचानेका उपाय ।

९ सप्ताभविजय—युद्धमें विजय संपादन करना ।

१० शस्त्रनिशारणम्—शत्रुओंके शस्त्रोंका निवारण करना।

११ परसेनामोहनेद्विजनस्वभनोचाटनादार्ति —

शत्रुधर्मों में मोह भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेग-भय उत्पन्न करना, उनकी हलचलको रोकना, उनको उखाड़ देना आदिका साधन ।

१२ स्वमेनोमाहपरिरक्षणभयार्थानि — अपनी सेनास उत्साह बढ़ाना, और उसको निश्चय करना ।

१३ सप्ताभे जयपराजयपरिक्षा — युद्धमें जय हार या पराजय होगा इसका विचार ।

१४ सेनापत्यादिप्रधानपुरुषचक्रमांलि — नेमापति मंत्री आदि मुख्य ओहदेदारोंके विषयका उपयोग ।

१५ परसेनामचरणम्—शत्रुकी सेनामें अंधार करके गुप्त रीतिसे घेर शान प्राप्त करना और वहाके अपने ऊपर आनेवाले अनिष्टोंको दूर करना ।

१६ शत्रुमादितस्य राज पुन म्वराष्ट्रमवेदानम्—शत्रु-द्वारा उठाये गये अपने राजाको पुन साराष्ट्रमें स्थापन करनेके उद्योग ।

१७ पाशशयकर्म—दत्तके साधनोंको दूर करना ।

१८ गौममूत्रिद्विपुष्टितराणि—गौ बैल आदिकोंका संबंधन और दृष्टिमा गोचन करना ।

१९ गृहमग्न्यराणि—घरकी चोभा बढानेके कर्म ।

२० भैरव्यानि — रोगनिवारक औषधियाँ ।

२१ गमांजानादि कर्म — (जय संस्कार)

२२ गमाजयग्रापनम्—गमामें जय, विश्वासमें जय और काह पात करनेके उपाय ।

२३ पृष्टिमापनम्—योग समवार पृष्ठ करनेका उपाय ।

२४ उपापनकर्म—शत्रुपर बर्खास्त करना ।

२५ कर्मगणपत्रम्—जय विजय आदिमें लाभ ।

२६ कर्मगणपत्रम्—जय उत्पन्न करना ।

२७ अभिचारानिवारणम्—शत्रुके अरुण बधन करना ।

२८ अभिचार — शत्रुके नाशक उपाय ।

२९ शत्रुपदमम्—शत्रुके दैर्घ्यतापमें अघात ।

३० शत्रुपदम्—शत्रुके अनुपराद कर्म ।

३१ शत्रुपदम्—शत्रुके अनुपराद कर्म ।

इत्यादि अनेक विषय इस वेदमें आनेके कारण इसका अध्ययन विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे करना आवश्यक है । ये सब उपाय और कर्म मनुष्यमानके अभ्युदय निःश्रेयसके साधक होनेके कारण मानव जातिके लिये लाभदायक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता । परन्तु यहा विचार इतनाही है कि, ये सब विषय अथर्ववेदके सूक्तोंसे हम किम रीतिसे जानकर अनुभवमें ला सकते हैं । निःसंदेह यह महान् और गंभीर तथा कष्टसे ज्ञान होनेयोग्य विषय है । इसलिये यदि सुविज्ञ पाठक इसमें अपना सहयोग देगे तोही इस गंभीर विषयका कुछ पता लग सकता है, और गुप्त विषय अधिक खुल सकता है । क्योंकि किसी एक मनुष्यके प्रयत्नसे इस कठिन विषयकी उल्लेखान होना प्रायः अशक्य ही है ।

(४) मनका संबंध ।

अथर्ववेदद्वारा जो कर्म किये जाते हैं वे मनकी एकाग्रतासे उत्पन्न हुए सामग्र्यसे ही किये जाते हैं, क्योंकि आत्मा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अतः शक्तियोंसे ही अथर्ववेदका विशेष संबंध है, इस विषयमें देखिये —

मनसैव ब्रह्मा यजस्यान्यतरं पक्षं संस्क्रतोति

(गौप्य ब्रा० ३।१२)

तद्वाचा प्रत्या विचर्यैकं पक्षं संस्क्रते । मनसैव ब्रह्मा संस्क्रतोति ॥

(ऐतरेय ब्रा० ५।३३)

अर्थात् “प्रत्येक यज्ञवेद और सामवेद द्वारा वागीपर संस्कार होकर एक भाग सुसंस्कृत होता है और अथर्ववेद द्वारा मनपर संस्कार होकर दूसरा भाग सुसंस्कृत होता है ।” मनुष्यमें वाणी और मन ये ही मुख्य दो पक्ष हैं । उन दोनोंमें ही मानवी उत्पत्तिके साधक अभ्युदय निःश्रेयस विषयक कर्म होते हैं ।

शारीरिक रोग दूर करना हो अथवा शारीक विजय संपादन करना हो, तो ये सब कर्म मानसिक सामग्र्यसे ही हो सकते हैं । इसी लिये अथर्ववेदमें मन-शक्तिकी अभिशुद्धि द्वारा उक्त कर्म और विविध पुष्टिपार्थ गिद्ध करनेके उपाय बताये हैं ।

(५) शान्तिकर्मके विभाग ।

गमाम तथा शत्रुमें शान्ति स्थापन करना अथर्ववेदका मुख्य विषय है । येनमय, शत्रुता, द्वेष आदि भावोंसे दूर करके मित्रता, एक विचार, सुमनागता आदिही तृप्ति करना अथर्ववेदका भाष्य है । इसी कर्मकी गिद्धिके लिये अथर्ववेदका रचि प्रवृत्त है । दण प्रवृत्तमें बड़े प्रवृत्तकी शान्ति है, त्रिभवा मोक्षशास्त्रमें दशो करना उचित है —

१ भूचाल, विद्युत्पात आदिके भय निवारण करनेके लिये महाशान्ति ।

२ आयुष्य प्राप्ति और वृद्धिके लिये वैश्वदेवी शान्ति ।

३ आन्यादि भयकी निवृत्तिके लिये आश्वी शान्ति ।

४ रोगादि निवृत्तिके लिये भागवी शान्ति ।

५ ब्रह्मवर्चस-ज्ञानका तेज प्राप्त करनेके मार्गमें आने वाले विघ्न दूर करनेके लिये प्राज्ञी शान्ति ।

६ राज्यलक्ष्मी और ब्रह्मवर्चस प्राप्त करनेके लिये अर्थात् क्षाय और ग्राह्य तेज की वृद्धि करनेके लिये चार्दस्वत्य शान्ति ।

७ प्रजा क्षय न हो और प्रजा पशु अन्न आदिकी प्राप्ति हो इसलिये प्राजापत्या शान्ति ।

८ बुद्धि करनेके लिये सारिनी शान्ति ।

९ शापसम्पन्नताके लिये मायत्री शान्ति ।

१० घनादि ऐश्वर्य प्राप्त करने, शत्रुसे होनेवाला भय दूर करने और अपने शत्रुको उखाड़ देनेके लिये आहिरसी शान्ति ।

११ पराक्रम दूर हो और अपने राज्यका विजय हो तथा अपना यत्न, अपनी पुष्टि और अपना ऐश्वर्य बढे इसलिये ऐन्द्वि शान्ति ।

१२ राज्यविस्तार करनेके लिये माहेन्द्री शान्ति ।

१३ अपने धनका नाश न हो और अपना ऐश्वर्य बढे इसलिये करनेयोग्य कौवेरी शान्ति ।

१४ विद्या तेज धन और आयु बढ़ानेवाली आदिष्या शान्ति ।

१५ भयकी विपुलता करनेवाली धैर्या शान्ति ।

१६ पैसव प्राप्त करानेवाली तथा वस्तु सत्कारपूर्वक महादिकी शान्ति करनेवाली वास्तोपत्या शान्ति ।

१७ रोग और आपत्ति आदिके कष्टोंसे बचानेवाली रौद्री शान्ति ।

१८ विजय प्राप्त करानेवाली अपराग्रिता शान्ति ।

१९ शत्रुका भय दूर करनेवाली याम्या शान्ति ।

२० जलभय दूर करनेवाली धारणी शान्ति ।

२१ वायुभय दूर करनेवाली वायव्या शान्ति ।

२२ कुलक्षय दूर करनेवाली और पुत्रवृद्धि करनेवाली सन्नति शान्ति ।

२३ यक्षादि भोग बढ़ानेवाली तथा कारीगरीकी वृद्धि करनेवाली गार्गी शान्ति ।

२४ बालकोंके दृष्टपुष्ट करके उनको अष्टगुणसे बढ़ानेके लिये कौमारी शान्ति ।

२५ दुर्गासे बचानेके लिये नैऋति शान्ति ।

२६ यलवृद्धि करनेवाली माण्डवी शान्ति ।

२७ घोड़ोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये गान्धर्वी शान्ति ।

२८ हाथियोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये पारावती शान्ति ।

२९ शूम्भिके सङ्घी कष्ट दूर करनेके लिये पार्थिवी शान्ति ।

३० सब प्रकारका भय दूर करनेवाली अभया शान्ति ।

ये और इस प्रकारकी अनेक शान्तिया अथर्ववेदसे सिद्ध होती हैं। इनक नामोंका भी यदि विचार पाठक करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि मनुष्यका जीवन सुखमय करनेके लिये ही इनका उपयोग नि उद्देश है। वेदमंत्रोंका मनन करके प्राचान ऋषि मुनि अपनी-उन्नति की विचार्य किस रीतिसे सिद्ध करते थे, इसकी कल्पना इन शान्तियोंका विचार करनेसे हो सकती है। कई शान्तियोंके नामोंसे पता लग सकता है कि किस ऋषिजी खोजसे जिस शान्तिकर्मकी उत्पत्ति हुई। यदि वैदिक धर्म जीवित और जाग्रत रूपमें फिर अपने जीवनमें डालना है तो पाठकोंकी भी इसी दृष्टिसे विचार करना अत्यावश्यक है।

विविध इष्टियां, याग, कर्तव्य, मेघ आदिकी जो योजना वैदिक धर्ममें है, वह उक्त यातकी सिद्धता करनेके लिये ही है। इन सबका विचार बैसा है और इनकी थिथि किस रीतिसे का जा सकती है इसका यथामति विचार आगे किया जायगा। परन्तु यहाँ निवेदन है कि पाठक भी अपनी बुद्धियोंको इस दृष्टिसे काममें लावें और जो ध्यो होगी वह प्रकाशित करें। क्योंकि अनेक बुद्धिके एकाग्र होनेसे ही यह विद्या पुनः प्रष्ट हो सकती है अन्यथा इसके प्रष्ट होनेका कोई समभव नहीं है।

(६) मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य ।

(७) सूक्तोंके गण ।

अथर्ववेदके सूक्तों और मंत्रोंके कई गण हैं, जिनके नाम “अमय गण, अपराजित गण, सामामिक गण” इस प्रकार अनेक हैं । प्रथम कांडमें अपराजित गणके सूक्त निम्न-लिखित हैं—

- १ विद्या शस्त्रस्य पितरं ० (१।२)
- २ मा नो विदन् वि प्र्याधिनः ० (१।१९)
- ३ अद्भारधुद्रवतु देव ० (१।२०)
- ४ स्वस्तिदा विद्रो पतिः ० (१।२१)

इसके पश्चात् पष्ठकाण्डमें अपराजित गणके सूक्त निम्नलिखित हैं—

- ५ अथ मनुः ० (६।६५)
- ६ निर्हस्ता शत्रुः ० (६।६६)
- ७ परिवर्त्मानि ० (६।७७)
- ८ अभिर्युधः ० (६।७७)
- ९ इन्द्रो जयाति ० (६।९८)
- १० अग्नि त्वेन्द्र ० (६।९९)

कौनसा सूक्त किस गणमें है, यह समझनेसे उसका अर्थ करना, उसके अर्थका मनन करना और उससे बोध लेना, बड़ा शुभ हो सकता है । तथा गणोंके मंत्रोंके अंदर परस्पर संबंध देखना भी शुभ हो जाता है । इसलिये इस गणोंका विचार वेद पढ़नेके समय अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये । हम आगे बतायेंगे कि कौनसा सूक्त किस गणमें आता है और उसका परस्पर संबंध किस पद्धतिसे देखना होता है ।

पूर्वोक्त शांतिधर्म जिन जिन शान्तिशोध संबंध राज्यव्यवस्थासे है, उन शान्तिकर्मोंके साथ अपराजित गणके मंत्रोंका संबंध है, इस एक बातसे पाठक बहुत कुछ बोध प्राप्त कर सकते हैं । एक एक गणके विषयमें हम स्वतंत्र निबंध लिखकर उसका अधिक विचार आगे करेंगे । उसका अनुवर्धमान पाठक करें इसी लिये यह बात यहाँ दर्शायी है ।

अब इन सब गणोंका विचार हो जायगा तब ही वेद की रिता जात हो सकती है, अन्यथा नहीं । यही यह भी रहस्य करना आवश्यक है कि कई सूक्त किसी गणके साथ सम्बन्ध नहीं रखते अपौरुषे स्वतंत्र हैं अथवा उनका सम्बन्ध गणसूक्तोंके समान किया अन्य सूक्तोंके नहीं है ।

“स्वतंत्र-गूढत” और “गण-गूढत” इनका विचार करनेके समय हमने गूढतके मंत्रोंका मनन स्वतंत्र शांतिसे करना चाहिये, और गणगूढतके मंत्रोंका मनन गणगूढतोंके संबंध-का विचार करते ही करना चाहिये ।

(८) अथर्ववेदका महत्त्व ।

ऋग्वेदसे ज्ञान, यजुर्वेदसे उत्तम कर्म और सामवेदसे उत्तम पुरुषकी उपासना, इन तीन काण्डोंका अभ्यास होनेके पश्चात् आत्माका ज्ञान और बल प्राप्त करनेके मार्ग बतानेका कार्य अथर्ववेद करता है । इस कारण इसको “महत्वेद” अथवा “आत्मवेद” भी कहते हैं ।

उत्तम ज्ञान, प्रशस्त कर्म और उत्तम पुरुषकी उपासना द्वारा अंतःशुद्धि होनेके पश्चात् मद्राका ज्ञान संभवनीय है, इसलिये यह पूर्वोक्त वेदत्रयीसे भिन्न यह “चतुर्थ वेद” कहा जाता है ।

उपासक लोग आत्माको जगत्में ढूँढते ढूँढते थक गये, उस समय उनको साक्षात्कार हुआ कि “आत्माको जगत्में कहाँ ढूँढते हो ? यहाँ आओ और” अपने पासही उसे ढूँढो । ”

अर्थात् ईश्वरमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति, तदधमवीधार्वाहृतेन-मेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति, तदधर्वाऽभवत् ॥

(गोपय-ब्राह्मण १-७)

“अब पासही उसे ढूँढो !” वह पासही है । यह बात इस अर्थसे [अप+अर्वा=अयवो (कृ)] वेदने कही, इसी लिये इसका नाम “अथर्ववेद” हुआ है । यह गोपय ब्राह्मणका कथन अथर्ववेदका ज्ञानक्षेत्र कहाँ तक है इसका वर्णन स्पष्ट शब्दोंमें कर रहा है । आत्माका पता अपने पासही लगना है, यह यताना अथर्ववेदके ज्ञानक्षेत्रमें है । इसी लिये इसका नाम “महत्वेद” है क्योंकि यही ब्राह्मणका ज्ञान बताता है ।

“पर्यं” शब्द चंचलताका वाचक है । और “अ-थर्व” शब्द शांतिका अथवा एकाम्रताका द्योतक है । आत्माजुभव अथवा मद्रासाक्षात्कार जो होना है, वह चित्तकी चंचलता इटनेके पश्चात् और चित्तशान्तियोंका निरीप होकर उसमें शांति आनेके पश्चात् ही होना है । यह आत्मज्ञानके मार्गकी सूचना इस प्रकार अपने नामसे ही इस अथर्ववेदने बता दी है । वेदके मामोका महत्त्व पाठक यहाँ देख सकते हैं ।

“अथर्व” (अप+अर्व) इस शब्दका अर्थ “अब इस ओर” ऐसा होता है । जगत्में दो पदार्थ हैं, एक मैं और दूसरा मेरेसे भिन्न संपूर्ण जगत् । हाएक मनुष्य समझता है कि मेरेसे भिन्न पदार्थोंके ही मुझमें शक्ति आती है, मैं स्वयं अशक्त हूँ और शक्ति दूसरोंके प्राप्त होती है । इस सर्वव्यापारण विचारसे भिन्न परंतु अत्यंत सत्य विचार जो अथर्ववेद जनताके समुदाय रखना चाहता है, वह यह है कि “अब शक्ति भिन्ने आती और” ही देखो । अब जगत्में यह नियम देखो

कि श्रद्धे अंदरसे होती है, वृक्ष अंदरसे बढ़ते हैं, बालक अंदरसे बढ़ते हैं, अर्थात् शक्तिकी श्रद्धे अंदरसे हो रही है, इसलिये अपने अंदर अपनी ओर देखकर विचार करो । बाह्य जगतमें न देखते हुए, परंतु उसके साथ अपनी शक्तियोंको जोड़कर अपनी उन्नतिके हेतु अपने अंदर देखो, शक्ति अपने अंदर है न कि बाहर है । यह अथर्ववेदकी शिक्षा अत्यंत महत्त्वकी है ।

इस अथर्ववेदका स्वाध्याय करना है । ऋग्वेद होनेके कारण

यह वेद संपूर्ण रीतिसे समझना कठिन है, इसलिये इस वेदके जितने मंत्र समझमें आवेंगे, उनकाही स्वाध्याय करना है । मंत्रोंका ठीक प्रकार ज्ञान नहीं हुआ उनके विषयमें हम कुछ भी नहीं लिखेंगे । तथा जो मंत्र स्वाध्यायके लिये यहां लेंगे उनके विषयमें थोड़ेसे थोड़े शब्दोंमेंही जो कुछ लिखना हो वह लिखेंगे अर्थात् बहुत विस्तार नहीं करेंगे । परंतु अहीतक हो सके वहां तक कोई बात संक्षिप्त नहीं छोड़ेंगे । इससे स्वाध्याय करने वालोंको बड़ी सुविधा होगी ।



अथर्ववेद ।

प्रथम--काण्ड ।

इस प्रथम काण्डमें छ अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५१ मंत्र हैं ।

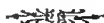
१ प्रथम अनुवाकमें छः सूक्त हैं, तीसरे सूक्तमें ९ मंत्र हैं, शेष पाच सूक्तोंमें प्रत्येकमें चार चार हैं । इस प्रकार इस अनुवाकमें २९ मंत्र हैं ।

१ द्वितीय अनुवाकमें (७ से ११ तक) पाच सूक्त हैं । सप्तम सूक्तमें ७ और ग्यारहवें में ६, शेष तीनमें प्रत्येकमें चार चार मंत्र हैं । इस प्रकार कुल ३५ मंत्र हैं ।

३ तृतीय चतुर्थ और पचम अनुवाकों (१२ से २० तक सूक्तों) के प्रत्येक सूक्तमें चार मंत्रवाले क्रमशः पाँच, पाच और सात सूक्त हैं । इन तीनोंकी मन्त्रसंख्या ६० है ।

४ षष्ठ अनुवाकमें सात (२१ से २५ तक) सूक्त हैं । २१ वें सूक्तमें छ मंत्र और २४ वें में पाच मंत्र हैं, शेषमें चार चार हैं । इस प्रकार कुछ मन्त्रसंख्या ३१ है ।

इस ३५ सूक्तोंमें चार मन्त्रवाले सूक्त ३७ हैं, पाँच मन्त्रवाला एक, छः मन्त्रवाले दो, सात मन्त्रवाला एक, और नौ मन्त्रवाला एक है । यह सूक्त और मन्त्रविभाग देखनेसे पता लगता है कि यह अथर्ववेदका प्रथम काण्ड प्रधानतया चार मन्त्रवाले सूक्तोंका ढा है । इसका प्रथम सूक्त यह है इसमें सुद्धि षडानेका विषय कहा है जिसका नाम “ मेधा-जनन ” है—





मेधाजनन ।

(१) बुद्धिका संवर्धन करना ।

(कृषिः—अधर्मा । देवता—वाचस्पतिः ।)

ये त्रिपुष्पाः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः । वाचस्पतिर्वह्ना तेषां तन्वोऽत्रिय दधातु मे ॥१॥

अन्वयः— विश्वा रूपाणि विभ्रतः, ये त्रि-सुप्ताः परियन्ति, तेषां तन्वः बह्ना वाचस्पतिः अद्य मे दधातु ॥१॥

अर्थ— चर्च रूपांको धारण करके, जो तीन-गुण-सात पदार्थ सर्वत्र व्यापते हैं, उनके चारोंके बल वाणीया दशमी भाग मुझे देवें ॥१॥

पदार्थ दो प्रकारके हैं एक रूपशाले और दूसरे रूपरहित । आत्मा परमात्मा रूपरहित है और संपूर्ण जगत् रूपशाले पदार्थोंसे भरा है । पदार्थोंके विविध रूप जो मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष वनस्पति वायुवा आदि में दिखाई देते हैं—कोन धारण करता है, ये रूप कैसे बनते हैं ? इस शंकाके उत्तरमें वेद कह रहा है, कि जगत्के मूलमें जो सात पदार्थ—पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्र और अहंकार—हैं वे ही संपूर्ण जगत् में दिखाई देनेवाले विविध रूप धारण करते हैं । ये सात पदार्थ तीन अवस्थाओंमें गुजरते हुए जगत्के रूप और आकार धारण करते हैं । (१) सत्य अर्थात् समावेश, (२) रज अर्थात् गतिरूप अवस्था और (३) तम अर्थात् गतिहीन अवस्था, इन तीन अवस्थाओंमें पूर्वोक्त सात पदार्थ गुजरनेसे इत इतौ पदार्थ बनते हैं, जो संपूर्ण सृष्टिका रूप धारण करते हैं ।

सृष्टिके हर एक आधारवासी पदार्थमें बड़ी शक्ति है । हमारा शरीर भी सृष्टिके अंतर्गत होनेसे एक रूपजन पदार्थ है और इसमें भी पूर्वोक्त " तीन गुण सात " पदार्थ हैं । और इन धारण शरीरके अंदरके इन इतौ तत्वों का संघर्ष बाप जगत् के प्रत्येक इतौ तत्वोंके माप है । शरीरका दशावस्था या रोगीय इन संघर्षके शीक होने और न होनेपर अवलंबित है ।

शरीरान्तर्गत इन तत्वोंको बाप जगत्के तत्वोंके साथ योग्य संघर्ष करने द्वारा अपना आरोग्य रक्षित करके अपना बल बढ़ाने बढानेकी सूचना इस मंत्रद्वारा यहां मिलती है । उगे बाप कुछ शक्तिये अपना प्राणदा बन, बाप नृप-प्रदायिनी

१ (अ० गु. भा. ख. १)

अपने नेत्र का बल, इसी प्रकार अन्धान्य बल बड़ा कर अपनी शक्ति पराध्यातक बढाने चाहिये । यह अर्थवेदका मुख्य विषय है ।

जगत्का तत्त्वज्ञान जानकर, जगत् का अपने साथ संबंध अनुभव करके, अपना बल बढानेकी विद्याका अध्ययन करके, उक्त अनुष्ठान करना चाहिये । यह समतिश मूल मंत्र इस प्रथम मंत्रमें बताया है । यहां प्रश्न होता है, कि यह विद्या शीत देना क्या है ? उत्तरमें मंत्रने बताया है कि " वाचस्पति " ही उक्त ज्ञान देनेमें समर्थ है ।

" वाचस्पति " कीन है ? वाच्, वाच्, वाणी, वक्त्र, उपदेश, व्याख्यान ये समानार्थक शब्द हैं । वक्त्र बोलने-वाला अर्थात् उक्त उपदेशक शुद्ध ही यहां वाचस्पतिते अभिप्रेत है । इस अर्थको लेते-इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार हुआ—
" मूल सात तत्त्व तीन अवस्थाओंमें गुजर कर माप जगत्के संपूर्ण पदार्थोंके रूप बनाने हुए मंत्र प्रेम्त हैं । इनके बलसे अपने अंदर धारण करनेकी विद्या व्याख्याता शुद्ध मानकी मुझे पढाने । "

पुनरोहिं वाचस्पते देवेन मनसा सह । वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
 इहैवाभि वि तनूमे आर्त्ता इय ज्यया । वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

लघ्वयः— हे वाचस्पते ! देवेन मनसा सह पुनः पुनः । हे वसोष्पते ! निरमय । श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ २ ॥

ज्यया उभे आर्त्ता इव, इह एव उभौ अभि वि तनु । वाचस्पतिः नि यच्छतु । श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— हे वाणीके स्वामी ! दिव्य मनके साथ सन्मुख आओ । हे बहुओंके स्वामी ! मुझे आनंदित करो । पडा हुआ ज्ञान मुझमें स्थिर रहे ॥ २ ॥

होरीसे धनुष्यकी दोना कोटीयोंकी तरह, यहाँही (दोनोंको) तनाओ । वाणीका पति नियमसे चले । पडा हुआ ज्ञान मेरेमें स्थिर रहे ।

इस मंत्रमें प्रारंभमें ही "पुनः" शब्द है । इसका अर्थ "बारंबार, पुनः पुनः अथवा संमुख" है । शिष्य विद्याकी एक ओर और गुरु दूसरी ओर होना है, इसलिये गुरु शिष्यके सम्मुख और शिष्य गुरुके सम्मुख होते हैं । इन दोनोंको इसी प्रकार रहना चाहिये । यदि ये परस्पर सम्मुख न रहे तो पडाई अर्त्तभव है ।

गुरु (देवेन मनसा) देवी भावनासे युक्त मनसेही शिष्यके साथ वर्तान करे । मन ही प्रकारके हैं—एक देव मन, और दूसरा राक्षस मन । राक्षस मन जगत् में झपके उत्पन्न करता है और देव मन जगत्में शांति रखता है । गुरु देवमनसे ही शिष्यको पढ़ाये ।

गुरु शिष्यसे (नि रमय) रममाण करे, अर्थात् ऐसा पढ़ाये कि जिससे शिष्य आनन्दके साथ पढ़ता जाय । इस शब्दके द्वारा पढ़ाईकी "रमण पद्धति" वेदने प्रकट की है । रमणे भिज "शेदन पद्धति" है जिसमें रीते हुए शिष्य पढ़ाये जाते हैं ।

"हे उत्तम उपदेश करनेवाले गुरु ! देव भावसे युक्त मनसे ही शिष्यके सम्मुख जा । हे आन्यादि वस्तुओंके प्रयोग कर्ता गुरु ! तू शिष्यको रमाता हुआ उसे विद्या पढ़ाओ । शिष्य भी कहे कि पडा हुआ ज्ञान अपने अंदर स्थिर रहे ॥"

अथर्ववेद पिप्पलाद-संहितामें मंत्रका प्रारंभ "उप नेह" शब्दसे होता है और "वसोष्पते" के स्थानपर "असोष्पते" पाठ है । अमुपति (असोः पति) का अर्थ प्राणीका पति गुरु । "प्राणीरा पति" अर्थात् योगादि साधनद्वारा प्राणीको स्वाधीन रखनेवाला उत्तम योगी गुरु हो । वह शब्द भी गुरुका एक उत्तम लक्षण बता रहा है ।

धनुष्यकी दोनों कोटीयों कोरीये तनी रहती हैं इस तनी हुई अवस्थामें ही धनुष्य विजयका साधन हो सकता है । जिस समय दोनों कोटीयोंसे चोरी हट जाती है उस समय वह धनुष्य धनुनाच या विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ हो जाता है । इसी प्रकार जाति या समाजरूपी धनुष्यकी दो कोटीयों गुरु और शिष्य हैं, इन दोनोंको विद्यास्त्री चोरी बांधी गयी है और इस कोरीये यह धनुष्य तना हुआ अर्थात् अपने कार्यमें सिद्ध रहता है । समाजको यह धनुष्य चढ़ा सिद्ध रखना चाहिये । इसीकी सिद्धतासे जाति, समाज या राष्ट्र जीवित, जाग्रत और उन्नत रहता है । जिस समय विद्याही चोरी गुरु शिष्यस्त्री धनुष्यको हट जाती है उस समय अज्ञान-दुःख होनेके कारण जाति पतित हो जाती है ।

उपहृतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्द्वयताम् । सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिपि ॥ ४ ॥

अन्वयः— वाचस्पतिः उपहृतः । वाचस्पतिः अस्मान् उपह्वयताम् । श्रुतेन सद्गमेमहि । श्रुतेन मा वि राधिपि ॥ ४ ॥

अर्थ— वाणीका स्वामी तुलाया गया । वह वाणीका स्वामी हम सबको तुलावे । ज्ञानसे हम सब युक्त हों । हम ज्ञानके साथ वनी विरोध न करें ॥ ४ ॥

स्थिर रखनेके लिये अग्नि दृष्ट रहे । पहिले पडा हुआ ज्ञान स्थिर रहा तो ही आगे अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । यह भाव ध्यानमें धरनेसे इस संन्यास अर्थ निश्च प्रकार होता है—

“ जिस प्रकार झोरीसे धनुषकी दोनों कोटियाँ विजय-के लिये तनी होती हैं, उसी प्रकार गुरु और शिष्य वे समाजकी दो कोटियाँ विद्यासे सज्ज रहिये । साधारण स्वयं नियमानुसार चलें और शिष्योंको नियमानुसार चलावें । शिष्य अध्ययन किया हुआ ज्ञान इत करके आगे बढ़े ॥ ”

“ उपहृत ” का अर्थ “ तुलाया, पुकारा, आह्वान किया अवस्था पूछा गया ” है । ज्ञान व्याख्याता गुरुको हमने तुलाया और उसे प्रश्न पूछे गये अर्थात् विद्याका व्याख्यान करनेके लिये उसे आह्वान किया गया है । गुरु भी शिष्यके प्रश्न सुनकर ज्ञानके प्रश्नोंका उचित उत्तर देकर उनका समाधान करे । अर्थात् गुरु कोई बात शिष्यसे छिपाकर न रखे । इस प्रकार दोनोंके परस्पर प्रेमसे विद्याकी शिंदे होती रहे ।

हरएक अपने मनमें यह इच्छा रखे कि “ हम सब ज्ञानसे युक्त हों, ज्ञानकी शक्ति करते रहें और कभी ज्ञानकी प्रशस्तिमें बाधा न डालें, ज्ञानका विरोध न करें और शिष्या ज्ञानका प्रचार न करें । ”

इस स्वस्तीकरणका विचार करनेसे इस संन्यास अर्थ निम्न प्रकार प्रतीत होता है—

“ हम सब व्याख्याता गुरुसे प्रार्थना करते हैं । यह हमें योग्य उत्तर देवे । हम [प्रश्नोत्तरकी रीतिसे हम सब] ज्ञानसे युक्त होते रहें और कभी हमने ज्ञानकी उन्नतिमें बाधा उत्पन्न न हो । ”

अंदर स्थिर करनेकी विद्या] गुरु हमें सिखावे ॥ १ ॥ हे गुरु ! तुमनमें शुभ संकल्प धारण करके हमारे सम्मुख आ, हमें समझे [हुए पडा] प्राप्त किया हुआ ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ २ ॥ दोनों दोनों धनुषकोटियोंके तनाके समान यहाँ तु [विद्यासे हम दोनोंको] तथा [कर बांध दे] गुरु विषयमें चले और हमें चलावे । ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ ३ ॥ हम गुरुसे प्रश्न पूछते हैं, यह हमें उत्तर देवे । हम सब ज्ञानी बनें । कोई भी ज्ञानका विरोध न करे ॥ ४ ॥

इस संन्यास कृतिया मनन होगा, इनपर कितना विचार होगा, उतना ज्ञान बढ़ानेका उपाय— (संघाजनन)— हो सकता है । आशा है कि पाठक इसका योग्य विचार करें और अपनी परीक्षितियोंमें अपने ज्ञानकी शक्ति करनेके लयाय सोचें । इसमें निम्न-लिखित पाँच बातोंका अवश्य विचार हो—

१ विद्या— जिनसे जगत् बनता है उन गुरुवर्योंका ज्ञान प्राप्त करना और उनका अपना वसतिमें संबंध देना तथा उक्त अनुष्ठान करनेका विधि जानना, यही गौतमेयोग्य विद्या है ।

विजय-सूक्त ।

(२)

यद् "अपराजित गग" का प्रथम सूक्त है जिसका ऋषि "अथर्वा" और देवता "पञ्चन्य" है ।

विद्वा शरस्य पितरं पुर्जन्यं भूरिधायसम् । विदो ध्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिर्वपसम् ॥१॥
ज्यांकिं परि णो नृमाश्मानं तन्वं कृधि । वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेपांस्या कृधि ॥२॥
वृक्षं यद्गवः परिपस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्युभम् । शरुमस्मधावय दिद्युमिन्द्र ॥३॥
यथा धां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजन्म । एवा रोगं चास्त्रां चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

अर्थ—(शरस्य) शरका, धाणका पिता (भूरि-धायसं पञ्चन्य) बहुत प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला पञ्चन्य है यह (विद्म) हम जानते हैं । तथा (अस्य) इसका माता (भूरि-वपसं) बहुत प्रकारकी कुशलताओंसे युक्त पृथिवी है, यह हमें (सुविद्य) उत्तम प्रकारसे पता है ॥ १ ॥ हे (अप्राके) माता ! (नः) हम सब पुत्रोंको (परि नम) परिणत कर अर्थात् हमारे (तन्वं) शरीरको (अदमानं) पतार जैसा सुदृढ (कृधि) कर (वीडुः) बलवान बनकर (अ-राती) अदानके भावोंको तथा (द्वेपांसि) द्वेपांको अर्थात् सब शत्रुओंको (वरीयः) पूर्ण रीतिसे (अप कृधि) दूर कर ॥ २ ॥ (यन्म) जिस प्रकार (वृक्षं) वृक्षके साथ (परिपस्वजाना) लिपटी हुई या बंधी हुई (गावः) गौएँ अपने (अ-नुस्फुरं) तेजस्वी पुत्र शरको (अनुस्फुरं) पुत्रोंके साथ (अर्चन्ति) चाहती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! (अस्मत्) हमसे (दिद्युं शरुं) तेज-पुत्र धाणको (पावय) दूर बड़ा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार (धा) शुलोक और पृथ्वीके (अन्तः) बीचमें (तेजन्) तेज (तिष्ठति) होता है, (एव) इसी प्रकार यह (मुञ्ज) मुंज (रोगं च आस्त्रां च) रोग और शस्त्रोंके (अन्तः) बीचमें (इत् तिष्ठतु) निधयसे रहे ॥ ४ ॥

भाष्य— धारण-पोषण उत्तम प्रकारसे करनेवाला पिता पञ्चन्य है, कुशलतासे अनेक कर्म करनेवाली माता पृथ्वी है, इन दोनोंसे शर शरकंश-पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ माता पुत्रके शरीरपर ऐसा परिणाम करावे कि जिससे वह बलवान बनकर शत्रुओंको पूर्ण रीतिसे दूर करनेमें समर्थ हो सके ॥ २ ॥ जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गौएँ अपने बछड़े को वेगसे प्राप्त करना चाहती हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर ! तेज शर हमसे आगे बड़े ॥ ३ ॥ जिस प्रकार शुलोक और पृथ्वीके बीचमें प्रशास होता है, उसी प्रकार रोग और शस्त्र-धाय के बीचमें शर ठहरे ॥ ४ ॥

५ गुह शिष्य— सख्य पशुपत्तके दोनों नोक जिस प्रकार झोरीसे तने रहते हैं, उस प्रकार विद्यापत्नी झोरीसे समाजके गुरु-शिष्य-पत्नी दोनों नोक एक दूसरेमें पूर्णतया सुसंबंध रहे । कभी उनमें दलितन न आश्रये ।

यद् सब सूक्त शिष्यके सुखशास्त्र उच्चारित होनेके समान है, इसमें अनुमान होगा है कि गुरुकी साने, रहने आदिके प्रबंधपरि ध्यान करके उत्तरदायक शिष्यों या शिष्योंके संसृष्टों पर ही पूर्णता है ।

अनुवन्धान

१५ प्रथम सूक्तमें "मिधावन" अर्थात् बुद्धि का संबंधन

करनेके मूलभूत नियम बताये हैं । गुह, शिष्य तथा विद्यालय आदिका प्रबंध किस रीतिसे करना चाहिये, गुह किस प्रकार पशु, शिष्य किस ढंगसे पढ़े और दोनों मिलकर राष्ट्री उन्नति किस रीतिसे करें इसका विचार भिया गया ।

इसके पश्चात् विद्याकी पढ़ाई शुरू होती है, जिसमें अपरा-जित गगका सूक्त "विद्वा शरस्य पितरं" यह है । अथर्व-वेदमें यह द्वितीय सूक्त है । श्रुतीय सूक्त भी इसी भावसे प्रारम्भ होता है । इन दोनों सूक्तोंका विचार आवश्यक है ।—

यद् भावार्थ भी परिपूर्ण नहीं क्योंकि इन संश्लेषके द्वारा ही शिष्यका संबंध देयकर जो भाव व्यवस्त होता है, वह जानकर ही संश्लेष का भावार्थ जानना चाहिये । यद् भाव,

देखनेके लिये भागेका स्पष्टीकरण देखिये—

(१) वैयक्तिक विजय ।

इस सूक्तमें पहिला वैयक्तिक विजय प्राप्त करनेके उपदेश निम्न प्रकार बताया है—

- १ उत्तम मातापितासे जन्म प्राप्त हो, (मंत्र १)
- २ शरीर बलवान बनाया जावे, (मंत्र २)
- ३ रोगादि शत्रुओंको दूर रखा जावे, (मंत्र ३)
- ४ शरीरमें कुर्ती लाई जावे, (मंत्र ३)
- ५ जगत्में अपना तेज फैलानेका यत्न किया जावे, (मंत्र ४)
- ६ शत्रुओं से शत्रुओंको दूर किया जावे, (मंत्र ४)

पाठक विचारका दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करेंगे तो उनकी सकत छः भाव वैयक्तिक उन्नतिके साधन पूर्वोक्त चारों मंत्रोंके अन्दर गुप्तरूपसे दिखाई देंगे । इनका विशेष विचार होनेके लिये यहाँ मंत्रोंके शब्दार्थ और स्पष्टीकरण दिये जाते हैं—

(२) पिताके गुण-धर्म-कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म बतानेवाले ये शब्द आये हैं—“ पिता, पर्जन्य, भूरिधामस्, इक्ष, योः । ” इनके अर्थोंका बोध होनेसे पिताके गुण धर्म कर्मोंका बोध हो सकता है; इसलिये इनका आशय देखिये—

- १ पिता - (माता) रक्षक, संभालनेवाला ।
- २ पर्जन्यः - (पूर्ति+जन्म) पूर्ति करनेवाला, पूर्णता करनेवाला । न्यूनताको दूर करनेवाला ।
- ३ भूरिधामस् - (भूरि) बहुत प्रशंसे (धामस्) धारण प्रोषण करनेवाला, दाता, उदारचरित ।
- ४ इक्षः - आपार, स्वयं भूप सहकर दूसरोंको छाया देनेवाला ।

(३) माताके गुण-धर्म-कर्म ।

“ माता, पृथिवी, भूरिवर्षस् ज्याका, गो ” ये पांच शब्द पूर्वोक्त मंत्रोंमें माताके गुणधर्मकर्मोंको प्रकट कर रहे हैं । इनका अर्थ देखिये—

- १ माता - बालकोंका शित करनेवाली ।
- २ पृथिवी - समाशाल, सहनशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये आवश्यक कष्ट सहन करनेवाली ।
- ३ भूरिवर्षस् - (भूरि) बहुत (वर्षस्) उद्यत्तासे कर्म करनेमें समर्थ, कर्ममें अत्यंत पुशाल, सदा कर्म करनेमें दक्ष, परिश्रमको उन्नतिके लिये उत्तम कर्म करनेवाली ।
- ४ ज्या, ज्याका - (ज्या-जया) जयका धाधन करनेवाली, माता, पृथिवी, रक्षी, बलशालिनी ।
- ५ गोः - प्रगतिशील, दुःखादिद्वारा पुत्रोंकी पुष्टि करनेवाली । किरण, स्वर्ग, रत्न, वाणी, सारस्वती, माता, जल, नेत्र, आकाश सर्व आदिके शुभगुणोंसे युक्त ।

माताके गुणधर्म इन शब्दों द्वारा व्यक्त हो रहे हैं । अर्थात्—“ बालबच्चोंका शित करनेवाली समाशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये कष्टसहयोग्य कर्मोंमें सदा दक्ष रहनेवाली, बहुतही उद्यत्तासे अपने पुत्रबच्ची उन्नति करनेमें समर्थ, बलशालिनी, योके समान दुःखादिद्वारा बालबच्चोंकी पुष्टि करनेवाली, किरणोंके समान प्रकाश करनेवाली, स्वर्गके समान शुभदायिनी, रत्नोंके समान चरको सोभा बढ़ानेवाली, शुभ भाषा करनेमें चतुर, विदुषी, जलके समान जाति बहानेवाली, नेत्रोंके समान मार्ग दर्शनेवाली, आकाशके समान सबको आश्रय देनेवाली, सूर्यके समान अज्ञानान्धकार दूर करनेवाली माता होनी चाहिये । ”

पिताके गुणधर्म हमें पहिले बताये, और यही माताके गुण धर्म बताये हैं । ये आदर्श माता पिता हैं, इनसे जो पुत्र पैदा होगा और पाला तपा बड़ाया जयगा, वह भी यथा है । पुत्रही होगा तथा पुत्रो भी सही प्रकार बीना बनेगी समय बच सके है ।

४ ऋतुः—बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी ।

५ शरः—शत्रुका नाश करनेवाला ।

६ दिगुः—तेजस्वी ।

७ तेजः—प्रकाशमान ।

८ सुजः—(सुजति मार्जयति) शुद्धता और पवित्रता करनेवाला ।

पुन ऐसा हो कि जो “शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हो, सुख अंगवाला हो, शर, बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी, यशस्वी और पवित्र आचारवाला हो ।” माता पिताको उचित है, कि वे ऐसा यत्न करें कि पुत्रमें ये गुणधर्म और धर्म बड़ें और इन गुणोंके द्वारा कुलका यश फैले ।

यह बात स्पष्ट हो है कि पूर्वोक्त गुणधर्म कर्मोंसे युक्त मातापिता होंगे तो उनके पुत्रों और पुत्रियोंमें ये गुणधर्म आ सकते हैं ।

(५) एक अद्भुत अलंकार



इस सूक्तमें बाण, धनुष्य और ढोरीके अलंकारसे एक महत्त्वपूर्ण बातका प्रकाश किया है । धनुष्यका सबत भाग विचार ढोरी बजाई जाती है वह पुरुषरूप समक्षिये, ढोरी नागरूप है और पुत्र बाणरूप है । पिताका बल और माताकी प्रेमा इनसे युक्त होकर पुत्र संसारमें फैला जाता है । वह संसारमें बाहर अपने शत्रुओंका नाश करके यशका मांगी होगे । इस अलंकारका विचार पाठक करने को उनको

बड़ाही बोध प्राप्त हो सकता है । पुत्रकी उन्नतिमें माता पिताका कार्य कितना होता है इसकी ठीक कल्पना इस अलंकारसे पाठकोंके मनमें आ सकती है ।

ढोरीके बिना केवल धनु जैसा शत्रुनाश करनेमें असमर्थ है उसी प्रकार स्त्रीके बिना पुरुष असमर्थ है । तथा जिस प्रकार धनुके बिना ढोरी कार्य करनेमें असमर्थ है उसी रीतिसे पुरुषके बिना स्त्री असमर्थ है । माता पिता की योग्य प्रेरणा और योग्य शिक्षाद्वारा सुशिक्षित बना पुत्रही जगत्में यशस्वी होता है । यह अलंकार गृहस्थियोंको बड़ाही बोधप्रद हो सकता है ।

पिताके सूक्त “पर्जन्य, वृक्ष” आदि शब्द तथा माताके सूक्त “वृषी” आदि शब्द उनका ऋतुगामित्व होकर श्रद्धाची होनेकी सूचना कर रहे हैं । [इस विषयमें स्वाध्याय मंडलद्वारा प्रकाशित “श्रद्धाचर्य” पुस्तकके अंदर अथर्ववेदीय श्रद्धाचर्य सूक्तकी व्याख्यामें पृथ्वी, पर्जन्य और वृक्षोंके श्रद्धाचर्यका प्रकरण अवश्य देखिये]

(६) कुटुम्बका विजय ।

व्यक्तिकी उन्नतिके विषयमें पहिले बतायाही है कि वैयक्तिक विजय की सूचनाएं इस सूक्तमें किंच रूपमें हैं । कुटुम्बके या परिवारके विजयका संबंध पूर्वोक्त अलंकार तथा स्पष्टीकरणके देखनेसे स्पष्ट हो सकता है । कुटुम्बका विजय माता पिताके उत्तम कर्तव्य पालन करने और सुपुत्रा निर्माण करनेसे ही प्राप्त होता है ।

(मंत्र १) जैसा “अनेक प्रकारसे पोषण करनेवाला पर्जन्य पिता ऋतुगामी होकर वर्षा ऋतुमें अपने जलरूपी वीर्यका भिचन उत्तम उपजाऊ भूमिमें करता है और धरणी विजयी संतानवती उत्पत्ति करता है,” तद्वत् माता पिता ऋतुगामी होकर वीर पुत्र उत्पन्न करें ।

(मंत्र २) “हे जयका साधन करनेवाली माता ! अपने पुत्रोंका शरीर पक्षर जैसा सुख बना, जिससे पुत्र बलवान बनकर अपने शत्रुओंको दूर कर सके ।”

(मंत्र ३) —“जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गोवं अपने तेज बगैरेकी चाहती है” [उसी प्रकार पिताके साथ रहती हुई माता भी अपने विषे तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करनेकी ही इच्छा करे] । अथवा—“ (पुत्र) धनुष्यके साथ रहनेवाली ढोरी तेजस्वी (नर) बाण ही बगैरे छोड़ती है ।” [उसी प्रकार पवित्री स्यासना करनेवाली स्त्री वीर पुत्र उत्पन्न होनेकी ही अभिलाषा करे ।] “ हे (शत्रु) परमा-

मन् । हमसे तेजस्वी (शस्त्रः) धाणके समान तेजस्वी पुत्र चले अर्थात् उत्पन्न हो । ” [मातापिता परमात्माकी प्रार्थना ऐसी करें कि हे ईश्वर ! हमारा ऐसा पुत्र हो कि जो दूर दूर जाकर जगत्तमें विजय प्राप्त करे ।]

(मंत्र ४) - “ जिस प्रकार [पिता] युलोक और [माता] पृथिवीके मध्यमें विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ [पुत्ररूपसे] रहते हैं, ” [उसी प्रकार माता पिता के मध्यमें तेजस्वी सुंदर बालक जन्मकृता रहे ।] “ जैसा सुख शररोग और खावके घावके बीचमें रहना है ” अर्थात् उनको दूर करता है उसी प्रकार [यह पवित्रता करनेवाला पुत्र रोग घावके मध्यमें रहता हुआ भी स्वयं अपना बचाव करे और कुलका भी उद्धार करे]

यह भाव पहिलेकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है और इसमें स्पष्टीकरणके लिये पूर्वापर संबंध रखनेवाले अधिक वाक्य जोड़ दिये हैं, जिससे पाठकी पता लग जायगा, कि यह सूक्त कुटुंबके विजयका उपदेश किस ढंगसे दे रहा है । जातिके या राष्ट्रके विजयकी सुनियार्ह इस प्रकार कुटुंबकी आस्थापर तथा सुत्रा निर्माणपर ही अवलम्बित है । जो लोग राष्ट्रकी उन्नति चाहते हैं, वे अपनी उन्नतिकी सुनियार्ह इस प्रकार कुटुंबमें रखें । आदर्श कुटुंब-व्यवस्था ही सब विजयका मुख्य साधन है ।

(७) पूर्वापर-सम्बन्ध

पहिले सूक्तमें विद्या पढानेका उपदेश दिया है । इस द्वितीय सूक्तसे पढाईका प्रारंभ हो रहा है । विद्याका प्रारंभ बिल्कुल साधारण बातसे ही किया गया है । पास भी उपपत्तिका विषय हर एक स्थानके मनुष्य जानते हैं । “ मेघसे पानी गिरता है और पृथ्वीसे घास उगता है इसलिये घासका पिता मेघ और माता भूमि है । ” इतना ही विषय इस सूक्तके प्रारंभमें बताया है । इतनी साधारण घटनाका उपदेश करते हुए “ पिता-माता-पुत्र ” रूपी कुटुंबकी उन्नतिकी शिक्षा किस ढंगसे बेदने बतायी है यह पाठक यहाँ देख चुके हैं । पावके अंदर सुख या शर एक जातिकी पास है । यह सर-कंडा स्वयं घातुका बंध करनेमें समर्थ नहीं होता । क्योंकि कोमल रहता है । परंतु जब उसके साथ कठिन कोड़ेका संयोग किया जाता है और पीछे पर लगाने जाते हैं, तब बड़ा कोमल शरकंडा धनुष्यपर चढ़कर लोरीकी गति प्राप्त करके घातुका नाश करनेमें समर्थ होता है । इसी प्रकार कोमल बालक गुरु गुरुकी कठिन तपस्या करता हुआ ब्रह्मचर्य पालनरूपी कठिन

ब्रह्मसे युक्त होकर उन्नतिके नियमोंके पालनसे अपनी गतिको एक मार्गमें रखता हुआ अपने कुटुंबके, जातिके तथा राष्ट्रके शत्रुओंको मग्न देनेमें समर्थ होता है ।

पहिले सूक्तके तृतीय मंत्रमें धनुष्यकी उपमा देकर बताया है कि “ गुह शिष्यरूपी धनुष्यकी दो कोटियों विद्यारूपी लोरीसे तनी हैं । ” प्रथम सूक्तमें यह अलंकार भिन्न उपदेश दे रहा है और इस सूक्तका धनुष्यका दृष्टांत भिन्न उपदेश दे रहा है । दृष्टांतमें एकदेशी बातकी ही देखना होता है, इसलिये एक ही दृष्टांतसे भिन्न उपदेश देना कोई दोष नहीं है । प्रथम सूक्तके दृष्टांतमें भी लोरीका स्थान विद्या माता अर्थात् परस्वती देवीको दिया है उसमें मातृत्व का वाद्वय है ।

जंगलमें वृक्षके साथ बंधी हुई गाय भी अपने बछड़ेका स्मरण करती रहती है, गायका बछड़ेके ऊपर का प्रेम सबसे बड़िया प्रेम है । इस प्रकारका प्रेम अपने बालकके विषयमें माताके हृदयमें होना चाहिये । अपना बालक अति तेजस्वी हो, अति यशस्वी हो, यही भावना माता मनमें धारण करे और इस भावनाके साथ यदि माता अपने बालकको दूध पिलावेगी, तो उसका गुण पुत्रमें नि संदेह उत्तरेगा । इस विषयमें तृतीय मंत्र मग्न करनेके योग्य है ।

(८) कुटुम्बका आदर्श ।

चतुर्थ मंत्रमें आदर्श कुटुम्बका नमूना घन्मुख रहा है । युलोक पिता, भूमि माता और इनके बीच का तेजस्वी गोलक इनका पुत्र । अपने घरमें भी यही आदर्श होवे । आषाढ और पृथ्वीमें जैसा सूर्य होता है उसी प्रकार पिता और माताके मध्यमें बालक जन्मकृता रहे । कितना उच्च आदर्श है । हर एक गृहस्थी इसका स्मरण रखे ।

(९) औषधिप्रयोग ।

सुख घाव अपने दर आदिसे अनेक रोगों और अनेक शत्रुओंको दूर करता है, क्योंकि सुख शोषक, घृष्टता तथा निर्मलता का नैवाला है । इसलिये स्पष्ट है कि यदि शोषकता और पवित्रता का गुण अपने अंदर बनाया जाय तो रोगादि दूर रह करते हैं । हर एकके लिये यह सूचना धनमाने योग्य है ।

सुख या शर औषधिप्रयोग करते घावके रोग तथा शत्रुपात आदि रोग दूर होते हैं । इस विषयका सूचक उप-देश इस सूक्तके अन्तमें है । वेप मोग इसका विचार करें ।

(१०) राष्ट्रका विजय ।

व्यक्ति, कुटुंब, जाति, देश तथा राष्ट्रके विजयपूर्ण अभ्युदय-के नियमोंमें समानता है। पाठक इस बातको अच्छी प्रकार जानते हैं। व्यक्ति कार्यक्षेत्र छोटा और राष्ट्रका विस्तृत है, छोटेपन और विस्तृतपन की बातको छोड़नेसे दोनों स्थानोंमें नियमोंकी एकस्यताका अनुभव आ सकता है।

कुटुंबका ही विस्तृत रूप राष्ट्र है, ऐसा मान लें और पूर्वस्थानमें एक घर या एक परिवारके विषयमें जो उपदेश बताया है, वही विस्तृत रूपसे राष्ट्रमें देखेंगे तो पाठकोको राष्ट्रीय उन्नति का नियम पूर्वोक्त रीतिसे ही ज्ञात हो जायगा।

घरमें पिता शासक है, राष्ट्रमें राजा शासक है; घरमें माता प्रबंधकर्त्री है, राष्ट्रमें प्रजाद्वारा चुनी हुई राष्ट्रमाता प्रबंधकर्त्री है। घरमें पुत्र धीर बनाया जाता है और राष्ट्रमें बालबचुओंमें धीरता बढाई जाती है। इत्यादि साम्य देखकर पाठक जान सकते हैं कि यह सूक्त राष्ट्रीय विजयका उपदेश किस ढंगसे देता है। पूर्वोक्त स्थानमें वर्णन किये हुए पिता, माता और

पुत्रके गुणधर्मकर्म यहां राष्ट्रीय क्षेत्रमें अतिविस्तारसे देखनेसे इस क्षेत्रकी बात पाठकोको अतिस्पष्ट हो जायगी। इस भावको ध्यानमें धारण करनेसे इस सूक्तका राष्ट्रीय भाव निम्न-लिखित प्रकार होगा—

“ प्रजाका उत्तम धारण पोषण और पूर्णता करनेवाला राजा ही शूरका सच्चा पिता और उसकी माता बहुत कर्मकी प्रेरणा करनेवाली मातृभूमि ही है ॥ १ ॥ हे मातृभूमि ! हम सबके शरीर अति सुदृढ़ हों, जिससे हम सब उत्तम बलवान बनकर अपने शत्रुओंको भगा देंगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार गौ अपने बछड़ेका दूध सदा चाहती है, उसी प्रकार हे ईश्वर ! मातृभूमिके प्रेमसे बढे हुए धीर आगे बढ़ें ॥ ३ ॥ जिस प्रकार आकाश और भूमिके बीचमें तेजोगोलक होते हैं उसी प्रकार राजा और प्रजाके मध्यमें धीर चमकते रहें। तथा वे पवित्रता करते हुए रोगादि-भयसे दूर हों ॥ ४ ॥

साधारणतः यह आशय अतिबेधेय है। पाठक इस प्रकाश विचार करें और वेदके आशयको समझनेका यत्न करें।

आरोग्य-सूक्त ।

(३)

पूर्ण सूक्तका अभ्यास करनेसे यह ज्ञान हुआ कि पर्जन्य पिता है, वृष्टी माता है और इनके पुत्र वृक्षवनस्पति आदि सब हैं। यही धांदा उपलब्ध होती है कि, क्या पर्जन्यके समान सूर्य, चंद्र, वायु आदि भी वृक्षवनस्पतियोंके लिये पितृशायी हैं या नहीं, क्या इनके न होते हुए, केवल अकेला एक ही पर्जन्य तृणोंकी रक्षायी करनेमें समर्थ हो सकता है ? इसके उत्तरमें यह तृतीय सूक्त है—

[ऋषि-अथर्वा । देवता—(मंत्रोंमें उक्त अनेक) देवताएँ]

विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वेऽक्षं शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं द्रिष्टे अस्तु चालिति ॥ १ ॥

विद्या शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वेऽक्षं शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं द्रिष्टे अस्तु चालिति ॥ २ ॥

विद्या शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम् ।

तेना ते तन्वेऽक्षं शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं द्रिष्टे अस्तु चालिति ॥ ३ ॥

प्राप्त होता है। अन्य जल अर्थात् तालाब, बूए, नदी आदिको जलके स्नानमें उनमें उत्तम प्रकार तैलसे भी कई दोष दूर हो जाते हैं। जलावाकताका यह विषय है वह पाठक यहाँ अनुमान करके देख। यह बड़ा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्रायः सभी बीमारियाँ जलचिकित्सासे दूर हो सकती हैं।

चन्द्र (सोम) देवसे आरोग्य।

चन्द्र औषधियोंका राजा है, इसका दूसरा नाम सोम है। गोमादि औषधियोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकदि व्याचार्योंने अपने वैद्य ग्रंथोंमें लिखा ही है। इसी साधनका दूसरा नाम “वैद्यरु” है।

सूर्यदेवसे आरोग्य।

सूर्य पवित्रता करनेवाला है। सूर्यकिरणसे जीवनका तत्त्व सर्जन फैला है। सूर्यकिरणोंका स्नान जने शरीरसे करनेसे अर्थात् धूपमें अपना शरीर तपानेसे आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक बड़ा भारी शास्त्र है।

पञ्चपाद पिता।

ये पांच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य, पशुपक्षी, उक्ष, वन-रपति आदिकोंका आरोग्य साधन करते हैं। दुःखवनरपति और आरम्भक पशु उक्त पञ्चपाद पितरों अर्थात् पाचों देवोंके साथ पाचों गिर्गोंके पाच-पाचों रक्षकोंके साथ नियत रहते हैं, इस उद्देशे सप्त आगमनपत्र होते हैं। नागरिक पशुपक्षी मनुष्यके उन्निम बनवागजन्तुने संरक्षित होनेके कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं। जगत्का लोग प्रायः सदा सदा रक्षकोंके अरुण अधिक नाशक होते हैं। परन्तु नागरिक लोग कि जो सप्त रात्रि मङ्गलानाम रहते हैं सदा रोग वखासे बाधित होते हैं और जल वायु तथा सूर्य प्रकाश आदिकोंसे अपने आपसे दूर रहते हैं। अर्थात् जो अपने पञ्चपादप्रेमिणी विमुख रहते हैं वेदा अधिक-से आरिक्त रोगी होते हैं और प्रति दिन इन सप्तगिर्गों पांडित नागरिक रोगोंमें ही गिरिष रोग बढ रहे हैं और अस्वास्थ्यसे भे ही सदा दुःखी होते हैं।

दगलिये वेद कहता है कि पन्त्रय, मित्र (प्राय) वायु, जम्देव यक्ष, चंद्र, सूर्यदेव इन पांच देवोंको अपना पिता अपना अपना मरसक जानो और —

विचार करें और इस निरर्गनियमोंका पालन करके अपना आरोग्य प्राप्त करें।

पृथ्वीमें जीवन।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उच्च जीवन विज्ञेयन तक पाचों शक्तियोंपर ही निर्भर है। मंत्रका “नियेचन” शब्द “जीवनरूप मूल” का सूचक है। इसलिये—
ते प्रथिव्यां नियेचनम्।

इस मंत्रभागका आशय “तेरा पृथ्वीमें जीवन” पूर्वांक पाचा देवताओंके साथ संबधित है यह स्पष्ट है। जो शरीर का अरोग्य, शरीरका कल्याण करनेवाले हैं वेही जीवन अपना दीर्घ जीवन देनेवाले निश्चयसे हैं। इनके द्वारा ही—
ते बालू इति बहि मस्तु।

“तेरे शरीरके दोष दीर्घ बाहर हो जाय।” पूर्वांक पाचों देवोंके योग्य संबंधसे शरीरके सब दोष शरीरसे बाहर हो जाते हैं। देखिये—

(१) दृष्टिजल पान पूर्वक संघन करनेसे मूत्रद्वारा शरीर रोग बाहर हो जाते हैं।

(२) शूद्र प्रायके अंदर जानेसे रक्तमुक्ति होती है और उच्छ्वसप्राप्त रोग दूर होते हैं।

(३) जलचिकित्साद्वारा हरएक अवयवके रोग दूर किये जा सकते हैं।

(४) सोम आदिक औषधियोंका औषधि नाम इसलिये है, कि वे शरीरके (दोष-पी) दोषोंको पीती हैं।

(५) सूर्यकिरण पसीना खाने तथा अन्याय रीतिगोष्ठि शरीरके रोग रोग दूर कर देते हैं।

इस रीतिमें पाठक अनुभव करें कि ये पांच देव किस प्रकार शरीरका (सं सं) कल्याण करते हैं। आरोग्य देते हैं, (नियेचने) जीवन बढ़ाते हैं, और (बहि) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं।

“सो” शब्द “शक्ति” का सूचक है। शरीरमें “शक्ति, समता, शुद्ध” आदि स्थापन करना आरोग्यका भाव होता रहा है। ये देव “स” करनेवाले हैं, इसका तात्पर्य यही है कि, ये आरोग्य बढ़ानेवाले हैं। आरोग्य बढ़ानेके कारण जीवन बढ़ानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दोषोंको शरीर बाहर करनेवाले हैं। पाठक इस मंत्रके मनसे अपने आरोग्यके मुख्य गिद्वान्तका ज्ञान स्पष्टतया प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आरोग्यके मुख्य साधनका सामान्यतया उद्देश्य करके मूलरूप निरूपण विशेष उपाय बताते हैं—

मूत्रदोष-निवारण ।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्वहस्तावधि संश्रुतम् । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥६॥

प्र तै भिनन्ति मेहन्तं वृत्रं वेदन्त्या इव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥७॥

विपितं ते वास्तिविलं समुद्रस्योर्दधोरिव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥८॥

यथेषुका परापतदवमृष्टाऽधि धन्वनः । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्वालिति सर्वकम् ॥९॥

अर्थ— (यत्) जो (आन्त्रेषु) आंतोंमें (गवीन्योः) गृध्र नाहियों तथा जो (वस्तौ) मूत्राशयमें मूत्र (संश्रुतं) इकट्ठा हुआ है। वह तेरा मूत्र (सर्वकं) सबका सब एकदम बाहर (मुच्यताम्) निकल जावे ॥६॥ (वेदन्त्याः) शूलके पानीके (वृत्रं) बंधको (इव) जिस प्रकार खोल देते हैं तद्वत् तेरे (वेदने) मूत्रदात्रको (प्र भिनन्ति) मैं खोल देता हूँ ॥७॥ समुद्रके अथवा (उदधेः) बड़े तालाबके जलके लिये मार्ग खुला करनेके समान तेषां (वास्ति-विलं) मूत्राशयका बिलं भी (विपितं) खोल दिया है... ॥८॥ जिस प्रकार धनुष्यसे छूटा हुआ (इषुका) बाण (परा गतवत्) दूर जाता है, उस प्रकार तेषां सब मूत्र बाह्य बाहर निकल जावे ॥ ९ ॥

भावार्थ—तालाब आदिसे जिस प्रकार नहर निकाल देते हैं जिससे तालाबका पानी सुखपूर्वक बाहर जाता है उसी प्रकार मूत्राशयसे मूत्र मूत्रनाडियों द्वारा मूत्रेशियसे बाहर निकल जावे ।

मूत्र छली रीतिसे बाहर जानेसे शरीरके बहुत दोष दूर हो जाते हैं । शरीरके सब विष मानो इस मूत्रमें इकट्ठे होते हैं और वे मूत्र बाहर जानेसे विष भी उसके साथ बाहर जते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है । इसीलिये किनी रोगी का मूत्र अंदर दक जानेसे मूत्रके विष शरीरमें फैलते हैं और रोगी शीघ्र ही मर जाता है । इस कारण आरोग्यके लिये मूत्रका उत्सर्ग नियमपूर्वक होना अत्यंत आवश्यक है । यदि वह मूत्र मूत्राशयमें दक जाय तो मूत्र नलिकाकी खोल कर मूत्रका मार्ग खुला करना आवश्यक है । इस कार्यके लिये दार या मुत्र ओपेनर का प्रयोग करना आवश्यक है । वैद्य लोग इसका उपयोग करें । इसपर दूसरा उपाय मूत्रदात्र खोलनेका है, इसके लिये लोह शलका, कठितयंत्र (Catheter कैथेटर) का प्रयोग करनेकी सुचना इन दोनों की उपमाओंमें मिलती है । यह मूत्राशय यंत्र सोनेका, चांदीका या लोहका बनाया जाता है, यह बाह्यक नलिका आरंभमें गोल ही होती है, आग्रजल यद् रबर आदि अल्पान्य पदार्थोंका भी बनाकरनाया मिलता है । इस समय इसको हर एक डाक्टरके पास पाठक देखा सकते हैं । यह मूत्र शिशियसे मूत्राशयमें योग्य रीतिसे डाला जाता है । यह बड़ा पंजुनेसे अंदर दखा हुआ मूत्र इगके अंदर भी जलीये बाहर हो जाता है ।

करते हैं मूत्रदात्रमें कोमा दूध अथवा जल आदि अंदर मूत्राशयमें खींचने और उसके द्वारा मूत्राशयको शुद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें बहाते हैं । इसका अभ्यास करनेसे न केवल मूत्राशयपर प्रभुत्व प्राप्त होता है, परंतु मूर्खों की नाडियोंमें समेत संपूर्ण कार्यशायर भी प्रभुत्व प्राप्त होता है । कर्णरोग होनेको निम्न इसीके योग्य अभ्यासमें प्राप्त होगी है । योगी लोग इस अभ्यासको अतिशुभ समते हैं और योग्य परीक्षा होनेके पश्चात् ही यह अभ्यास शिष्यको सिराया जाना दे । पूर्णब्रह्मचर्य रहना इसी अभ्यासमें ग्राह्य होता है । यूरन यम पात्रन करते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचर्य प्राप्त होनेकी संभावना इस अभ्याससे ही शक्य है ।

योगी लोग इसकी उदाहरणसे बमोली आदि विनाशक शक्ति

पूर्वापर सम्बन्ध

द्वितीय सूक्तमें आरोग्य साधनका विषय प्रारंभ किया था । उसी आरोग्यप्राप्तिरा विस्तृत नियम इस तृताय सूक्तके प्रथम पात्र मंत्रोंके गणमें कहा है । सबके आरोग्यका मानो यह सूक्त-मंत्र ही है । हरएक अवस्थामें सुखमयता आरोग्यसाधन करनेका उपाय इस गणमें वर्णन किया है । इस तृतीय सूक्तके अंतिम चार मंत्रोंमें मृत्नाशयके दोषको दूर करनेका साधन बताया है ।

इस सूक्तका “शान वृष्य” शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । “वृष्य” शब्द बल, बौर्य, उत्साह, प्रजननसामर्थ्य आदिका वाचक है । ये शेरुओं बल देनेवाले पुरोहित पात्रों देव हैं वह यही इस सूक्तके स्वयं हुआ है । वार्यवर्षक अन्य उपायोंका अवलम्बन न करके पाठन यदि इन पात्रोंकी ही योग्य रीतिसे वर्तते रहेंगे तो उनकी अनुपम लाभ हो सकता है ।

त्रितीय सूक्तमें, “भूरि-धायस” शब्द है जिसका अर्थ ‘अनेक प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला’ पूर्व स्थानमें दिया है । यह भी पञ्चम्यके साहचर्यके कारण इस सूक्तमें अनुश्रुति से आगा है और पात्रों विशेष विवेचन बनता है । पाठक इस शब्दको के हर मंत्रोंका अर्थ देखें और बोध प्राप्त करें ।

“भूरि-धायन” शब्दका “शान वृष्य” शब्दसं निकट संबंध है, मानो ये दोनों शब्द एक दूसरेके सहायक हैं । विशेष प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला ही पौरुष सामर्थ्य देनेवाला ही सहायक है । क्योंकि पृथिके साथ ही यलका संबंध है । इस प्रकार पूर्व सूक्तसे इस सूक्तका संबंध देखिये ।

शरीरशास्त्रका ज्ञान ।

इस सूक्तके मननसे पठनेसे अत ही पिया होगा कि शरीर-

शास्त्रका ज्ञान अथर्ववेदिका यथावत् जाननेके लिये अत्यंत आवश्यक है । मृत्नाशयमें शलाकाका प्रयोग बिना वहाँके अवयवोंके जाननेसे नहीं हो सकता । शरीरशास्त्रको न जाननेवाला मनुष्य योगसाधन भी नहीं कर सकता, तथा अथर्ववेदका ज्ञान भी यथा योग्य रीतिसे प्राप्त नहीं कर सकता ।

यह “अभि-रस” का विषय है, अर्थात् अंगोंके रसोंकाही यह अथर्वशास्त्र है । अर्थात् जिसने अंगोंका ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, अंगोंकी अंदरके जीवन रसोंका जिसको कुछ भी ज्ञान नहीं है वह अथर्ववेदासे बहुत लाभ प्राप्त नहीं कर सकता ।

डाक्टर जेम्स जिस प्रकार मुँहको खीर फाड़ करके शरीर-गोष्ठ यथावत् ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी प्रकार योगियों और अथर्ववेदविद्याके पढ़नेवालोंको करना उचित है ।

हमने यहाँ सोचा था कि इस सूक्तमें वर्णित शलाकाके प्रयोगके लिये आवश्यक अवयवोंका परिचय चित्रोद्घाटन किया जावे, परंतु इसके कई लोग अधिक भ्रममें भी पड़ सकते हैं और जो चित्रोंके ठीक प्रकार समझ नहीं सकते वे उल्टाही प्रयोग करके दोषके भाग्य हो सकते हैं । इस भयभीत सामने देखकर इस बातको चित्रोंसे स्पष्ट करनेका विचार इस समय के लिये दूर कर दिया है । और हम यहाँ पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे इस प्रयोगका ज्ञान छुविश डाक्टरोंसे ही प्राप्त करें तथा ऊपर दिखे हुए योग-प्रक्रियाका ज्ञान किसी उत्तम योगोंके पास डाक्टर सीखें, क्योंकि अंगरस विविधतामें इन बातोंकी आवश्यकता है । इनके बिना केवल मंत्रार्थ पढ़नेसे अथवा शाब्दिक ज्ञान समझने मात्रसे भी उपयोग नहीं हो सकता ।

जल-सूक्त ।

पूर्व सूक्तमें आरोग्यसाधन प्रत्येक पात्रोंसे वर्णन किया है इसलिये अब उसी जलका विशेष वर्णन हमसे आगेके तीन सूक्तोंमें करेंगे :-

[४]

(ऋषिः- सिन्धुद्वीपः । देवता[अर्षानपात्र, सोमः-] आपः ।)

अमृष्यां यन्त्यर्षमिन्नामर्षा अचरीयताम् । पृच्छन्तीर्मधुना पर्यः ॥ १ ॥

अमृष्या उप यमं यामिन्नां यमं गृह । ता नो हिन्वन्त्यप्सुम् ॥ २ ॥

अपो देवीरूपं ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुर्म्यः कर्त्तुं हविः ॥ ३ ॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु मेपजम् । अपामृतं प्रशस्तिभिरद्या भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अध्वरीयतां) यज्ञकर्ताओंके (जामयः) बहिनोंके समान और (अभ्ययः) माताओंके समान जलनी नदिय,
(अध्वभिः यन्ति) अपने मागोंसे जाती हैं जो (मधुना) मधु-घड़दके साथ (पयः) दूध या जल (पृथ्वीः) मिलाती हैं ॥ १ ॥
(याः) जो (अमृः) ये नदिया (उप सूर्ये) सूर्यके सम्मुख होती हैं अथवा (याभिः) जिनके साथ सूर्य होता है । वे हम सबका
(अध्वरं) यज्ञ (हिन्यन्ति) सांग करती हैं ॥ २ ॥ (यत्र) जहाँ हमारी (गान्) गौवें पानी (पिबन्ति) पीती हैं उन
(देवीः आपः) दिव्य जलोंकी (सिन्धुर्म्यः) नदियोंके लिये हवि करनेके कारण (उप ह्वये) मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ३ ॥
(अप्सु अन्तः) जलमें अमृत है, (अप्सु मेपजं) जलमें दवाई है ॥ (उव) और (अपां प्रशान्तिभिः) जलके प्रशमनीय गुण
प्रमोसे (भक्षः वाजिनः) घोड़े बलवान् (भवथ) होने और गौवें बलयुक्त होती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जल उनके लिये माता और बहिनके समान दितारक होता है जो उनका उत्तम उपयोग करना जानते हैं । जल ही
नदियाँ बह रही हैं, मानो बड़ दूधमें शहद मिला रही हैं । जो जल सूर्यकिरणसे छुद बनता है अथवा जिसकी पवित्रता सूर्य करता
है वह जल हमारा आरोग्य निद करे । जिन नदियोंमें हमारी गौवें जल पीती हैं और जिनके लिये हवि बनाया जाता है उनके
जलका गुणगान करना चाहिये । जलमें अमृत है, जलमें औषध है, जलके शुभ गुण से घोड़े बलवान् बनते हैं और गौवें भी
बलवती बनती हैं ।

[५]

(ऋषिः- सिन्धुद्वीपः । देवता-[अपानपात्र, सोमः] आपः) ।

आपो हि सा मधोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

यो वः शिवर्तमो रमुस्तस्य भाजयतेह नः । उग्रवीरिषि मातरः ॥ २ ॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य ध्यायं जिन्वथ । आपो ज्ञनपथा च नः ॥ ३ ॥

ईशाना वापांणां क्षयन्तीथर्षणीनाम् । अपो याचामि मेपजम् ॥ ४ ॥

अर्थ—दे (आपः) जली । (हि) क्योंकि आप (मधोभुवः) मधुधारा (स्य) ही इसलिये (ताः) तो हम
(ना ऊर्जे) हमारे बलके लिये तथा (महे रणाय चक्षसे) बड़ी रमणीयताके दर्शनके लिये हमें (दधातन) प्रद
करो ॥ १ ॥ (यः) जो (वः) आपके अंदर (शिवर्तम रमः) अत्यन्त रुचिरकारी रम दे (तस्य) उनका
(न इह भाजयत) हमें यहाँ भागी करो (ह्य) ऐसी (उग्रवीरि मातरः) दृष्टा करनेवाली माताएं करती हैं ॥ २ ॥ दे
जलो । त्रिषके (क्षयाम) निराशके लिये आप (जिन्वथ) लुप्त करते हो (तस्मै) उसके लिये हम (यः अरं गमाम)
आपकी पूर्णतया प्राप्त करने । और आप (नः) हमें (ज्ञनपथा) यज्ञाओं ॥ ३ ॥ (वापांणां) दृष्टा करनेवालेय पुरोंके
(ईशाना) स्वामी इसलिये (क्षयन्तीथर्षणीनाम्) प्राणिमार्गके (क्षयन्ती) निराशके हेतु ऐसे (अपः) जलोंके (मेपजं) मागनी
औषधकी मागना करता हूँ ॥

भावार्थ— जल मधुधारा है, उससे बल बढ़ता है, रमणीयता प्राप्त होती है और पुष्टि भी है । जिस प्रकार पुत्रको
माताके दूधसे पुष्टि का भाग मिलता है, उसी प्रकार जलके अंदरके जलम गुप्तार्थक रम हमें प्राप्त हो । जिससे प्राणिमार्गकी
स्थिति होती है, वह रम हमें प्राप्त हो और उनसे हमारी कठि होती रहे । अपने इस गुण प्राप्त होने के और प्राणिमार्गकी
स्थिति होती है, उस जलसे हमें औषधप्राप्त प्राप्त होना रहे ॥

[६]

[ऋषिः- तिस्रुदीपः । देवता (अपानपात) आपः, २ आपः सोमो अमिश्र]
 शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि संवन्तु नः ॥ १ ॥

अप्सु मे सोमो अन्नवीदन्तर्विश्रानि भेषजा । अग्निं च विश्वशीभ्रवम् ॥ २ ॥

आपः पृणीत भेषजं वरुणं तन्वेडु मम । ज्योक् च सूर्यं दृष्टे ॥ ३ ॥

शं नु आपो धन्वन्त्याडुः शमु सन्तवनुप्याः ।

श नः सन्निविमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ ४ ॥

अर्थ— (देवी आप) दिव्य जल (न श) हमें सुख दे और (अभिष्टये) इष्ट प्राप्ति के लिये तथा (पीतये) पीने के लिये हो और हमपर शांति । अभि स्रज्जु) खेत चलावे ॥ १ ॥ (मे) मुझे (सोम अन्नवी) सोमने कहा कि (अप्सु अन्त) जलमें (विश्रानि भेषजा) सब औषधिया हैं और अग्नि (विश्व-श-भ्रव) सब कल्याण करनेवाला है ॥ २ ॥ (आप) जलो । (भेषज पृणीत) औषध दो और (मम तन्वे) मेरे शरीरके (वरुणं) संरक्षण दे जिससे मैं सूर्यको (ज्योक् इतो) दीर्घकालतक देखू ॥ ३ ॥ (न.) हमारे लिये (धन्वन्त्या आपः) मरुदेशका जल (या) सुखकारक हो, (अन्प्या) जलपूर्ण प्रदेशका जल सुखदायक हो, (सन्निविमा) खोदे हुए कूबे आदिका जल सुखदायक हो, (कुम्भे) घड़ेमें भरा जल सुखदायक हो, (वार्षिकी) रुष्टिका जल सुखदायक होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— दिव्य जल हमें पीने के लिये मिले और वह हमारा सुख पत्रावे ॥ १ ॥ जलमें सब औषध रहते हैं और अग्नि सुख करनेवाला है ॥ २ ॥ जलसे हमारी चिकित्सा होवे और शरीरका बचाव होयेंसि होकर हमारा दीर्घ आयु बने ॥ ३ ॥ मरुदेशका, जलमय देशका, कूबेका, पट्टिका तथा घड़ेमें भरा हुआ जल हमारा सुख करनेवाला होवे ॥ ४ ॥

ये तीन सूक्त जलका वर्णन कर रहे हैं । तीनों सूक्त इतने हैं इष्टालिये तीनोंका विचार यहां इच्छाहो करेगे ।

६ सन्निविमा आपः (६।४)—खोदकर बनाये हुए कूप बावलीसे प्राप्त होनेवाला जल ।

जलकी मिश्रता ।

जल निम्न प्रकारका है यह बात पूर्व सूक्तोंमें कही है—

१ देवी (दिव्या) जल (४।३)—आराधने अर्थात् भेषोसे प्राप्त होनेवाला जल, इसी का नाम “वार्षिकी” भी है ।

२ वार्षिकी आपः (६।४)—पृथिवीसे प्राप्त होनेवाला जल ।

३ त्रिपुः (४।३)—नदी तथा समुद्रसे प्राप्त होनेवाला जल ।

४ अन्प्या जलः (६।४)—जलमय प्रदेशमें प्राप्त होनेवाला जल ।

५ धन्वन्त्या जल (६।४)—मरुदेश, रेतीले देशमें, अपका बोरी पट्टि होनेवाले देशमें मिलनेवाला जल ।

पृथिवीसे प्राप्त होनेवाला जल भी रेतीले स्थान, कीचटमी मिट्टीके स्थान आदिमें गिरनेसे मिश्र शुष्ण धर्मोंसे युक्त होता है । जिस स्थानमें साली साल कीचट बना रहता है, उसमें पड़े हुए पानीकी अवस्था भिन्न होती है और रेतीलेसे प्राप्त हुए पानीके शुष्णधर्म भिन्न है । इसी कारण ये सब जल विभिन्न शुष्णधर्मोंसे युक्त होने हैं । जलका उपयोग आरोग्यके लिये करना हो, तो प्रथम मरने सतत शुद्ध और पवित्र जल प्राप्त करना आवश्यक है ।

उपरोक्त जल जो बाहर प्राप्त होता है वह परम साफ़ पक्षमें रखनेके कारण उपरोक्त शुष्णधर्मोंमें बदल होता है । अर्थात् कूबेका ताजा पानी जो शुष्णधर्म रागता है, वही घाटमें साफ़ (नये आरुणाः ६।४) घड़ेमें कई दिन रखनेपर मिश्र शुष्णधर्मोंसे युक्त होता पाया है । तथा प्रवाही नदीका पानी और कूबेके स्थिर पानीके शुष्णधर्म भी भिन्न हो पड़ते हैं ।

इसी प्रकार एक ही जल विभिन्न स्थानमें और विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। यह दर्शनके लिये निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अमूया उप सूर्ये याभिवां सूर्यः सह । (४ । २)

“वह जल जो सूर्यके सम्मुख रहता है, अथवा जिसके साथ सूर्य रहता है।” अर्थात् सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्श करनेवाला जल भिन्न गुणधर्मोंवाला बनता है और सदा अंधेरेमें रहनेके कारण जिसपर सूर्यकिरण नहीं गिरते उसके गुणधर्म भिन्न होते हैं। जिन वृक्षोंपर वृक्षादिकी हमेशा छाया होती है और जिनपर नहीं होती उनके जलोंके गुणधर्म भिन्न होते हैं। तथा—

अभ्ययो यन्त्यध्वभिः । (४ । १)

“नदियाँ अपने मार्गसे चलती हैं।” इसमें जलमें गतिक का वर्णन है। यह गतिमान जल और स्थिर जल विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। स्थिर जलसे क्रमिकीटक तथा सड़ावट होना संभव है उस प्रकार गतिवाले जलमें नहीं। इसी प्रकार गतिहीन मंदता और तेजोंके कारण भी जलके गुणधर्मोंमें भेद होते हैं। तथा—

पृथग्गीर्मेधुना पयः । (४ । १)

“मधु अर्थात् पुष्प-पराग आदिसे जलमें मिलावट होती है।” इससे भी पानीके गुणधर्म बदलते हैं। नदी तालावके तटपर वृक्षादि होते हैं और उस जलमें वृक्षवनस्पतियोंसे फूल, फूलके पराग, पत्ते आदि गिरते हैं, जलमें सरते या मिलते हैं। यह कारण है कि जिससे जलके गुणधर्म बदलते हैं तथा—

यत्र गावः पियन्ति । (४ । ३)

“जिस जलाशयमें गौंवे पानी पीती हैं,” जहाँ गौंवे, भैंसे आदि पशु जाते हैं, जलपान करते हैं। उस पानीकी अवस्था भी बदल जाती है।

जल लेनेके समय इन बातोंका विचार करना चाहिये। जो जलकी अवस्थाएं वर्णन की हैं, उनमें सबसे उत्तम अवस्थावाला जल ही पीने आदि कार्यके लिये योग्य है। हरएक अवस्थामें प्राप्त होनेवाला जल लाभदायक नहीं होगा। वेदने ये सब जलकी अवस्थाएं बताकर स्पष्ट कर दिया है कि जलमें भी उत्तम मध्यम अधम अवस्थाका जल हो सकता है और यदि उत्तम आरोग्य प्राप्त करना हो तो उत्तमसे उत्तम पवित्र जलही लेना चाहिये। पाठक इन अवस्थाओंका उत्तम विचार करें।

जलमें औषध ।

जन्वा नाम ही “अमृत” है अर्थात् जीवन रूप रस ही

ही जल है यही बात मंत्र कहता है—

अप्सु अमृतम् । (४ । ४)

अप्सु भेषजम् । (४ । ४)

“जलमें अमृत है, जलमें औषध है,” जल अमृतमय है और औषधिमय है। मरनेसे बचानेवाला अमृत कहलाता है, और शरीरके दोषोंको धोकर शरीरकी निर्दोषता सिद्ध करनेवाला भेषज कहलाता है। जल इन गुणोंसे युक्त है। इसी लिये जलको कहा है—

शिवतमः रसः । (५ । २)

“जल अत्यंत कल्याण करनेवाला रस है।” केवल “शिवो रसः” कहा नहीं है, परंतु “शिवतमो रसः” कहा है, इससे स्पष्ट है कि इससे अत्यंत कल्याण होना संभव है। यही बात अन्य शब्दोंसे भी वेद स्पष्ट कर रहा है—

आपः मयोमुखः । (५ । १)

“जल हितकारक है।” यहाँका “मयस्” शब्द “मुख, आनंद, समाधान, नृप्ति” आदि अर्थका बोध कराता है। यदि जल पूर्ण आरोग्य साधक न होगा तो उससे आनंद बढ़ना असंभव है। इसलिये जल अमृतमय है यह स्पष्ट भिन्न होता है एवम-लिये कहा है।—

अप्सु विश्वानि भेषजानि । (१ । २)

“जलमें सब दवाइयाँ हैं।” जलमें केवल एकही रोग की औषधि नहीं प्रत्युत सब प्रकारकी औषधियाँ हैं। इसीलिये हरएक बीमारीके जलचिकित्सासे इलाज किया जा सकता है। योग्य वैद्य और पथ्यपालन करनेवाला रोगी होगा, तो आरोग्य निःसंदेह प्राप्त होगा। इसलिये कहा है—

आपः शृणीम भेषजम् । (१ । २)

अथो याच्याभि भेषजम् । (५ । ४)

“जल औषध करता है। जलसे औषध मांगता है।” अर्थात् जलसे चिकित्सा होती है। रोगोंकी निश्रुति जलचिकित्सा से हो सकती है। रोगोंके कारण शरीरमें जो विषमता होती है उसे दूर करना और शरीरके रक्त पानुओंमें समता स्थापित करना जलचिकित्सासे संभवनीय है।

समता और विषमता ।

शरीरकी समता आरोग्य है और विषमता रोग है। समता स्थापन करनेकी ध्वनिका वेदके “सं, शांति” आदि शब्द करते हैं और विषमता दूर करनेका वाक्य “मो” शब्द वेदमें कर रहा है। दोनों मिश्रकर “सं-मोः” शब्द बनता है। इसका संतुलन तात्पर्य “समताकी स्थापना और विषमताका दूर करना” है। इसलिये कहा है—

धर्म-प्रचार-सूक्त ।

(ऋषिः— चातनः । देवतः— अग्निः (जातवेदाः), ३ अग्नीन्द्री)

(७)

स्तुवानमम् आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हुन्ता दस्योर्वभूविथ ॥१॥
 आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तन्ववशिन् । अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥
 विलपन्तु यातुधानां अतिव्रणो ये किमीदिनः । अयेदमग्ने नो हविरिन्द्रं प्रति हर्षतम् ॥३॥
 अग्निः पूर्वं आ रभतां मेन्द्रो नुदत बाहुमान् । त्रयीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्यस्य ॥४॥
 पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानां नृचक्षः ।
 त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्ताच्च आ येन्तु प्रमुवाणा उपेदम् ॥५॥
 आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥
 त्वमग्ने यातुधानानुपवद्वो इहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृथतु ॥७॥

अर्थ— हे अग्ने ! (स्तुवानं) स्तुति करनेवाले (यातुधानं किमीदिनं) यातक शत्रुओंको भी (वा यह) यहां ले आ । (हि) क्योंकि हे देव । (वन्दितः त्वं) नमनको प्राप्त हुआ तू । (दस्योः) डाकूका (हुन्ता) हतन या शक्ति करने वाला (वभूविथ) होता है ॥ १ ॥ हे (परमेष्ठिन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (जातवेदः) ज्ञानको प्राप्त करनेवाले और (मन्व-वशिन्) छरीरका संयम करनेवाले अग्ने ! तू (तौलस्य आज्यस्य) लोले हुए पी आदि का (प्राशान) भोजन कर और (यातुधानान्) दुष्टों (वि लापय) विलाप करा ॥ २ ॥ (ये) जो (यातुधानाः) दुष्ट (अतिव्रणः) भटकेगले और (किमीदिनः) पापक हे वे (विलपन्तु) विलाप करें । (अयं) और अय, हे अग्ने ! (इदं हविः) यह हवि तू और (इन्द्रं च) इन्द्र (प्रनिह-यंतम्) स्वीकार करे ॥ ३ ॥ (पूर्वं) अग्निः आरंभतां पहिला अग्नि आरंभ करे, तथा पथार (बाहुमान् इन्द्रं प्र नुदतु बाहुबलवाला इन्द्र विशेष प्रेरणा करे, जिते (सर्वं यातुमान्) सब दुष्ट लोग (एव) आकर (मरीतु) मारे, कि (अयं अस्मि इति) यह मैं हूं ॥ ४ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (ते वीर्यं पश्याम) तेरा पराक्रम इन देखें । हे (नृ-चक्षः) मनुष्योंके मार्ग दर्शक ! (यातुधानान्) दुष्टोंको (नः) हमारा आदिष्ट (प्र मूढि) विधाय रूपसे कह दे । (रथया) वृत्तसे (पुरस्ताच्च) पहिले (परितप्ताः) तपे हुए (ते सर्वं) ये सब (इदं मुवाणा) यह कहते हुए (उप आयन्तु) हमारे पास आनायें ॥ ५ ॥ हे (जातवेदः) शनी ! (आरभस्व) आरंभ कर (अस्माकार्थाय) हमारे प्रयोजनके लिये तू (जज्ञिषे) उत्पन्न हुआ है । हे अग्ने ! तू हमारा दूत बनकर यातुधानोंको विलाप करा ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तू [यातुधानान्] दुष्टोंका [उपवद्वान्] बोधे हुए अर्थोंपर नापकर [इहा वा यह] यहां लेआ । [अयं] और इन्द्र अपने वज्रेसे [एषां शीर्षाणि] इनके मस्तक [वृथतु] काट डाले ॥ ७ ॥

इसका भावार्थ हम सबसे पीछे त्रिमूर्ति क्योंकि इस सूक्तमें कई शब्दोंके अर्थोंका विचार करने करना पारिष । इस सूक्तमें कई शब्द भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं, और जबतक इनका निश्चित निश्चित करना पारिषे—

अग्नि कौन है ?

इस सूक्तमें अग्निपद से किसका ग्रहण करना चाहिये, इसका निश्चय धरने वाले ये शब्द इस सूक्तमें हैं—“आववेद, परमेष्ठिन्, तन्वाशिन्, वृक्ष, वन्दित, दत्तः, देवः, अग्निः ।” इन शब्दोंका अर्थ देखकर अग्नि का स्वरूप सर्वत्र प्रथम हम देखेंगे—

१ आतवेद — [आत वेते] जो बनी हुई सृष्टिको ठीक ठीक जानता है । [आत-वेदः] जिसने ज्ञान प्राप्त किया है । अर्थात् ज्ञानी यष्टियया और आत्मविद्या का यथावत् जानने वाला ।

२ परमेष्ठिन्—(परमे पदे स्थाना) परमपद में टहर-न्याला अर्थात् समाधि की अतिम अवस्था को जो प्राप्त है, आत्मानुभव जिसने प्राप्त किया है, सूर्यान्तुर्ध्व अवस्थान अनुभूत करनेवाला ।

३ तन्वाशिन्—(तन्वा-शिन्) अपने शरीर और इन्द्रियों को स्वाधान धरन वाला, इन्द्रिय संशम और मनोनिग्रह करनेवाला, आत्मनाद योगा-शक्तिये जिसने अपनी कायावृद्धि की है । यही मनुष्य परमेष्ठिन् होना संभव है ।

४ वृक्ष — “वृक्षन्” शब्द १५८ शब्दों द्वारा उपदेश देने का मात्र बना रहा है । मनुष्यों को जो योग्य धर्म मार्ग का उपदेश देता है ।

पर पहुँचाने वाला यह दूत धर्मका उपदेशक ही है ।

५ देवः—प्रकाशमान, तेजस्वी ।

६ अग्निः— प्रकाश देकर अन्धकारका नाश करनेवाला, ज्ञानकी रोगिणी बढाकर अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाला । उष्णता (गर्मी) उत्पन्न करके हलचल करने वाला ।

ये सब शब्द योग्य उपदेशक का ही वर्णन कर रहे हैं । इस प्रकार वेदमें “अग्नि” शब्द ज्ञानी उपदेशक ब्राह्मणका वाचक है । तथा “इन्द्र” शब्द क्षत्रियका वाचक है ।

ब्रह्म क्षत्रिय ।

“ब्रह्म क्षत्रिय” शब्द ब्राह्मण और क्षत्रिय का बोध करता है । वेदमें ये दो शब्द इकट्ठे कई स्थानपर आगये हैं । यही भाव “अग्नि-इन्द्र” ये दो शब्द वेदमें कई स्थानोंपर व्यक्त कर रहे हैं । अग्नि शब्द ब्राह्मणका और इन्द्र शब्द क्षत्रियका वाचक है । अग्नि शब्दका ब्राह्मण अर्थ हमने देखा, अब इन्द्र शब्दका अर्थ देखेंगे—

इन्द्र कौन है ?

स्वयं इन्द्र शब्द क्षत्रिय वाचक है, क्योंकि इसका अर्थ ही शत्रु नाशक है—

१ इन्द्रः—(इन्द्रः) शत्रुओंको छिन्न भिन्न करनेवाला ।

२ बाहुमान्—बाहुवाला, भुजावाला, अर्थात् बाहुबलके लिये सुप्रसिद्ध । हर एक मनुष्य भुजावाला होता ही है, परन्तु क्षत्रियों ही “बाहुमान्” इसलिये कहा है, कि उक्त कार्य

समान ही है। वास्तव में मासिन कपडे को ही धोकर स्वच्छ करना चाहिये, इसी तरह अपार्मिक शक्तिके लोगों को ही धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यही सच्चा धर्म प्रचार है, यह बतानेके लिये इस सूक्तमें धर्म प्रचार करने योग्य लोगोंका वर्णन निम्न लिखित शब्दोंसे किया है—“यातुधान, किमादिन्, दस्यु, अत्रिन् ।” अब इनका आशय देखिये

१ यातु—“यातु” भटकनेवाले का नाम है। जिसको परदार कुछभी नहीं है और जो व-य पशुके समान अधर अधर भटकता रहता है उसका नाम “यातु” है। भटकने का अर्थ बतानेवाला “या” धातु इसमें है।

२ यातुमान्—यातुमान्, यातुवान्, यातुमत्, यादवा भाव “यातुवाला” है अर्थात् जिसके पास बहुतसे यातु (भटकनेवाले) लोग होते हैं। अर्थात् भटकने वालों के जमाव का सुविधा।

३ यातुमानव—बहुतसे यातुमानों को अपने काष्ठमें रखनेवाला।

४ यातुधान—यातुओंका धारण पोषण करनेवाला, अर्थात् भटकनेवालोंको अपने पास रखकर उनकी पोषण करनेवाला। “यातु धानव” भी इसी भावका वाचक है।

पाठकोंने जान लिया होगा, कि ये शब्द विशेष बातको व्यक्त कर रहे हैं। जिसको परदार कौण्ड आदि होते हैं, और जो कुटुम्बमें रहता है, वह सतना उपद्रव देनेवाला नहीं होता। जितना कि जिसका परदार कुछभी न हो, और जो भटकने वाला होता है। यह सदा भूखा रहता है, किसी प्रकारका मनका समान-धान उसको नहीं होता, इसलिये हरएक प्रकारका उपद्रव देनेके लिये तैयार होता है, इसी कारण “यातु” शब्द “बुरी शक्ति वाला” इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। दुष्ट, दास्यु, चोर, छुटेरे, बटमार आदि इसी शब्दके अर्थ आगे जाकर बने हैं। ये चोर दास्यु जबतक अकेले अकेले रहते हैं, तब तक उनका नाम “यातु” है, ऐसे दोचार डाकूओंको अपने वधमें रखकर बाधा डालनेवाला “यातुमान्, यातुवान्, यातुमत्” अर्थात् यातुवाला किंवा दास्युवाला कहा जाता है। पहिले भी अपेक्षा इससे समाजको अधिक बुरा पड़ते हैं। इस प्रकारके छोटे डाकू भोके अनेक संघोंको अपने आधीन रखने वाला “यातुमानवान्” अर्थात् दास्युभोकी कई जमातोंको अपने आधीन रखनेवाला। यह पूर्वी अरुणाक्षिक बुरा प्राचीन और प्रान्तोंको भी पड़ना पड़ता है। इनके नाम “दास्यु धान यातुधानव” है। पाठक इनसे ज्ञान रखते हैं, कि ये वैरिण्ड शब्द

जो कि वेदमें कई स्थानोंमें आते हैं, इन और कुछ लोगोंके वाचक हैं। अब और देखिये—

५ अत्रिन्—अत्रि (अतति) सतत भटकता रहना है। यह शब्द भी पूर्व शब्द का ही भाव बताता है। इसका दूसरा भाव (अति) खानेवाला, सदा अपने मोगके लिये दूसरोंका गला काटनेवाला। जो जोड़ेसे धनके लिये खून करते हैं, इस प्रकारके दुष्ट लोगोंका वाचक यह शब्द है।

६ किमादिन्—(किं इदानीं) अब क्या खाव, इस प्रकार की शक्तिवाले भूखे बिना पेटके लिये ही दूसरोंका मात पात कनेवाले दुष्ट लोग।

७ दस्यु—(दस्यु उपभवे) घातपात करनेवाले, दुष्टोंका नाम करनेवाले हर प्रकारके दुष्ट लोग।

ये सब लोग समाजके सुख का नाश करते हैं, इनके कारण समाजके लोगोंका कष्ट होता है। ये ग्राममें आगये, तो ग्राममें चोरी, डकैती, लूट, लुटमार होती है, स्त्री विवशक अवाचार होते हैं, राज्योंको अनेक प्रकारके पक्ष होते हैं इसलिये इन लोगोंको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यह हम सूक्तका आदेश है। जो परदारसे हीन है, जो जगलों और वनों में रहने है, जो चोर डकैती आदि दुष्ट कर्म करते हैं। उनको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये। अर्थात् जो नगरिक हैं, जो पहिले ही धर्मके प्रेमी हैं उनमें धर्म की आवश्यकता क्यों पड़े। पांडु जिनके पास धर्म की आवश्यकता नहीं पड़ती और जिनका जीवन-मम ही धर्मोपाय मार्गमें सदा चलना रहता है, उनका सुधार करनेकी उनको उचित मार्गदर्शक बनाना चाहिये। धर्मोपदेशक यह अपना कार्य देखें।

धर्मोपदेशक के शुभ, वाचन कार्यमें निष्काम रात्रिय के शुभ, और जिन लोगोंमें धर्म प्रचारकी आवश्यकता है उनमें शुभचर्च हमने इस सूक्तके आधारोंसे देखे। अब इन वाचनोंके प्रकाश में यह सूक्त देखना है—

दुष्टोंका सुधार।

प्रथम मंत्र—“हे धर्मोपदेशक! तुम्हारा प्रस्ताव करने-वाले दुष्ट डकैतों को सदा से नाश करो कि तुम्हें वेदना दान करनेपर दस्युभोका नाशक होगा है” ध १ ॥

इस पहिले मंत्रमें दो विधान हैं—

समझा दे, उन दुष्ट धर्मों से उनको बह निकल करे, जब वे ठीक प्रकार आने कि चोरी आदि उनके व्यवसाय बुरे हैं और मानवीयों तथा करनेवाला सत्य धर्म भिन्न है और वह सत्य धर्म इस धर्मोपदेश से प्राप्त हो सकता है, तब वे इसके पास धृष्टा भक्तिने आवेंगे, इसकी प्रशंसा करेंगे और इसके सामने मिर झुकायेगे अर्थात् इनकी प्रणाम करेगे। जब उनमें इतनी धृष्टाभक्ति बढेगी, तब उनका बाह्यपनचा नाश या हनन स्वयं ही हो जायगा। इसलिये मंत्र कहता है कि “धर्मोपदेशक दुष्ट मनुष्योंको अपने उपदेशद्वारा अपनी प्रशंसा करनेवाले बनाकर अर्थात् अपने अनुगामी बनाकर, अपने समाजमें ले आवे, और उनमें नमस्कार प्राप्त करके उनका शांतक करें।”

“जिनसे नमस्कार प्राप्त करना उनकाही घत करना” प्रथम निश्चय या प्रतीत होता है, परन्तु अन्तिम दुष्ट मनुष्यों के मुखाग्र करनेवाले ऐगोही बनता है। जब दुष्ट मनुष्य धार्मिक बन जाता है उस समय वह पहिले धर्मोपदेशक के सामने अपना गिर झुकता है और सिर झुकाने ही दुष्ट मनुष्यके रूपसे मर कर धार्मिक नवजीवन प्राप्त करने द्वारा वह आगे तथा ही मनुष्य बनता है। यदि एक शत्रु धर्मोपदेश सुनकर धार्मिक बन गया, तो उसका सामाजिक दृष्टिसे सत्य अपेक्षा यही है कि एक शत्रु मर गया और एक सच्चा धार्मिक मनुष्य तथा पैदा हुआ। अब हमारा मन देखिये—

खाना चाहिये। ये उपदेशक सदा भ्रमणमें रहनेके कारण तथा जलवायुके सदा परिवर्तन होनेसे इनकी पाचक शक्तिमें बिगाड़ होना संभव है; अतः जितनी पाचक शक्ति होती है, उससे भी कम हो खाना इनके लिये योग्य है। इस कारण वेद कहता है, कि “उपदेशक सोलकर ही धी आदि पदार्थ खावे” कभी अधिक न खावे।

मंत्रमें दूसरी बात “दुष्टोंको रुलाने” की है। यदि उपदेशक प्रभावशाली होगा, और यदि उसके उपदेशसे श्रोताओंकी अपने दुराचारका पता लगा तथा उनके अंतःकरणमें धर्म भावना जागृत हो गई तो उनके रो पड़नेमें तथा अपने पूर्ण दुराचारमय जीवनके विषयमें पूर्ण पश्चात्ताप होनेमें कोई सन्देहही नहीं है। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् अब तीसरा मंत्र देखिये—

दुष्टजीवनका पश्चात्ताप

तृतीय मंत्र—“दुष्ट लोग रो पड़ें, और वे धर्मोपदेशक। तेरे लिये यह हमारा दान है, क्षत्रिय भी इसका स्वीकार करें” ॥ ३ ॥

सब धर्मोपदेशक के धर्मोपदेश सुनकर दुष्ट लोगोंको अपने दुःखकारण पश्चात्ताप होने और वे रो पड़ें। तथा जनता ऐसे धर्मोपदेशकों तथा उनके सहायक श्रमिकोंको भी तथा शक्ति

ऐसा हो, कि सब दुष्ट दुराचारी मनुष्य अपना आचरण सुधारने और खुले दिलसे उपदेशकों पास आकर कहें कि " हम अब आपकी शरणमें आगये हैं । " यही धर्म प्रचारका साधन है । धर्म प्रचारसे दुराचारी दुष्ट सुधर जाय और अच्छे धार्मिक बनें, वे अपने पूर्व दुराचाराका पश्चात्पन्न करें, तथा जब पूर्व दुराचाराका उनको स्मरण आवे उस समय उनको रोना आवे । क्षत्रियके बल को अपेक्षा न करते हुए केवल ब्राह्मण ही अपनी धार्मिक और आत्मिक शक्तसे यह कार्य करें । पिछेमे क्षत्रिय उनको मदद पहुंचावे । क्षत्रियके जोरसे जो धर्म प्रचार होता है, वह सत्य नहीं है, परन्तु ब्राह्मण अपने धार्मिक वृत्तिसे जो हृदय पकड़ा देता है, वही सच्चा धर्मपरिवर्तन है । इस प्रकार चतुर्थ मंत्रका आशय देखनेके पश्चात् अब अगला मंत्र देखिये—

दुष्टोंकी पश्चात्तापसे शुद्धि ।

पंचम मंत्र— " हे ज्ञानी उपदेशक ! हम तुम्हारा पराक्रम देखेंगे । हे मनुष्योंकी सन्तानों बतलानेवाले ! तुम दुष्टोंको हमारे धर्माका उपदेश करो । तुम्हारे प्रयत्नसे पश्चात्ताप को प्राप्त हुए सब दुष्ट लोग हमारे पास आवें और वैसाही कहें । " ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त प्रकारका सच्चा धर्मोपदेशक त्रिम समय धर्मोपदेश के लिये चलने लगता है, उस समय उसका गौरव बढ़ते हुए लोग कहते हैं कि " हे उपदेशक ! अब तू उपदेश करनेके लिये जा रहा है, हम देखेंगे कि तुम अपने परिशुद्ध सद्गुणधर्मसे कितने लोगोंके हृदयमें पलटा उत्पन्न करते हो और किन्हीं को सत्य धर्मकी दीक्षा देते हो । हमारे तुम्हारे पराक्रमका हमें पता लग जायगा । तुम जाओ, हम तुम्हारा गौरव करते हैं । सत्यधर्मका संदेश सब जनता तक पहुंचाओ । " तब उपदेशकी शान्तिसे तपे हुए और पश्चात्ताप को प्राप्त हुए लोग हमारे अंदर आवें और कहें " कि हमने अब धर्माश्रित पीया है । और अब हम आपके घने हैं । "

" तम, संतम, परितम " ये शब्द पश्चात्ताप के सूचक हैं । तप घटत तपकर शुद्ध होनेका सूचक है । अति तराकर सोना, चाँदी, तावा आदि धातुओंमें शुद्ध करता है अर्थात् उनके मलोंका दूर करता है । इसी प्रकार यदाँका आत्म-जो शरीर धर्मोपदेशक है-वह अपनी शान्तिसे सब दुष्टोंको तपयता है और अच्छी प्रकार उनके मलोंको दूर करता है । छान्दोग्यो यही सिद्धि है । भोगके जीवनकी छोड़कर तपके जीवनमें आना ही धार्मिक बनना है । इस अर्थमें इस मंत्रका " परि-तप " शब्द

बड़े भावका सूचक है । अब छठे मंत्रका भावार्थ देखिये—

धर्मका दूत ।

षष्ठ मंत्र— " हे ज्ञानी पुरुष ! अपना कार्य आरंभ कर । हमारे कार्य के लिये ही तुम्हें भोग किया है । हे उपदेशक ! तू हमारा धार्मिक संदेश पहुंचाने वाला दूत बन कर दुष्टोंको पश्चात्तापसे रखा दे " ॥ ६ ॥

धर्म प्रचारके लिये बाहर जानेवाले उपदेशकी लोग कहते हैं कि— " अब तू अपना धर्म प्रचारका कार्य आरंभ कर दो । बिना कर देशदेशांतरमें जा और वहा सत्यधर्मका प्रचार कर । यही हमारा कार्य है और इसी कार्यके लिये तुम्हें भोग भेजा जाता है, अबधा आगे रखा जाता है । हमारा धार्मिक संदेश जगत्में फैलाना है, इस संदेशको स्थान स्थानमें पहुंचानेवाला दुष्टही तू है । अब जा और धार्मिक संदेशको चारों दिशाओंमें फैला दो और इस समय तक जो लोग अधार्मिक वृत्तिमें रहते हैं, उनकी अपने सद्गुणधर्मद्वारा शुद्ध करो और उनकी अपने पूर्व दुराचारा पूर्ण पश्चात्ताप होने दो । उनके दिलोंमें ऐसा पलटा हो कि जिससे वे अपने पूर्वोक्त स्मरण करके रोने लगें । " इस प्रकार अज्ञाना सुधार करनेके लिये धर्मोपदेशकोंकी भेजा जाता है ।

डाकुओंकी दण्ड ।

इतना धर्मोपदेश होकर भी जो सुधरने नहीं और अपना दुराचार जारी रखेगे अथवा पूर्वोक्त प्रकारके श्रेष्ठ धर्मोपदेशकों पराक्राण्टिक प्रयत्न करनेपर भी जो अपना दुष्ट आचरण नहीं छोड़ते और जनताको योग्य शिक्षा आदिमें अत्यंत बूढ़ देते ही रहेंगे, उनको योग्य दण्ड देना ब्राह्मणका कार्य नहीं, वह पार्व क्षत्रियका है यह आशय अगले मंत्रमें कहा है—

सप्तम मंत्र— " हे धर्मोपदेशक ! तुम्हारे प्रयत्न करनेपर भी दुष्ट डाकु आदि अपने दुराचार छोड़ते नहीं । उनको पोंच कर पहाड़ों और पश्चात्तापक्षेत्रों उनके फिर तप्यारमें फाट दे " ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ धर्मोपदेशक शान्ता धर्मोपदेशका प्रयत्न करें और

अन्योंको भी यह उपदेश मिल सकता है, कि हम भी धार्मिक बननेसे बच सकते हैं, नहीं तो हमारी भी वही अवस्था बनेगी।

ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रयत्नका प्रमाण।

इस सूक्तमें ब्राह्मणके प्रयत्न के लिये छ मन्त्र हैं और एकरी मन्त्रमें क्षत्रियका कठोर दण्ड आगे करनेको सूचित किया है। इससे स्पष्ट है कि कमसे कम छ गुणा प्रयत्न ब्राह्मण अपने मनुष्यदशमे करें, इतने प्रयत्न करनेपरभी यदि वे न सुधरे, कमसे कम छ बार प्रयत्न करनेपर भी न सुधरे छ बार अवसर देने पर भी जो लोग दुष्टता नहीं छोड़ते, उनपर ही क्षत्रियका वज्र प्रहार होता योग्य है। क्योंकि जिसकी जन्मसे ही दुष्टता उरने का अन्वय होना वे एक बारके उपदेशसे पट्ट जायगे अथवा सुधरेगे यह कठिन अथवा अवश्य है। इसलिये भिन्न उपपत्तियोंमें उनकी अधिक अवसर देने चाहिये। इतना करनेपर भी जो नहीं सुधरते उनकी या तो बधन में डालना या गिराछेद करना चाहिये।

ब्राह्मण भी हनन करता है और क्षत्रियभी करता है परन्तु दोनोंके हनन में बड़ा भारी भेद है। पहिले मन्त्र में ब्राह्मण की रीति बताई है और सप्तम मन्त्रमें क्षत्रिय की पद्धति बतायी है। क्षत्रिय की रीति यही है कि लक्ष्य लेकर दुष्टता गला काट डालना, अथवा दुष्टोंकी काराश्रममें बन्धनकर रखना। ब्राह्मण की रीति इससे भिन्न है, ब्राह्मण उपदेश करता है, उपदेश द्वारा धीमाधीन दिलोंको पलटा देता है, उनकी अनुमति लेना देता है, उनके मनकी दुष्टता का नाश करता है। दोनोंका उद्देश्य दुष्टोंकी सन्ध्या कम करने का ही होता है, परन्तु ब्राह्मण दुष्टोंको गुणान्वेष प्रयत्न करता है, हृदय मुक्त बनाता है और दुष्टोंकी सन्ध्या घटाता है। और क्षत्रिय उनकी कमल करके उनकी सन्ध्या पटाता है। इसी लिये ब्राह्मण के प्रयत्न धेनु और क्षत्रियके दग्धरे दक्षके हैं।

वेदमें जहाँ “हनन, दहन, परिताप, विलाप” आदि शब्द आते हैं वहाँ सर्वत्र एकसाही अर्थ लेना उचित नहीं। वे शब्द ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त हुए हैं वा क्षत्रिय के लिये हुए हैं यह देखना चाहिये। हनन से शत्रुकी संख्या घटती है, ब्राह्मण, क्षत्रिय दोनों अपने अपने शत्रुसे हनन करते हैं, परन्तु ऊपर बतायायाही है, कि ब्राह्मण विचार परिवर्तन द्वारा शत्रुका नाश करता है और क्षत्रिय शिरच्छेदादि द्वारा शत्रुको पटाता है। इसी प्रकार “विलाप” भी दो प्रकार का है। क्षत्रिय शत्रुकी कतल करता है उस समय भी शत्रुके लोग विलाप करत हैं और रोते पीटते ही हैं। उसी प्रकार ब्राह्मण धर्मोपदेश द्वारा जिस समय श्रोताओंका हृदयमें मज्जिभाव उत्पन्न करता है उस समय भी वे लोग रोते हैं और आसू बहाते हैं। इन दोनों आसू बहाने में बड़ा भारी भेद है। जो हृद् परिवर्तन ब्राह्मण कर सकता है, वह क्षत्रिय वद्वापि नहीं कर सकता। यही बात “परिताप, शन्ताप” आदिके विषयमें समझनी चाहिये।

इस सूक्तका अर्थ करनेवाले विद्वानोंने इस ब्रह्मक्षत्रिय प्रमाणोंके भेदको न समझने के कारण इन शब्दोंके अर्थोंका बड़ा अनर्थ किया है। इसलिये पाठक इस भेदका पहिले समझें और पश्चात् मन्त्रोंके उपदेश जाननेका प्रयत्न करें। यह बात एकाग्र टीका प्रसार समझमें आगई, तो मन्त्रोंका आशय समझनेमें कोई कठिनाता नहीं होती, परन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके कमल बोध और तीक्ष्ण मार्गोंका भेद यदि ठीक प्रकार समझमें नहीं आया, तो अर्थात् अनर्थ प्रतीत होगा। इसलिये दुष्टोंका सन्ध्या ब्राह्मण किस प्रकार पटाता है और क्षत्रिय किस प्रकार पटाता है, इसी प्रकार ये दोनों शत्रुओंको त्रिप रीतिसे हलते हैं, चलाते हैं और जलाते हैं, यह पाठक अपने विचार से और बड़ा पताये मार्गोंसे ठीक समझें और ऐसे मार्गोंका साधन अपने में।

(८)

(ऋषिः—चातनः । देवता—अग्निः, वृहस्पतिः)

इदं वृषिर्पातुपानान् नृदीर्घैर्नमिषा बहन् । य इदं श्री पुमान्नेरिह म स्तुवतां जनः ॥१॥
अपं स्तुतान आर्गमदिमं स्म प्रति हस्यत । वृहस्पते वरुणं लब्ध्वाप्राप्नोमि वि विष्णवम् ॥२॥
पातुपानम्प गोमप ज्जि प्रजां नयस्य च । नि स्तुतानम्प पातुय परमक्षुपुताचरम् ॥३॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्सु मुहां सत्तामत्रिणीं जातवेदः ।

तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो ज्योषिं शततर्हमग्ने

॥४॥

अर्थ— (नदी केनं ह्य) नदी केन को जैसी खाती है उस प्रकार (इदं हविः) यह दान (यातुधानान् भागहत्) दुष्टों से बड़ा लवे । (यः पुमान्) जो पुरुष अथवा जो स्त्री (इदं अकः) यह पाप करती रही है । (सः जनः) वह मनुष्य तेरी (स्तुवतां) प्रशंसा करे ॥ १ ॥ (स्तुवानः अयं) प्रशंसा करनेवाला यह जाऊ (आगमत्) आया है, (इमे) इसका (स्म प्रति हव्यत) अवश्य स्वागत करो । हे (बृहस्पति) शानी उपदेशक ! इस को (यतो लब्ध्या) वशमें रतकर, हे (अग्नी-पोमी) अग्नि और सोम ! (वि विष्पतं) इसका विशेष निरीक्षण करो ॥ २ ॥ हे (सोमज) सोमपान करनेवाले ! (यातुधानस्य प्रजां) दुष्टों की सन्तान के प्रति (जहि) जा, पहुँच और (च नयस्व) उन्हें लेजा अर्थात् सम्मार्गसे चजा । तथा (स्तुवानस्य) प्रशंसा करनेवालेका (परं उत अवयं) प्रेष्ठ और रनिष्ठ (अग्ने) आगे (नि पातव) नीचे कर दो ॥ ३ ॥ हे (अग्ने जातवेदः) ते अग्नी शानी पुरुष ! (यत्र मुहा) जहाँ कहाँ तुकामें (एषा) इन (अत्रिणीं सतां) भट्टरनेवाले सजनों के (जनिमानि) पुत्रों और संतानों को (वेत्सु) तू जानता है (सान् प्रक्षणा वावृधानः) उनको शानसे बढाता हुआ (यसां शततर्हं जहि) इनके सैनकों को बर्बाद मात्र कर ॥ ४ ॥

यह सूक्त भी पूर्वसूक्त का ही उपदेश विशेष रीतिसे बढाता है। दुष्ट लोगोंकी किस रीतिसे सुधारना योग्य है इसका विचार इस सूक्तमें देखने योग्य है। इस सूक्तमें ब्राह्मण उपदेशक का एक और विशेषण आगमा है वह “बृहस्पतिः” है। इसका अर्थ शानपति प्रसिद्ध है, बृहस्पति देवोंका गुरु ब्राह्मण ही है; इसलिये इस विषयमें शंका ही नहीं है। “सोम” शब्द इसीका वाचक इस सूक्त में है। “सोमोऽस्मार्कं ब्राह्मणानां राजा।” ब्राह्मणोंका मुखिया सोम है, उसी प्रकार बृहस्पति भी प्रेष्ठ शानी ब्राह्मण ही है। पाठक इन शब्दोंकी पूर्ण सूक्तके ब्राह्मण वाचक शब्दोंकी साथ मिलाकर देखें और तबका मिलकर मनन करें, तो उनकी पता लग आयेगा कि धर्मोपदेशक ब्राह्मण किन मुखीने चुक होना चाहिये। अथ प्रमत्तः मन्त्रीका आशय देखिये—

हाँ या पुरुष हों, जो कोई उनमें पाशाचरण करनेवाला हो, वह उपदेश सुनते ही धर्म मावसे पेरित होकर तथा धर्ममें आनेके लिये उत्सुक होकर, धर्मही प्रशंसा करे और अवर्माचरण की निन्दा करे। पाठक ध्यान रखें, कि इदं अकः भाव परिशीलित होनेका यह पहिला लक्षण है। धर्ममें प्रविष्ट होनेके पश्चात् धर्म-संपर्क लोग वचने रित प्रसार आचरण करे ह्य नियमका उप-देश द्वितीय शंभ्रमें देखिये—

नचम्राविष्टका आदर ।

द्वितीय शंभ्र—“यह स्तुति करता हुआ भागया है, इसका स्वागत करो। हे शानी पुरुष ! उनको अपने वशमें रख कर, ब्राह्मण और उनकी मुखिया से उग्र पर ध्यान रखें ॥ ३ ॥”

वर्चःप्राप्ति-सूक्त ।

यह सूक्त “वर्चस्य-गण” का प्रथम सूक्त है । वर्चस्यगणके सूक्तोंमें “तेज संवर्धन, बलसंवर्धन, धनकी प्राप्ति, शरीरकी पुष्टि, समाज या राष्ट्रमें सम्मानप्राप्ति” आदि अनेक विषय होते हैं । वर्चस्यगणमें कई सूक्त हैं, उनका निर्देश आगे उम्मी उम्मी स्थानपर किया जायगा —

(९)

[ऋषिः— अथर्वी । देवता—स्वादयो नानादेवताः]

अस्मिन्वसु वसवो धारयन्त्वन्द्रः पूषा वरुणो मिथ्रो अग्निः ।
 इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥
 अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अमिह्व वा हिरण्यम् ।
 सुपत्नो अस्मदधरे भवन्तुत्तमं नाकुमर्धि रोहयेमम् ॥ २ ॥
 येनन्द्राय समभारः पर्याप्तुत्तमेन द्रक्षणा जातवेदः ।
 तेन स्वमेव इह वर्षयेम संज्ञातानां श्रेष्ठय आ धेलेनम् ॥ ३ ॥
 एषां पुष्टमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यमे ।
 सुपत्नो अस्मदधरे भवन्तुत्तमं नाकुमर्धि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

अर्थ — (अस्मिन्) इन पुरुषमें (वसवः) वसु देवता तथा इन्द्र, पूषा, वरुण, मिथ्र, अग्नि ये देव (वसु) धनको (धारय-
 ण्) धारण करें । आदित्य और विश्वे देव (इमं) इन पुरुषको (उत्तरस्मिन् ज्योतिषि) अग्नि उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥
 हे (देवाः) देवो । (अस्य) इन पुरुषके (प्रदिशि) आदिगों ज्योति, सूर्य, अग्नि और हिरण्य (अस्तु) होवे ।
 (सपत्न्याः) पत्नी (अस्मदधरे) हमारे नीचे (भवन्तु) हों और (इमं) इसको (उत्तमं मार्गं) उत्तम मार्गमें (अग्नि
 रोहय) तुम लक्ष्यो ॥ २ ॥ हे (जातवेदः) शायी उपदेशक । (येन उत्तमेन मन्त्रणा) जिस उत्तम ज्ञानसे इन्द्रके लिये
 (पयोनि समभारः) दुग्धादि रस दिये जाते हैं (तेन) उस उत्तम ज्ञानसे, हे (अमे) तेजस्वी पुरुष । (इमं) हमको (इह)
 यहाँ (वर्षय) बड़ाओ और (धेने) इसको (समागतानां श्रेष्ठये) अपनी जानिमें श्रेष्ठ ज्ञानमें (आ भेदि) स्थापित कर ॥ ३ ॥
 हे (ज्ञाने) तेजस्वी पुरुष । (एषां) इनके मत, (वर्चं) तेज, (रायः पोषं) धनकी शक्ति और चित्त आदिसे (एतं
 आ वदे) मैं प्राप्त करता हूँ । (सपत्न्या) पत्नी हमारे नीचेके स्थानमें रहें और (इमं) इन मनुष्योंसे वजन तुल्यमें (अग्नि रोहय)
 पड़ना दो ॥ ४ ॥

व्यक्तिमें देवताश निवासक शक्तियाँ	समानमें देवता समाश्रित्यशक्ति आठ शक्तियाँ	विश्वमें देवता व्यवहार (आष्ट)
१. दध्नुषादीर रक्षादि धातु गरीक्षा तेज	मातृभूमि जल नदी नद आदि अग्नि विद्युत् आदि	पृथ्वी आप् तेजः उद्योतिः
२. पाण कान अक्षगान प्रकाश	शब्द वायु स्थान औषधि, वनस्पति धान्यादि	वयुः आकाशः सोमः
३. इन्द्रिय गग शान शानतेज उष्टि शानभाव मित्रभाव	साधारण जनता प्राज्ञग, ज्ञानी मनुष्य छात्रि वीर राष्ट्रसोपक अधिकारी जन्मधिकारी	अहः नक्षत्राणि, देवाः महान् इन्द्रः पूषा वरुणः
४. मित्रभाव मागी सातंत्र्य नेत्र, दर्शनशक्ति गम दिम्ब गुण तेज	मित्र जन ह भी उपदेशक स्वतंत्र विचारके लोग सांकेतिक विज्ञान सश विज्ञान, कारीगर धन	मित्रः अग्निः आदित्याः सूर्यः विश्वे देवाः
५. वृष्ट विचार आग्नेय तेजो मय	शत्रु साधनता " " "	हिरण्यं उग्रताः वाक् (स्वर्ग) उत्तमं उद्योतिः मन्यमं " क्षयमं "

इस सूक्तमें प्रारंभमें ही "अस्मिन्" पद है इसका अर्थ "इस मनुष्यमें" ऐसा है । प्रश्न होता है कि किस मनुष्यके उद्देश्यसे यह शब्द यहाँ आया है ? पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध देखनेसे स्पष्टतापूर्वक पता लगता है कि इस शब्दका संबंध पूर्व सूक्तमें वर्णित "नवप्रविष्ट शुद्ध हुए" मनुष्यके सप ही है । जो मनुष्य मनकी वृत्ति बदलनेके कारण अपने धर्ममें प्रविष्ट हुआ है, उसकी सबसे अधिक उन्नति करनेकी इच्छा करना प्रत्येक मनुष्यका आवश्यक कर्तव्यही है । अपने धर्ममें जो धे-छले श्रेष्ठ प्राप्त्य है, वह उसको शीघ्र प्राप्त हो, इस विषयकी इच्छा मनमें धारण करनी चाहिये, अर्थात् उसकी विशेष तेज प्राप्त हो ऐसी इच्छा धरना चाहिये । यद्यपि इस सूक्तका पूर्वा-पर संबंध देखनेसे यह सूक्त नव प्रविष्टकी तेजवृद्धिके लिये है ऐसा प्रतीत होता है; तथापि हर एक मनुष्यकी तेज वृद्धिके आ-मान्य निर्देश भी इसमें है और इस दृष्टिके यह सामान्य सूक्त सब मनुष्यके उपयोगी भी है । पाठक इसका दोनों प्रकारसे विचार करें ।

अब यहाँ पूर्वोक्त मंत्रोंका भावार्थ दिया जाता है और यह भावार्थ देनेके समय व्यक्तिमें जो देवताश हैं उनको संकेती दिया जाता है । पाठक इसकी तुलना पूर्वोक्त कोष्टकके—

उत्पत्तिक मूलमन्त्र ।

प्रथम मंत्र " इस मनुष्यमें जो निवासक शक्तियाँ हैं तथा सात्र वक्त्र, उष्टि, चाति, मित्रता तथा मागी आदिही शक्तियाँ हैं, ये सब शक्तियाँ इसमें धन्यता स्थापित करें । इससे स्वतंत्र विचार और इसकी सब इंद्रियाँ इसको उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ "

" इन्द्रवर्ध " पुलकमें अंशायगात्का वैदिक भाव वर्णन किया है वह इस मंत्रके अन्तर्गत पड़िये । (शाययाय मंडलद्वारा 'काशिका' मूल्य १॥)

अंदर समता और शांति रचना, (५) मनमें मित्रभाव बढाना और ईश्वर भाव कम करना, तथा (६) वाणीकी शक्ति विकसित करना । इन छः शाक्तियोंके बढ जानेसे मनुष्य हरएक प्रकारका धन प्राप्त कर सकता है और उससे अपने आपको धन्य बना सकता है । यहाँ का “ वसु ” शब्द धनवाचक है परंतु यह धन केवल पैसाही नहीं, परंतु यह वह धन है, कि जिससे मनुष्य अपने आपको छेठ पुरुषोंमें धन्य मान सकता है । इस वसुमें सब निवासक शाक्तियोंके विकाससे प्राप्त होनेवाली धन्यता आ जाती है । (१) “ निवासक शाक्ति, (२) क्षात्रतेज, (३) पुष्टि, (४) समता, (५) मित्रभाव, (६) वक्तृत्व, ” इन छः गुणोंकी वृद्धि करनेकी सूचना इस प्रकार प्रथम मंत्रके प्रथमाध्याये दी है और दूसरे अध्याये कहा है कि (७) इसके स्वतंत्र विचार और (८) इसकी इन्द्रिय शक्तियाँ इनको उत्तमोत्तम तेजस्वी स्थानमें पहुँचायें । मनुष्यके स्वतंत्र विचारही मनुष्यकी उठति या गिराति हैं, उसी प्रकार इन्द्रिय स्थापित रहें। तो ही वह संयमी मनुष्य छेठ बनता है अन्यथा इन्द्रियोंके आधीन बनकर दुर्भ्यस्तनी बना हुआ मनुष्य प्रतिदिन हीन होता जाता है । मनुष्यकी निःसंदेह उन्नति करनेका यह अष्टविध साधन प्रथम मंत्रने दिया है । वह हरएक मनुष्यको देखने-योग्य है । अब दूसरा मंत्र देखिये—

विजयके लिये संयम ।

द्वितीय मंत्र—“ हे देवो ! इस मनुष्यकी आशामें तेज, मैत्र, वाणी और धन रहे । हमारे शत्रु नीचे हो जाय और इसको सुखकी उत्तम अवस्था प्राप्त हो ॥ २ ॥ ”

इस मंत्रमें “ (अस्व प्रदिशि सूर्यः अस्तु) इसकी आशामें सूर्य रहे ” यह वाक्य है । पाठक जान सकते हैं कि जिसने भी मनुष्यकी आशामें सूर्य रह ही नहीं सकता, क्योंकि वह मनुष्यकी शक्तिने बाहर है, परन्तु सूर्यका अंश जो शरीरमें नेत्र स्थानमें रहता है और जिसको नेत्र इन्द्रिय कहते हैं वह तो संयमी पुरुषके आधीन रह सकता है । इससे पूर्व बौद्धिकी बात सिद्ध होती है कि व्यक्ति के नियमों के विचार करनेके समय देवताओंके शरीरस्थानीय अंगही लेने चाहिये जैसा कि पहले मंत्रमें किया है और इस मंत्रमें भी करना है ।

तात्पर्य-मनुष्य इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करके अपनी शक्तियोंको अपने आधीन रखे । अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना आत्मविजय प्राप्त करना है । इस प्रकार आत्मावश्यी मनुष्यही शत्रुओंको दबा सकता और उत्तम सुख प्राप्त कर सकता है । यदि जगतमें विजय पाना है, शत्रुओंको दबाता है, तथा उत्तम सुख कमाना है, तो अपनी शक्तियोंका सबसे प्रथम स्थापित करना चाहिये, यह महत्त्वपूर्ण उपदेश यहाँ मिलता है । अब तृतीय मंत्र देखिये—

ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी प्राप्ति ।

तृतीय मंत्र—“ जिस उत्तम ज्ञानसे क्षत्रियको उत्तमोत्तम रस प्राप्त होते हैं, हे धर्मोपदेशक ! उसी उत्तम ज्ञानसे यहाँ इस मनुष्यकी वृद्धि कर और अपनी जातिमें इसे श्रेष्ठता प्राप्त हो ॥ ३ ॥

क्षत्रियोंको, इन्द्रो अथवा राजाको जिस ज्ञानसे उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और जिस ज्ञानसे वह सबेरे अन्न खनता जाता है, वह ज्ञान इस मनुष्यको प्राप्त हो और यह मनुष्य भी वैसाही अपनी जातिमें अथवा अन्न राष्ट्रमें श्रेष्ठ बन । राष्ट्रके हरएक पुरुषको श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करनेके सब साधन पुनः रहने चाहियें । वह मनुष्य ज्ञान प्रवृत्त हो वा उसी जातिमें उत्पन्न हुआ हो । तथा हरएक मनुष्यमें यह महत्त्वकांक्षा होनी चाहिये कि मैं भी उस ज्ञानको प्राप्त करके वैसाही श्रेष्ठ बनूँगा, मैं अपनी जातिका नेता बनूँगा और अपने देशमें श्रेष्ठता प्राप्त करूँगा । यह मंत्रका आग्रह हरएकको नित्य स्वर्गमें रचना उचित है । अब अगला मंत्र देखिये—

असत्यभाषणादि पापोंसे छुटकारा ।

(१०)

(ऋषिः-अथर्वी । देवताः १ असुरः, २-४ वरुणः ।)

अयं देवानामसुरो वि राजन्नि वश्रा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः ।

तत्स्परि व्रक्षणा शार्श्वदानं त्वग्रस्य मन्थोरुद्रिमं नयामि ॥ १ ॥

नर्मस्ते राजन्वरुणाम्भु मन्थवे विश्वं ह्यग्निं निचिकेपि द्रुधम् ।

सहस्रमन्यान्म सुवामि साकं शतं जीवाति सुरदस्तथापम् ॥ २ ॥

यदुवकभानृतं जिह्वया वृजिनं यदृ । राज्ञस्तथा सत्यधर्मणो मुश्यामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥

मुश्यामि त्वा वैश्वानुरादर्णान्महत्स्परि । सज्जातास्तुमेदा यदं मम चापं चिकीदि नः ॥ ४ ॥

अर्थ- (अर्थ) यत् (देवानां असुरः) देवोंकी भी जीवन देनेवाला ईश्वर (नि राजन्नि) प्रधानता है । (हि) क्योंकि (राज्ञः वरुणस्य) राजा वरुण देव अथर्व ईश्वर की (यत्ता) इच्छा (सत्या) श्रद्धा है । (तत्तः परि) इतना होनेपर भी (व्रक्षणा) शान्ति (शार्श्वदानः) शीघ्र बना हुआ मैं (उग्रस्य मन्थोः) प्रबल ईश्वरके गोपथे (हस्ते) हथ मनुष्यके (उग्र मयामि) ऊपर चढ़ाता हूँ ॥ १ ॥ हे (वरुण राजन्) ईश्वर । (ते मन्थवे) तेरे गोपथी (मम भानु) समस्तार होने । दे (उग्र) प्रबल ईश्वर । य (विश्वं द्रुधम्) सब मोहादि पापोंके (निचिकेपि) ठीक प्रकार जानना है । (सहस्रं मन्यान्) हजारों अन्योंके (सान्ते) शाप शाप मैं (प्रमुश्यामि) प्रेरणा करता हूँ । (अर्थ) यह मनुष्य (तव) तेरा बनकर ही (सत्यं दारदः) धी धर्म (जीवति) जीता रह सकता है ॥ २ ॥ हे मनुष्य । (यत्) जो (वृजिनं) अत्यन्त धीर पार वचन (जिह्वया) त्रिशूले (यदु वचनम्) यदुवक तथा सू बोला है, वसन्त तथा (सत्यधर्मो) सत्य धर्मो (सत्यः वरुणात्) राजा वरुण देव ईश्वरके (महं) मैं (त्वा) तुझसे (मुश्यामि) छुड़ाता हूँ ॥ ३ ॥ हे मनुष्य । त्वा तुझसे (महतः वैश्वानुराद् अर्णवान्) बड़े समुद्रने समान मंजीर निधना-यक देवके (परि मुश्यामि) छुड़ाता हूँ । हे (उग्र) धीर । (दृह) यत् (सज्जातान्) अपनी मातृगणोंके (भा यदं) सब कह दे और (नः) हमारा (मम) शान (अप चिकीदि) तु लाल ॥ ४ ॥

पापसे छुटकारा पानेका मार्ग ।

यद्यपि यह सूक्त अति सरल है तथापि पाठकोंके विशेष सरल बोधके लिये यहां थोड़ा सा स्पष्टीकरण किया जाता है ।

इस सूक्तमें पापसे छुटकारा पानेका जो मार्ग बताया है वह निम्नलिखित है—

एक शासक ईश्वर ।

(१) “ देवानां असुरो विराजति ”—सर्ववैदादि देवोंकी विविध शक्ति देनेवाला एक प्रभु ईश्वरही सब जगत्का परम शासक है । इससे अधिक शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं है । (मंत्र १)

(२) “ राजो बरुणस्य वना हि सत्या ”—उस प्रभु ईश्वरका मध्य शासन है । उसकी इच्छा सर्वोपरि है । उसके अपूर्व शासनका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता । (मंत्र १)

(३) “ विश्वं ह्युग्रं निचिकेपि दुग्धम् ”—दे प्रभु ईश्वर ! तू हम सबके पापोंको यथावत् जानता है । अर्थात् कोई मनुष्य अपने पाप उससे छिपा नहीं सकता । क्योंकि वह सर्वज्ञ है इसलिये हम सबके भूरे भले कर्म यह यथावत् उसी समय जानता है । (मंत्र २)

ईश्वरकी सर्वोपरि मानना, सबसे सामर्थ्यशाली वह है यह धारणा रखना और उससे छिपाकर कोई मनुष्य कुछ कर नहीं सकता, यह निश्चित रीतिसे समझना, पापसे बचनेके लिये आशुयक है । पापसे बचानेवाले ये तीन महत्त्वपूर्ण विश्वास इस सूक्तमें कहे हैं, पाठक इनका मनन करें और इनको अपने अंदर स्थिर करें । यही तीन भाव मनुष्यका पापसे बचाव कर सकते हैं ।

ज्ञान और भक्ति ।

मनुष्यको पापसे बचानेवाले ज्ञान और भक्ति ये दो ही हैं । इनका वर्णन इस सूक्तमें निम्नलिखित रीतिसे किया है—

(१) “ ब्रह्मणा शासनात्मनः । ” शासने तीक्ष्ण बना हुआ मनुष्य पापसे बच जाता है और दूसरोंको भी बचाता है । छलिके तथा आत्मिके यथार्थ विज्ञानको “ ब्रह्म ” कहते हैं । यह ब्रह्म अर्थात् छलिविद्या और आत्मविद्याका उत्तम ज्ञान मनुष्यको तीक्ष्ण बनाता है । अर्थात् तेज बनाता है । जिस प्रकार तेज राज शय्यका नाश करता है वसी प्रकार ज्ञानका तेज शत्रु भी अज्ञान पाप आदि शय्यओंका नाश करता है । मनुष्यकी सभी वस्तुतिका यही साधन है । (मंत्र १)

(२) “ ममसे राजन् वरुणान् मन्यते । ”—दे ईश्वर ! तेरे बोधके सामने हम मनन करते हैं, तेरे धामनके सामने हम अपना धिर छुकाते हैं । अपर्ण हम तेरी धरमने

आकर रहते हैं, हम अपने आपको तेरी इच्छामें समर्पित करते हैं । तू ही हमारा तारनेवाला है । तेरे विना हम किसी अन्यको धारण जानेयोग्य समझते नहीं । (मंत्र २)

(३) “ शतं जीवति शरदस्तवायम् । ”—जो सयं जीवित रहेंगा जो तेरा बनेगा । जो परमेश्वरका भक्त बनकर रहेगा उसका नाश कौन कर सकता है ? (मंत्र २)

पाठक इन तीन मंत्रभागोंमें ज्ञान और ईश्वरभक्तिसे पाप-मोचनकी संभावना देख सकते हैं । छलिविद्याके नियमोंको जानकर तदनुकूल आचरण करना, आत्मविद्याकी जानकारी परमात्माको सार्वभौम सत्ताधार मानना, भक्तिसे ईश्वरके सम्मुख नम्र बनना और ईश्वरका भक्त बनकर आनन्दसे उसका होकर रहना यही पापमोचनका सीधा और निश्चित मार्ग है । पाठक इस सूक्तमें यह मार्ग देखें । इस सूक्तमें जिस मार्गसे पापमोचनकी संभावना कही है वह यही मार्ग है और यही निश्चित और सीधा मार्ग है ।

प्रायश्चित्त ।

पापसे बचनेके लिये प्रायश्चित्त भी यही कहा है और वह यही देखनेयोग्य है —

(१) “ प्रथम अपचिकीहि । ”—पूर्वोक्त ज्ञान जानकर अपना उत्तम ज्ञान प्राप्त करना, तथा संक्षेपसे जो नियम ऊपर बताये हैं उनको जानना यह उपातिक निश्चित साधन है । जब इस ज्ञानसे अपने अशुभागोंका पता लगेगा, अपने दुःखाचारका ज्ञान होगा तब पश्चात्तापसे छुट्टि करनेका मार्ग है, वह इस प्रकार है—(मंत्र ४)

(२) “ सज्जालुमेदा वद । ”—हे वीर ! तू अपनी जातिके पुत्रोंके सामने अपने सब अपराध कह दे । यही प्रायश्चित्त है । अपनी जातिके ही पुत्रोंके सम्मुख अपने अपराधोंको व छिपाते हुए कहना, यह बड़ा भारी प्रायश्चित्त है और इसके मनुष्यके मनकी शुद्धि होती है । (मंत्र ४)

ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् या जिस समय पश्चात्ताप हो उस समय अपने सब अपराध अपनी जातिके सम्मुख कहना बड़ा धैर्यका तथा मनकी पवित्रताका ही कार्य है । हर एक मनुष्य इस प्रकार प्रायश्चित्त नहीं कर सकता । प्रायः मनुष्य अपने अपराधोंको छिपानेका ही यत्न करते हैं परंतु जो लोग अपने दोषोंको जनताके सम्मुख कह देते हैं वे शुद्ध बनकर धीप्रदी बने महामा बन जाते हैं ।

इस सूक्तमें “ वरुण ” आदि शब्दों द्वारा परमात्माका वर्णन हुआ है, “ सुभाषि ” आदि शब्दोंसे पापियोंकी पापसे

छुटानेवाला मरौपदेशक का वर्णन है और "इमं" आदि शब्दोंसे पापी मनुष्योंका भी वर्णन हुआ है । प्रमौपदेशक पापियोंको पापसे बचानेका उपदेश परमेश्वरभक्तिका मार्ग बताकर कर रहा है, यह बात हम सूक्तके शब्दोंसे स्पष्ट होती है । अर्थात् प्रमौपदेशक इहाँ मार्गसे स्वयं पापसे बचे और दूसरोंको पापसे बचावे ।

पापी मनुष्य ।

पापी मनुष्य सदलों प्रकारके पाप करता है, परंतु इस मूलतः में कुछ मुख्य पापोंकाही उल्लेख किया है, यह भी यहाँ देखने-योग्य है—

"(१)" विश्वं दुष्टम् ।"—सब श्रेष्ठ अर्थात् सब प्रकारका

घोषा । घोषा देना, काया-वाचा-मनसे विज्ञापना करना, बड़ा पाप है । इसमें बहुतसे पाप आ जाते हैं : (मं० २)

(२) "सदुवचनानृतं जिह्वा वृजितं बहु ।"—जिह्वसे अस्वस्थ तथा पापभावसे युक्त वचन बोलना भी बड़ा पापका कर्म है (मं० ३)

श्रेष्ठ करना और अस्वस्थ बोलना, इन दोनोंमें प्रायः सब पाप समाज्जने हैं । इन पापी मनुष्योंका सुधार पूर्वोक्त रीतिसे ही होना सम्यक् है । प्रमौपदेशक तथा साधारण जन यदि इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनका पापमोचनके विषयमें बहुतही योग्य बोध मिल सकता है ।

यह पापमोचन-अंशरण समाप्त ।

सुख-प्रसूति-मूक्त ।

(११)

[श्रुतिः—अथर्वा । देवता-पूषादया नाना देवताः]

वर्षट् ते पूषस्मिन्सुतोर्व्यमा होता कृणोतु वेधाः ।

सिंहेता नार्युतमजाता वि पर्वाणि जिहतां छतुवा उ ॥ १ ॥

चतस्रो दिवः प्रदिशुश्चतस्रो भूम्पा उत । देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णवन्तु छतवे ॥ २ ॥

सुषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि । अथर्वा छपणे त्वमव त्वं विष्कले सुज ॥ ३ ॥

नेवं मसि न पीवसि नेवं मज्जस्वाहृतम् ।

अवैतु पृश्नि शेवंलं शुनें जराय्वत्तवेज्वं जरायुं पयताम् ॥ ४ ॥

वि तै भिनप्ति मेहनं वि योनिं वि शुवीमिके ।

वि मातरं च पुत्रं च वि कुंमारं जरायुणारं जरायुं पयताम् ॥ ५ ॥

यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पृश्निः ।

एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पुतारं जरायुं पयताम् ॥ ६ ॥

अर्थ—(पूषन्) पौरुष ईश्वर । (ते वर्षट्) तेरे शिरो हव आना आर्जन करते हैं । (आभिः पृश्नी) हम प्रसूति के बार्धक्य प्रवेश होकर वेला । आर्य मन्त्राणां यथा विधाया ईश्वर महावता (कृणोतु) करो । (अतनमाता) निरपद्वैत मातृरीये

जगत् हेनेवाली (गारी) स्त्री (सिंघना) पक्षपाते रहे । तथा अपने (पर्वानि) भांगोंको (स्तुतये उ) सुप्रसूतिके लिये (निजिह्वा) खाले करें ॥ १ ॥ (दिग्) आकाशकी (उत) तथा (भूमा-) भूमि की (पतसः प्रविशः) चारों दिशाओंमें रहनेवाले (देवाः) देवोंके (गर्भं समैरणम्) गर्भ को बनाया, इसलिये वेही (स्तुतये) उसकी सुप्रसूतिके लिये (तं त्रि जुग्युम्बु) उसको प्रकट करें, उसको बाहर खला करें ॥ २ ॥ (सूपा) उतम संतान उत्पन्न करनेवाली माता (व्यूर्णोत्तु) अपने अंगोंको खला करे । दम् (योनि) योनि को (निहापयामसि) खोलते हैं । हे (सूपणे) प्रसूत होनेवाली स्त्री । (त्वं) तू भी (श्रयय) अंदरसे प्रेरणा कर । और हे (विष्कले) वीर स्त्री । (त्वं) तू (अवसृज) बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ (न ह्य न मत्से) नहीं तो गांधर्व, (न पारवि) न चर्षा, और (न ह्य ममसु) न तो मज्जामें बड़े (आहूते) लिपटा है । (प्राप्ते सारले) नरम बेघारके समान (जरायु) जेली (शुने भचवे) कुत्तेके लिये खानेके (भवेत्) नीचे आवे, (जरायु) जेली (अवपद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ४ ॥ (ते मेहनं) तेरे गर्भके मार्गको, (योनि) योनि को तथा (गर्भानिके) दोनों नाडियोंको (त्रि त्रि वि गिनन्ति) विशेष रीतिसे खला करता है । (मातरं पुत्रं प-) माता और पुत्रको (त्रि) अन्न करता है तथा (कुमारं जरायुणा वि) वरुणको जेरीसे अन्न करता है । (जरायु) जेरी (भय पद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ५ ॥ जैसे वायु, जैसे मग्न और जैसे पक्षी (पतन्ति) चलते हैं (एव) इसी प्रकार है (दशमाह्व) दस महिनेवाले गर्भ । तू (जरायुणा साकं) जेरीके साथ (पत) नीचे आ तथा (जरायु अवपद्यताम्) जेरी नीचे गिर जावे ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश । तेरे लिये हम अपना अर्पण करते हैं । इस प्रसूतिके समय सब जगत्का निर्माता सृष्टी हमारा सहायक बन । यह स्त्री भी वक्षतासे रहे और इस समय अपने अंगोंको खला करे ॥ १ ॥ आकाश और भूमि की चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्योदित संपूर्ण देवोंने इस गर्भको बनाया है । और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसको सुप्रपूर्वक गर्भस्थानसे बाहर लायें ॥ २ ॥ स्त्री अब अपने अंग खले करें, सहाय करनेवाली धार्ष्ट्योनि को खोले । हे स्त्री । सृष्टी सर्वसे अंदरसे प्रेरणा कर और मुखसे बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ यह गर्भ मांस, चर्मा या मज्जामें पिपका नहीं होता है । वह पानीमें पर्यापार बननेवाले नरम बेघारके समान अति कोमल धैर्यमें लिपटा हुआ होता है, यह एक धैर्यकी धैर्य एकदम बाहर आवे और वह मांसके साथ जेली कुत्तेको खानेके लिये दा जावे ॥ ४ ॥ योनि, गर्भस्थान और पिछली नाडियोंको डाला किया जावे, प्रसूति होनेकी मातासे क्या अन्न किया जावे और बच्चे जेरी नाड समेत अलग की जावे । मांस समेत सब जेली पूर्णतासे बाहर निकल आवे ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मग्न वेगसे निर्याते गिरता है, जैसे वायु और पक्षी वेगसे आकाशमें चलते हैं उसी प्रकार सृष्टि महिनेमें गर्भ जेरीके साथ गर्भस्थानसे बाहर आवे और जेरी आदि सब नीचे गिर जावे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें सृष्टका कुछ भाग अवशिष्ट न रहे ॥ ६ ॥

प्रसूति प्रकरण ।

इस सूक्ते क्या प्रकरण प्रारंभ हुआ है । यह प्रकरण विशेषतः त्रिपदेके लिये और सामान्यतः सबके लिये विशेष लाभकारी है । विशेषतो प्रसूतिके जितने बच्चे सन्तान पक्षमें हैं उनका दुःख त्रिपदी जानती है । प्रसूतिके समय न्यून कष्ट होना प्रयत्नसे साम्य है । गर्भाधारणसे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भाधारणसे भी पूर्ण समयमें भी जो निमग्न पालन करनीय है, उनका योग्य रीतिसे पालन करनेसे प्रसूतिके कष्ट बहुत घट कर देना संभव है । इस विषयमें आगे बहुत उपदेश आनेवाला है । यहाँ इस सूक्तेमें जितना विषय बताया है, उसको साथ बड़ी बेचिये—

ईशमक्ति ।

परमेश्वरकी भाषिणी मनुष्यकी दुःखोंसे घोर कर सकती है । यद्वत्प्रीतिपुरुष यदि परमेश्वरके उत्तम भक्त हों तो उन्हें परवाशरी त्रियोंकी प्रसूतिके कष्ट न होंगे, यह मतानेके लिये इस सूक्तेके प्रथम भागके पूर्वार्धमें ही सबसे पहिले ईश्वरकी मानस-पूर्वाका वर्णन किया है ।

“ यद्वत् ” शब्द “ इवाहा ” अर्थमें अर्थात् “ आत्मसम-पङ्गु ” के अर्थमें प्रयुक्त होता है । (हे पूज्य । ते यद्वत्) हे ईश्वर । तेरे लिये हम अपने आपको समर्पण कर रहे हैं । तू ही (अर्थमा) अष्ट सज्जनोंका मान करनेवाला अर्थात् दित्तवर्ती है, तू ही (वेधा) सब जगत्का रचयिता और निर्माता है

और रही (होग) सब सुखोंका दाता है । इसलिये हम तेरे आश्रयसे रहते हैं और तेरे लियेही पूर्णतया समर्पित होते हैं ।

यहाँ पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके पुनः प्रसन्नमानसे देखने योग्य हैं । " सब सूर्यादि देवताओंको शक्ति देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासनही सर्वोपरि है । " इत्यादि भाव जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहाँ देखिये । " सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा मध्यस्थता है, और मैं उसकी गोदमें हूँ " इत्यादि भक्तिके भाव जिसके हृदयमें अकृत्रिम प्रेमके भाव रहते हैं, वह मनुष्य विशेष शक्तिसे और आगेवसे युक्त होता है और प्रायः ऐसा मनुष्य सदा आनन्दमें रहता है ।

काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्तिही एक दिव्य औपधि है । कामविहाराका नियमन हुआ तो श्रियोंके प्रसूतिके दुःख भीमें मौल्य कम होगे, क्योंकि कामकी भाँति होनेसेही श्रियाँ अशक्त बनती हैं और अशक्तताके कारण प्रसूतिके बड़ा अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पश्चात्के क्षणदि रोग भी बड़ा देत हैं । इसलिये काममोक्षका नियमन परमेश्वर भाँतिसे कठिना उपदेश हरएक औपदेश यहाँ अवश्य ध्यानमें करना चाहिये ।

देवोंका गर्भमें विकास ।

सूर्यादि देवताएँ अपना अपना अंश गर्भमें रहती हैं, सब देवताओंका अंशभूतार गर्भमें होनेके पश्चात् आत्मा उदमें जाता है । इत्यादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है । [इस विषयमें स्थाप्यायमंजल द्वारा प्रकाशित " प्रज्ञावर्ष " पुस्तकमें " देवोंका अंशभूतार " कीर्ति है विस्तृत लेख अवश्य पढ़िये । वहाँ विविध वेदसूत्रोंद्वारा वह विषय स्पष्ट कर दिया है ।] तात्पर्य गर्भमें अंशभूतारके अनेक देवताएँ रहती हैं और उनका संश्लेष बना देवताओंके हाथ है । भूमि और आकाशकी कारीरिशाओंमें रहनेवाली सब देवताएँ अपने गर्भमें अंशभूतारसे आनर्ह हैं, मानो उनका संमेलन (समीपन) ही गर्भमें हुआ है और उनका आपेक्षाता आत्मा भी उसी गर्भमें है । यह दृढविश्वास गर्भ धारण करनेवाली माताका होना चाहिये । अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने केवल कामोपयोग काही फल नहीं है, परंतु उसमें और अधिक मरकरपूर्ण आत्मा-शक्तिका और देवी शक्तिका संश्लेष है । ऐसा मन्त्र गर्भवती कोने स्थिर रहनेमें गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भकर योग्य भी उत्तम होता है । गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आश्रय किया जाता है । उस समयके मंत्र यह सबसे बड़ा देवोंमें से

१ (अ. ६, भा. अ. १)

उनकी पत्नी लगेगा कि गर्भाधान कामविकारके योगके लिये नहीं है परंतु उषा शक्तियोंकी धारणा के लिये ही है । अस्तु । गर्भिणी स्त्री अपने गर्भमें विषयमें इतना लक्ष्य भव मनमें धारण करे और समझे कि जिस देवताओंके अंश गर्भमें इकट्ठे हुए हैं वेही देवताएँ गर्भका योग्य और सुख प्रसूतिमें अवश्य सहायता देंगी । अर्थात् इस प्रकार देवताओंकी सहायता और परमात्मा का आधार लुके है इसलिये सुते कोई बड़ा नहीं होगा । पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका द्वितीय मंत्र पढ़ें ।

गर्भवती स्त्री ।

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर दृढ़तासे धारण करे । अब गर्भवती स्त्री अपना गृहस्थाश्रममें रहनेवाली स्त्री निर्गुणता विचार करे—

१ गारी-जो गर्भमूर्तिसे (गृणाति) चलती है अर्थात् गर्भ नियमोंसे अपना आचरण करती है, तथा (नर) पुत्रके मार्ग रहती है, वह नारा कहलती है । अर्थात् विवेक गृहस्थाश्रमके नियमोंका पालन करनेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है । (मंत्र १)

२ कृतप्रजाता—(कृत) कृतविविधानुसृत (प्रजाता) प्रजनन करनेसे युक्त । अर्थात् गर्भ-धारण, गर्भ-योग्य और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके सत्य धर्मनियमोंके अनुसृत होते हैं । अनुगामी होना, गर्भ धारणके पश्चात् तीन वर्षके उपान्त अवकाश तक दुध पीना छोड़ दे तात्पर्य अनुगामी होना, इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुतसे प्रसूत होती है । (मंत्र १)

३ ध्या, धृग्या-जिग श्रीको प्रसूतिके फल नहीं होने, अर्थात् जो सुतसे प्रसूत होती है । श्रियोंको योग्य नियमोंके पालन द्वारा यह सुख अपनेमें लाना चाहिये । (मंत्र १)

४ विमृष्टा-धीर स्त्री अर्थात् धैर्यवती स्त्री । श्रियोंको अपने अंदर धैर्य बढावा आवश्यक है । योनेमें बड़ा होने लगे तो चराला नहीं चाहिये । धैर्यसे उनकी धृग्ता पढ़िये । (मंत्र १)

गर्भवती श्रियोंको इन शब्दों द्वारा ज्ञान होनेवाला योग अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि प्रसूतिके लिये इन श्रियोंकी आवश्यकता है ।

गर्भ ।

इस सूक्तमें गर्भका मन्त्र " दत्ता म दत्त " आया है । इसका मन्त्र " दत्ता म दत्त " आया है । यह ६३३ कीर्ति

गर्भका समय बना रहा है। दसवें मासिमें प्रसूतिका ठीक समय है। दसवें मासिमें पूर्व जो प्रसूति होती है, वह गर्भभी अपना अवस्थामें होनेके कारण माताके कष्ट बढ़ाती है। योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपान और गर्भजाव ये सब माताके कष्ट बढ़ाने-वाले हैं और ये सब दुःख गृहस्थाश्रमी स्त्रीके निगमश्रित स्त्रीवत्से ही होते हैं। जो गृहस्थाश्रमी स्त्री अपने योग्य नियमों का पालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंकी सुखसे प्रसूति होता है।

सुख प्रसूतिके लिये आदेश ।

१ स्त्री परदेशकी भाँति करे । (मंत्र १)

अपन गर्भमें दबनाओछा अरावतार हुआ है ऐसा भाव मनमें धारण करे । (मंत्र २)

३ (निष्कृता) दस्तसे अपना व्यवहार करे । (मंत्र १)

४ प्रसूतिके समय (पचासि विजिह्वा) अपने अंगोंको नीचा करे । (मंत्र १)

५ (सुखा व्यूगोष्ठ) सुखप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने स्नानको बाला अपना सुला करे अर्थात् ससत न बनावे । (मंत्र ३)

६ (सुपणे) वे अथवा मुख-प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मन्त्री इत्यादि साफिते भा अंदरसे प्रेरणा करे, तथा मनसे प्रसूतिके अंगोंको प्रेरित करे। यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्री की ही अंदरसे करने चाहिये । (मंत्र ३)

घाईकी सहायता ।

१ प्रसूतिके समय घाई भी सहायता आवश्यक होती है। यह घाई भी प्रसूत होनेकी स्त्रीको सख सुचनाएं देती रहे और धीरे धीरे रहे । " पामेधर तेरा सहायक है और सब दबती सुन्हावे गर्भमें है अतः उनकी भी सहायता सुन्द है "

इत्यादि वाक्योंसे उसका धोरण बढ़ावे ।

२ आवश्यकता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे सुला करे । (मंत्र ३)

३ जेरीके अंदर गर्भ होता है। गर्भके साथ जेरी मान लादि सब बाहर आजाय और कोई उसका पदार्थ माताके गर्भीस्थलमें न रहे जान इस विषयमें घाई दक्षतासे अपना धर्म करे। वह पदार्थ अंदर रहनेसे बहुतही दुःख होता समझ है । (मंत्र ४)

४ प्रसूतिके समय गर्भमार्ग, योनि और पिउले अवयव खुले करने चाहिये। उनको यथायोग्य रीतिसे खुले करे, ठाँकि प्रसूति सुखसे होवे । (मंत्र ५)

५ प्रसूति होतीही माताके पाससे पुत्रकी अलग करके ठसकरका जेरीका चैटन हाँकर जो आवश्यक कार्य कला हो वह सब योग्य रीतिसे करे । (मंत्र ५)

सूचना ।

यह विषय शारीरशास्त्रका है, केवल पांडित्यका नहीं है। इस सूक्तका ध्येयार्थ अर्थ भा शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकरणके अनुसंधान से समझना उचित है। इसलिये जो वैद्य या वास्तव है, जिन्होंने सुख-प्रसूति शास्त्र का विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्रके ज्ञानके सय अच्छा अनुभव भी है, उनकी इस सूक्तका अधिक विचार करना चाहिये। वेही इस सूक्तके " तिखती, विजिह्वा, व्यूगोष्ठ " आदि शब्दोंसे ठीक प्रकार समझते हैं और वेही इस सूक्तकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं।

आज है कि प्रसूति-शास्त्रके अभ्यासी इसका अभ्यास करेंगे और अधिक विद्वेष व्याख्या कर सकेंगे।

[इति द्वितीय अध्यायक समाप्त ।]

श्वासादि-रोग-निवारण-सूक्त ।

(१२)

[ऋषिः—भृग्वंगिराः । देवता—यक्ष्मनाशनम्]

ज॒रायुजः प्रथ॑म उ॒स्रियो वृषा॑ वा॒तंभ्रजा॑ स्त॒नय॑न्नेति वृ॒ष्ट्या ।
 स॒नो मृ॒डाति॑ त॒न्वुः ऋजु॑गो रु॒जन् य एक॑मोर्ज॒स्त्रेधा वि॑चक्रमे ॥ १ ॥
 अ॒ङ्गे-अ॒ङ्गे शोचि॑र्पा शि॒त्रिया॑णं न॒मस्य॑न्त॒स्त्वा ह॒विर्पा वि॑धेम ।
 अ॒ङ्कान्त॑स॒मङ्कान् ह॒विर्पा वि॑धेम पो अ॒ग्रभी॑त्प॒र्वीस्य॑ ग्र॒भीता ॥ २ ॥
 मु॒ञ्च शी॑र्ष॒क्या व॒त क्रा॑स ए॒नं प॑रु॒ष्प॒रुषा॑वि॒वेद्या॒ यो अ॑स्य ।
 यो अ॑भ्र॒जा वा॑त॒जा यश्च शु॒ष्मो व॑न॒स्पती॑न्स॒वतां प॑र्व॒ताश्च ॥ ३ ॥
 यं मे प॑र॒स्मै गात्रा॑य॒ शम॑स्त्व॒वरा॑य मे । यं मे च॒तुर्व्यो अ॒ङ्गेभ्यः॑ श॒मस्तु॑ त॒न्वेद॑म॥ ४ ॥

यह भावार्थ मंत्रोंके अर्थोंके अनुसंधानसे पाठक पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें सूक्तका तात्पर्य आजायगा क्योंकि यह सूक्त सरल और सुप्रसिद्ध है । तथापि पाठकोंके विशेष बोधके लिये यहाँ विशेष बातोंका स्पष्टीकरण किया जाता है । यह " तत्कम-नाशन गण " का सूक्त है अर्थात् रोगादिनाशक भाव इसमें है ।

महत्त्वपूर्ण रूपक ।

सबसे पहले प्रथम मंत्रमें वर्णित महत्त्वपूर्ण रूपक विचार करनेयोग्य है । पूरुसूक्तमें " (जरायुजः दशमास्य पुनः) जेरसे घटित उरगर्भ होनेवाले दशमासतक गर्भमें रहनेवाले पुनः " का वर्णन है । उसके साथ इस सूक्तका संबंध बतानेके लिये इस सूक्तके प्रारम्भमें ही " जरायुजः प्रथमः " ये शब्द आगये हैं । यहाँ पुनःका वर्णन यहाँ महत्त्वपूर्ण रूपकसे किया है । इस रूपमें सूर्य ही " पुनः " है सूर्यके पुनः होनेका वर्णन वेदमें अनेक स्थानमें आगया है । यहाँका यह वर्णन सन्ततम् आनेके लिये पुष्ट निवर्गकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है ।

परंतु यहाँ नूतनोत्पत्ति धालकका वर्णनही करना नहीं है, बल्कि जीवनदाता सूर्यकाही वर्णन अर्थात् सूर्यके जीवन-शोषक रस-रासायन का वर्णन करना है । यह करनेका प्रस्ताव इस प्रकार इस सूक्तके प्रारम्भमें किया है । और इस प्रस्तावसे पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध जोड़ दिया है ।

प्रायः प्रसूतिके समय तथा पश्चात् स्त्रियोंमें अशक्तता आ जाती है और नाना रोगोंकी सम्भावना उत्पन्न होती है । इसलिये इस कष्टको दूर करना सुप्रभतासे किस रीतिसे साध्य होता है, यही बताना सूक्तका मुख्यतया विषय है । मानो इस मियवे आरोग्य का विषय इस सूक्तमें प्रदर्शित किया है ।

आरोग्यका दाता ।

सूर्य ही आरोग्यका दाता है यह बात इस सूक्तके प्रथम मंत्रके उत्तरार्धमें स्पष्ट कही है

स नो मृशति तन्वे ग्रन्थुगो रुजन् । (मंत्र १)

" वह (सूर्य) हमारे शरीरोंकी आरोग्य देता है, सीधा जाने-

संक्षेपसे सूर्यका हमारे आरोग्यसे संबंध । पाठक विचार करें और अधिक ज्ञान प्राप्त करें ।

इस रीतिसे प्रथम मंत्रमें आरोग्यका मूलमंत्र बताया है और उपमासे यह भी कहा है कि जिस प्रकार घरमें बालकहृषी सूर्यका उदय होता है उसी प्रकार विश्वमें दिवस्पुत्र सूर्यका उदय होता है । घर छोटा विश्व है तथा विश्वही बड़ा घर है । इसलिये इस घरके सूर्यका और विश्वके सूर्यका संबंध देखना चाहिये । आरोग्यके लिये तो इस घरके सूर्यका विश्वके साथ संबंध करना चाहिये अर्थात् जहातक हो सके वदातक बालक को घरमें बंद न रखते हुए विश्वसूर्यके खुले प्रकाशमें शनैः शनैः खानेका ध्यान करना चाहिये, जिससे घरका सूर्य भी नारीय और बलवान बन सके ।

सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा ।

आगे द्वितीय मंत्रमें कहा है कि (अंगे अंगे दोतोचिदा स्तिभिर्षाण) शरीरके प्रत्येक अंगमें तैम्रके अंशसे यह सूर्य रहता है, उनको (नमस्यन्तः) नमन करना चाहिये, अर्थात् जलमंश आदर करना चाहिये, सूर्यके तेजसे अपने तेजको बढ़ाना चाहिये । जो लोग घरके अंधेरे कमरोंमें अपने आगची बंद रखते हैं वे निरंतर होते हैं, प'तु जो खली हवामें घूमते हुए सूर्यप्रकाशसे अपना तेज बढ़ाते हैं वे तेजस्वी होते जाते हैं ।

शरीरके प्रत्येक (पर्व) जोड़में यह अंश रहता है, इस सूर्यके अंशसे इस स्थानपर (प्रमाता) अपना अधिकार जमाया है । हाएक अवयवमें इसके (भंजकान्) चिट्ठोंको पटकना चाहिये और (समंजान्) मिले जुले चिट्ठोंको भी परचातना चाहिये । जैसा आँखमें तेजप्रभे सूर्यका निजाल जै-अन्य स्थानोंमें अन्य अंशोंसे है । यह सब जानना चाहिये । और जिस स्थानमें अनारोग्य या बीमारी हुई हो उस स्थानका आरोग्य सूर्य-प्रकाशका उचित रीतिसे प्रयोग करके प्राप्त करना चाहिये । सबकेके मंद सूर्यके प्रकाशमें खली आँखसे सूर्य देख देवसे रहनेसे प्रायः नेत्ररोग दूर होजाते हैं । विशेष नेत्ररोगोंके लिये विशेष सुक्तिसे सूर्य-किरणका प्रयोग करना चाहिये । विशेष अंगके लिये भी विशेष सुक्तिसे । सूर्यकिरणका प्रयोग करना होता है । माध्याह्न आरोग्यके लिये वह विशेष आवश्यक सूर्यकिरणोंसे तपानेमें भी बहुतसा कार्य हो जाता है । इस

सुक्तिमें केवल सूर्य किरणविकिरासे बहुतसे रोग दूर करना समभव है । यदि सहन हो सके इतने जण सूर्य प्रकाशमें नगा शरीर कुछ देरतक तपाना जाय तो भी सर्वसाधारण शरीर की नीरोगता बढ़ती है । शीतकालमें यह करना उत्तम है, परंतु गर्मीके दिनों और उष्ण देशोंमें विचारसे और सुक्तिसे ही इसका प्रयोग करना चाहिये । नहीं तो आरोग्यके स्थानपर अनारोग्य भी होगा इसलिये यह सब अन्याय सुक्तिसे हो बढ़ाना चाहिये ।

तृतीय मंत्रमें (क्षीरक्षयाः) सिरदं, (कासः) खाँसी, (पदः) लीपिस्थानके रोग उक्त प्रकार इटानेकी सूचना दी है । (वातजाः) वात, (शुष्माः) पित्त, (भ्रमजाः) कण्ठके प्रकोपके कारण उत्पन्न हुए ये तथा अन्य रोग भी उक्त सुक्तिसे दूर करनेकी सूचना तृतीय मंत्रमें है । (पर्वतान् सचता) तथा पर्वतों पर रहकर (वनस्पतीन् सचता) उचित बनो-पक्षियोंका उपन करनेका भा उपदेश इसी मंत्रमें है । वनोपनि-योद्धा सेवन दो प्रकारसे होता है, एक वृक्षादिकोंके नीचे रहना और दूसरा योग्य औषधियोंके रसादिना उपयोग करना । पर्वतोंके उच्च शिखरोंपर निवास और वृक्षोंके नीचे बैठना उठना बड़ा आरोग्यदायक है, यह बातें हमने कई रोगिणोंपर सुक्तिसे अमराई है और हमारे अनुमानसे बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है । पाठक भी इसके लाभ उठावें ।

चतुर्थ मंत्रमें सिर आदि उत्तमोत्तम तथा पाद आदि अधोऽधो-ताप्ये सब शरीरका स्वास्थ्य-पूर्वक रीतिसे प्राप्त करनेकी सूचना प्रार्थना मंत्रद्वारा दी है ।

सर्वसाधारण उपाय ।

इस सूत्रमें सर्व साधारणके लिये भी कहा और ध्यान हो सक्य है । सुष्ठु काट वृद्ध है कि जो मने शरीर सूर्यके कि-रणोंमें घूमने है अर्थात् अपने शरीरको सूर्यकिरणोंसे तपाने है उनको चर्म नेत्र, खाँसी, दया तथा शय आदि रोग होनेकी नहीं । ये सब रोग उनको होते हैं कि जो अंगे शरीरपर सूर्य-किरण नहीं लेते, अर्थात् मरदा बर्धनेमें बेडित होकर तप मरानेमें बैठते हैं । जो हमने बोध लेते वे इस सूत्रमें बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं । वेदमें इनीतिसे परवा नामही "सुव" व्याख्या है । यदि पाठक अपने पाशो "सुव" का कारण समझने तो वे उससे बड़ा अधिक देरतक रहेंगे और सूर्यकिरणसे शिथिलस्थान आरोग्य प्राप्त कर सकेंगे ।

अन्तर्यामी ईश्वरको नमन ।

(१३)

[ऋषिः- भृगुवज्रिनाः । देवता-विद्युत्]

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयितृने । नमस्ते अस्त्वहमने येना दृढाशे अस्यसि ॥१॥

नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तर्पः समूहमि । मृदया नस्तन्मयो मयस्तोकेभ्यस्त्वि ॥२॥

प्रवतो नपाद्यत एवास्तु तर्प्यं नमस्ते हृतये तर्पणे च कृष्णः ।

विद्य ते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥

यां त्वां देवा असृजन्त विश्व इपुं कृष्णाना असंनाय धृष्णम् ।

सा नो मृद विदधे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

अर्थ- (विद्युते ते) विशेष प्रकाशमान तुलको (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे । (स्तनयितृने ते नमः) गडगडनेवाले तुलको नमस्कार होवे । (अहमने ते नमः अस्तु) ओं के रूप तुलको नमस्कार होवे । (येना) जिसने तू (दृढाशे अस्यसि) दुःखदायीको दूर फैकता है ॥ १ ॥ है (प्रवतः नपात्) उच्चतासे न गिरानेवाले ! (ते नमः) तेरे लिये नमस्कार होवे । (यतः) कथोंके लिये (सपः समूहसि) तपसं इच्छा करता है । (नः तन्मयः मृदय) हमारे शरीरोंको सुख दे और (तोकेभ्यः मयः कृष्णि) बच्चोंके लिये सुख प्रदान कर ॥ २ ॥ है (प्रवतः मयात्) उच्चतासे न गिरानेवाले । (तर्प्यं पूज्य नमः अस्तु) तुम्हारे लिये मैं नमस्कार होवे । (ते हृतये तर्पणे च नमः कृष्णः) तेरे वज्र और तेजके लिये नमस्कार करते हैं । (यत् ते धाम) ओं तोरा स्थान (परमं गुहा) परम गुहा अर्थात् हृदयस्थी गुहामें है वह हम (विश्व) जानते हैं । उस (समुद्रे अंतः) समुद्रके अंदर (नाभिः निहितासि) तू नाभिस्थ रहा है ॥ ३ ॥ है (देवि देवी ।) (असंनाय) शत्रुपर फैकनेके लिये (धृष्णं इपुं कृष्णाना) बलवान सुदृढ बाण करनेवाले (विश्वे देशाः) सब देश (यां त्वां) जिस तुलको (अस्तुतः) प्रकट करते हैं, (तस्यै ते नमः अस्तु) उस तेरे लिये नमस्कार होवे । (सा) वह तू (विदधे गृणाना) तुझमें प्रशंसित होनेवाली (नः मृद) हमें सुख दे ॥ ४ ॥

भावार्थ- हे देवि । ईश्वरी । तू बिजली आदिमें अपना तेज प्रकट करती है, मेघोंमें गर्जना कराती है और अपनी शक्तियों ओले भी बरगर्जना है, इन सब बातोंसे तू हमारे सब दुःखोंको दूर करती है, इसलिये तुझे हम सब प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥ है उच्चतासे न गिरानेवाला देवी ईश्वरी । तू तपोमय जीवनको हमारे अंदर इच्छा करती है अर्थात् हमारेमें तपःशक्ति बढ़ाती है, उस तपसे हमें तथा हमारी संतानोंमें सुखी कर, तेरे लिये प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ है उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी । हम जानते हैं कि तोरा स्थान हृदयस्थी अंतर्गुहामें है, वहाके समुद्रके अंदर तू मया आभास्वरूप होकर रहती है, इसलिये तोरा तेज और तेरे दुष्ट विघातक शस्त्रास्त्र अथवा तेरी शक्तिके समुल्लस हम सिर झुकाते हैं ॥ ३ ॥ है देवी ईश्वरी । शत्रुको दूर करनेके लिये शस्त्रास्त्र बनानेवाले सब वाजयेच्छु लोग कदा तेरी भांति करते हैं इस कारण तुझमें प्रशंसित होनेवाली तू हमें सुख दे । हम सब तुझे प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

सूक्त की देवता ।

इस सूक्तकी देवता " विद्युत् " है । यद्यपि विद्युत्का अर्थ बिजली है, और इस सूक्तका प्रारंभ मेघस्थानीय विद्युतके वर्णन

से ही हुआ है, तथापि विद्युत् का वर्णन करना मुख्य उद्देश्य इस सूक्तमें नहीं है । जिस प्रकार अन्धान्य सूक्तमें अग्नि आदि देवताओंके मिश्रसे परमात्माका वर्णन होता है, उसी प्रकार विद्युत् रूप की देवताके मिश्रसे ईश्वरका, जगन्माता, आदिमाता

देवोंके रूपमें, परमात्माका ही वर्णन यहाँ हुआ है, इस बातको स्पष्ट व्यक्त करनेवाले इसी सूक्तके निम्न मंत्रभाग यहाँ देखने योग्य हैं —

१ “प्रयतः न-पात्” — “प्रवत्” शब्दका अर्थ उष स्थान है । उष अवस्था, उद्यता आदि भाव इस शब्दसे प्रकट होते हैं । उष्यते न गिरतिवाला यह “प्रवतो न-पात्” का आशय है । परमात्मा ही मनुष्यमात्रको उष अवस्थामें रखनेवाला और बढ़ाते न गिरनेवाला है । (मंत्र २, १)

२ “ते परमं धाम गृहा” — ते परम धाम हृदय की प्रकामें है । हृदयमें आमाका निवास है, वही उष्य परम पवित्र निवास-स्थान है, यह उपनिषद्वादिमें अनन्त बार आया है ।

३ “समुद्रे अन्तः नाभिः निद्रित्वाप्ति ।” — उभी समुद्रमें मध्यभाग है । हृदय गृहमें मानस सरोवर है, समुद्र है, विचारका अथवा भावनाओं का महासागर है । उष्यो नामी उसका आधार स्थान, वही आत्मा है । क्योंकि इस समुद्रकी सब लहरें उसकी ही प्रेरणासे अथवा शक्तिसे उठती हैं और उठी ही शक्तिसे इस समुद्रमें शांति स्थापित होती है ।

४ “यो एव देवा अक्षतन्त्र विभे ।” — जिस मनुष्यको सब देव प्रकट करते हैं । आत्माका देवोंद्वारा प्रकाशित होना वेदमें अनन्त स्थानोंमें स्पष्ट हुआ है । शरीरमें नेत्रादि सब इंद्रियोंद्वारा आमाका प्रकाशन हो रहा है । यदि नेत्रादि इंद्रियाँ न हों, तो आत्माका अस्तित्व भी ज्ञात नहीं हो सकेता । इस प्रकार सब इंद्रियादि देव शरीरमें आमाको प्रकट करते हैं । विषय सूर्यचंद्रादि देव परमात्माकी महिमा प्रकट कर रहे हैं । मनुष्य सनातनमें सब विज्ञान परमेश्वरकी प्रशंसा कर रहे हैं । इस प्रकार सर्वत्र देवोंद्वारा आमा प्रकाशित होता है ।

इस सूक्तके परमात्माकी तैजस शक्तिवादी मुख्यतया वर्णन करना है । और वह वर्णन स्त्रीरूप देवोंके वर्णनद्वारा यहाँ किया है ।

जिस प्रकार मनुष्यका नेत्र देखता है, परंतु अपनी शक्तिसे वह देख नहीं सकता, किंतु हृदयस्थानीय आत्माकी शक्तिसे ही देख सकता है; इसी प्रकार अन्धान्त्र इंद्रियों आत्माकी शक्तिसे प्रेरित होकर ही अपना कार्य करती हैं । जैसी यह बात शरीरमें है, उसी प्रकार जगत्की सूर्यादि देवताएँ तेज फैलाना आदि कार्य अपनी शक्तिसे नहीं कर सकतीं । विश्वम्पती परमात्माकी शक्ति नेत्र ही सूर्य प्रकाशना, विद्युत् क्षमकृती और वज्र गड़ती है । इसलिये सूर्यराशाने, विद्युत्की क्षमकादृश्य अथवा बाजुके वेगसे न केवल इन देवताओंकी शक्तियाँ प्रकट हो रही हैं, परंतु परमात्माकी ही शक्ति प्रकट हो रही है । यह भाव ध्यानमें रखकर यदि पाठक इस सूक्तका विचार करेंगे, तो उनको इस सूक्तमें विद्युत्की क्षमकादृश्य परमात्माका तेज फैल रहा है वही भाव प्रिय होगा । इसी रीतिसे इस सूक्त का विचार करना चाहिये ।

प्रथम मंत्रमें विद्युत्की क्षमकादृश्य, मेघोंकी प्रचंड गर्जना, मेघोंसे बरसनेकी शक्ति अथवा जलकी छुट्टे आदिद्वारा परमात्माका प्रचंड कार्य देवता उचित है । इसीसे परमात्मा प्राणिमात्रके दुःख दूर करता है । शरीरमें अन्न और जल प्राप्त होनेके कारण प्राणियोंमें अनन्त सुख दूर हो रहे हैं । यही परमात्माकी कृपा है ।

परमधाम ।

तृतीय मंत्रमें परमेश्वरके परम धामका पता दिया है । परमेश्वरका परम धाम हरएक के हृदयमें है, विनोदः भूके हृदयमें ही है । परमेश्वरके भक्त ही उस धामको जानते हैं और वर्णन कर सकते हैं । यही स्थान जानना और इसका अनुभव लेना मनुष्यका साध्य है ।

मनुष्य मनुष्यके अंदर गिर पड़ा है, इस समुद्र की लहरें यही मारी लहरा रही हैं, प्रबल वायु चल रहा है, धूआधार मेघ बरस रहे हैं, बिजलियाँ चमक रही हैं, और वह मनुष्य ऐसे प्रशुब्ध समुद्रमें सहायताके लिये पुकार रहा है । उसका ख्याल है, कि सहायता बाहरसे आनेवाली है । यही मनुष्यका भ्रम है, यही अज्ञान है और यही कमजोरी है ।

यह तृतीय मंत्र स्पष्ट शब्दोंसे कह रहा है, कि उस प्रशुब्ध समुद्रका केन्द्र यही परमात्मा है और वह भूके हृदयमें विराजता है । हे भक्त ! यदि तू सबकुछ उसकी सहायताके लिये पुकार रहा है तो अपने हृदयमेंही उसे हृदयेष्टा यत्न कर, यही उद्घाटन परम धाम है । और वहीही वह अपने वैभवसे प्रकाश रहा है ।

पाठको । आप यह ध्यानमें रखिये कि आपमेंसे हरएक के हृदयमें वह आत्मज्योति है । यही सब उन्नति की सहायक शक्ति है । आप उसे पकड़ लीजिये, तो आपकी उन्नति निःसंदेह हो जायगी । सब जगत् अदरसे बड़ रहा है, बाहरसे नहीं । आपकी उन्नतिही ही यही नियम है ।

युद्धमें सहायता ।

युद्धके समय, शत्रुका हमला होनेके प्रसंगमें, इस्के समयमें



कुलवधू-सूक्त

[कविः— भृगुहस्ताः । देवता-यमः ।]

(१४)

मर्गमस्या पर्ये आदिष्यपि युष्वादिष्य सज्जम् । महायुष्म इह पर्येतो ज्योक् पिब्व्याताम् ॥१॥
एषा ते राजन्मन्त्र्या वृध्निं पूरतां यमः । सा मातृपुष्पनी गृहेऽष्टो आतुरयो विनः ॥२॥
एषा मे कुन्पारंजिताम् तु पारं दपति । ज्योक् पिब्व्याताम् आ ज्योर्णः समोप्याव ॥३॥
अतिरक्त्य मे घृष्टता कद्वपस्पृश मयस्य च । अन्तःक्रोशमिषं ज्ञामयोऽपि नद्यामि ते मर्गम् ॥४॥

इस परमात्माकी सहायता सब चाहते हैं । मरण, दुःख आदिके कारण मनुष्य परमात्माकी खोज करते हैं । इसीलिये बड़े सन्तुष्ट दुःखको स्वीकारते हैं और अन्धोंको सुख देते हैं । यही दुःखका महत्त्व है ।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है, कि “ सब देव उसी प्रकट करते हैं । ” इसीका स्पष्टीकरण इसमें पूर्व किया जा चुका है । “ युद्धमें अपनी परीक्षा या स्तुति प्रार्थना होती है ” इसका भी कारण स्पष्टापूर्वक हमने देखा है । यह सब इसलिये करते हैं कि “ शत्रुकी दूर भृगुनेके लिये प्रबल शक्ति प्राप्त हो । ” जो परमात्माके सब भक्त होते हैं, या तो उनके सन्मुख कोई शत्रु नहीं उठ सकता, अथवा जो उनकी शत्रुता करता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है । अर्थात् परमेश्वर भाँझीही एक बड़ी भारी शक्ति है, जो संशय शत्रुओंका नाश कर सकती है ।

नमन ।

इस चार मंत्रोंके मूलमें परमेश्वरकी सात बार नमन किया है, अर्थात् यहका अनेक बारका नमन विद्वत् कर रहा है, कि परमेश्वरकी सार्वभौम सत्ताके सामने सिर झुकाना, उससे सर्वत्र उपस्थित समझना, उसीसे सर्वतोपरी समझना मनुष्यकी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है । उसकी छोड़कर किसी दूसरेकी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है । “ तुभ्यं एव नमोऽस्तु ” (मंत्र १) वह मंत्रभाष्य देखने योग्य है । “ मैं तुझे ही नमन करता हूँ ” हेरेसे बिना किसी अन्यकी उपासना मैं नहीं करता, हे ईश्वर ! तेरे सामने ही मैं सिर झुकाता हूँ । मुझे अनुशीलन कर और हतार्थ कर । इस सूक्तमें सर्वोत्कृष्ट उपासना कही है, पाठक इसका उपयोग उपासनाके समय कर सकते हैं ।

अर्थ—(पृक्षाय अपि सजं हव) वृक्षसे जिस प्रकार फूलोंकी माला लेते हैं, उस प्रकार (अस्याः भगं वर्यः आदिपि) इस कन्याका ऐश्वर्य और तेज में स्वीकारता हूं । (महादुग्धः पर्वतः हव) बड़े जटवाले पर्वतके समान स्थितासे यह कन्या (पित्र्यु ज्योक् आस्तां) मातापिताके घर बहुत समयतक रहे ॥ १ ॥ हे (यम राजन्) नियमपालन करनेवाले स्वामिन् ! (पृषा कन्या) यह कन्या (ते वधूः) तेरी वधू होकर (निषूयतां) व्यवहार करे । (अथो) अथवा (सा) वह माताके, भाईके (अपो) किंवा पिताके (गृहे बध्यताम्) घरमें रहे ॥ २ ॥ हे (राजन्) हे स्वामिन् ! (पृषा) यह कन्या (ते कुल-या) तेरे कुलका पालन करनेवाली है । (तां) उसको (उ ते परिदृष्यसि) तेरे लिये देखते हैं । यह (ज्योक्) उस समयतक (पित्र्यु आस्तां) मातापिताके घरमें निवास करे (आ शीर्ष्णः समोप्यात्) जबतक सिर न सनाया जाये ॥ २ ॥ (आसितस्य) बंधन रहित, (कश्यपस्य) द्रष्टा (च) और (भयस्य) प्राण साधन करनेवाले (ते) तेरे (प्रहृष्या) ज्ञानके साथ मैं [ते भगं अपि नमामि] तेरे ऐश्वर्यको बांधता हूं, [जामयः संतः कोतं हव] क्षिया अपनी पितारीको जैसे बांधती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ [१] वृक्षसे फूल और पत्ते निकाल कर जैसी माला बनाकर लेग पड़ते हैं उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज में स्वीकारता हूं और उसने अपने आरको सजाना चाइता हूं । जिस प्रकार बड़ी जटवाला पर्वत अपने ही आधारपर स्थिर रहता है; उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निबर होकर देरतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥ [२] हे नियमपालक पति ! यह हमारी कन्या तेरी वधू होकर नियमपूर्वक व्यवहार करे । जिस समय वह आपके घर न रहेगी उस समय वह पिता, माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥ हे पति ! यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पण करते हैं । जबतक इसका भिर सजाने का समय न आवे तबतक यह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥ बंधनरहित, द्रष्टा और प्राणोंको स्वाधीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका संबंध मैं करता हूं । जिस प्रकार क्षिया अपने जेवर संभूक्त बंद रखती हैं, उस प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

पहला प्रस्ताव ।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं । पहले मंत्रमें मावी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है । पति कन्याके रूपको और तेजको पर्वत बरता है और उस तेजका स्वीकार करना चाहता है । इस विषयमें मंत्रका रूपक अतिस्पष्ट है—

“वृक्षमस्त्वित्यौसे पत्ते फूल और मंजरियां लेकर लोहा माला बनाते हैं, और उस मालाको गलेमें धारण करते हैं । इस प्रकार यह कन्या सुगंधित फूलोंवाली बांधी है, इसके फूल और पत्ते (मुखकमल और हृत्पद्म) अथवा इसका सौंदर्य और तेज में लेता हूं और उससे मैं सुबोधित होना चाहता हूं । नर्पात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाश्रम करनेकी इच्छा करता हूं । जैसा पर्वत अपने विशाल आधारपर रहता है, उस प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुदृढ आधार-पर रहे । नर्पात् मातापिताओंसे सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और पक्षाय मेरे (पतिके) घर आजाये ।”

यह भाव प्रथम मंत्रका है । इसमें मावी पतिका प्रथम प्रस्ताव है । मावी पति कन्याका सौंदर्य और तेज पर्वत बरता है और

उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता है । नर्पात् मावी पति कन्याकी प्रार्थना उसके माता पिताके पास करता है । और साथ यह भी ब्रूता है कि, कन्या कुछ समयतक माता-पिताके घर ही रहे अर्थात् योग्य समय आनेतक कन्या माता-पिताके घर रहे, तत्पश्चात् पतिके घर आवे । योग्य समय की मर्यादा आगे तृतीय मंत्रमें कही जायगी ।

इस मंत्रके विचारसे पता लगता है कि, पुदय अपनी सद्गुणवैचारिकी को पसंद करता है । पुदय अपनी रति के अनुसार कन्याको चुनता है और अपना मानस कन्याके मातापिताओंसे निवेदन करता है । कन्याके मातापिता इस प्रस्ताव का विचार करते हैं और मावी पतिकी योग्य उत्तर देते हैं ।

परंतु भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकोंका ही भाग है । इससे अनुमान होता है कि, कन्याकी उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिको है ।

तसि मन्त्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम [ते तां परि दूषयि] तेरेलिये इस कन्याको समर्पण करते हैं ।” वह मन्त्रभाग स्पष्ट बता रहा है कि, कन्या इस विषयमें परतन्त्र है । मन्त्रमें दो बार आया है कि “ कन्या पिता माता अथवा माईके घरमें रहे” अथवा अगे जाकर हम कद सरते हैं । क विवाह होनेपर वह पतिके घर रहे । परन्तु वह अभी स्वतन्त्रतासे न रहे ।

जिस प्रकार दूधका आधार तसही जडे हैं, अथवा पर्वतका आधार उसी अति विस्तृत धुनिपाद है, उसी प्रकार कन्याका पहला आधार मात पिता अथवा माई है, और पश्चात्तका आधार पति ही है । इससे भिन्न किसी अन्यथा आधार छीको लेना अचित नहीं है ।

अर्थ यह लेना योग्य है ।) राजा शब्दका अर्थ “ प्रकृतिवा रंजन करनेवाला । ” गृहस्थधर्ममें धर्मपत्नी पुरुष की प्रकृति ही है । उस धर्मपत्नीका संतोष बढ़ानेवाला ।

३ असित — (अ-सितः अशुद्धः) संघनरहित । अर्थात् जिसका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है । गुलामीके भाव जिसके मनमें नहीं है ।

४ करयः—(पदयः) देखनेवाला । अपनी परिस्थितिसे उत्तम रीतिसे जाननेवाला और अपने कर्तव्यको ठीक प्रकार समझनेवाला ।

५ गयः—(प्रागवल्युक्तः) प्रागामादि योगसाधनद्वारा जिसने अपने प्राणोंका बल बढ़ाया है ।

६ ब्रह्मण्य युक्तः—ज्ञानसे युक्त । ज्ञानी ।

ये छः शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं ।

पाठक वर परीक्षाके विषयमें इन बातोंका ध्यान रखें । अब वधू परीक्षा करनेके नियम देखिये—

वधू-परीक्षा ।

इस सूक्तमें वधूपरीक्षाके मित्रलिखित मंत्र मांग हैं—

१ कन्या— [कननीया] कन्या ऐसी हो, कि जिसकी देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो । रूप तेज, अवयवोंकी सुन्दरता, स्वच्छता, ज्ञान आदि सब बातें, जिससे देखनेवाले के मनमें प्रेम उत्पन्न होता हो, इस शब्दसे ज्ञात हो जाती है ।

२ वधू— [उद्यते पतिवर्द्ध] जो पतिके घर जाकर रहना पसंद करती है । जो पतिके घरकी ही अपना समाधि घर मानती है ।

३ कुलपा-कुलका पालन करनेवाली । पितार के तथा पतिके कुलीन सभाषाओंका पालन करनेवाली । जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका पना बढ़ाती है ।

४ से [पत्युः] भगवत्—धर्मपत्नी ऐसी होगी चाहिये, कि जो पतिके भाग्य बढ़ावे । जिससे पतिके धन्यता अनुभव हो ।

५ पितृषु आस्तात्—विवाहके पूर्व भयवा आपरकालमें मातापिता भयवा भा, इनके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली । किता अश्वके घर जाकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये ।

६ वृक्षात् छाह—वृक्षसे पुष्पमालाके समान कन्या हो, पितारके कुलकी श्रद्धाके पुष्पमालारूप कन्या सुगन्धित करे ।

ये छ. मंत्रमांग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं । पाठक इनका उत्तम विचार करें और इन उपदेशोंके अनुकूल कन्याकी परीक्षा करें ।

कन्याके गुणधर्म ।

कन्या मुख्य तथा वैजस्वनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रहनेवाली हो, दोनों कुलोंका पना अपने सदाचरणसे बढ़ानेवाली हो, पतिका भाग्य बढ़ानेवाली, जीवनके पूर्व पतिके घरमें तथा जीवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा पुष्पमालाके समान अपने कुलकी शोभा बढ़ानेवाली हो । इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसकीही पसंद करना योग्य है ।

पति जो कीटी, निस्तेज, दुर्बली, पतिके घर जानेकी इच्छा न करनेवाली, दुष्टचारीणी, पतिके भाग्यको घटानेवाली, तथा

दोषयुक्त हो, वह कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है ।

मंगनीका समय ।

इस सूक्तसे विवाह के समयका ठीक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसका शापक कोई प्रमाण नहीं है । "कन्या सिरसज्जानेके समयके पूर्व माताके घर देरतक रहे" इस तृतीय मंत्रके कथनसे मंगनीका समय अनुमान होनके पूर्व कुछ वर्ष-अधिकसे अधिक एक से वर्ष-तेरा संभव है । तथापि वधूपरीक्षाके जो छः लक्षण उद्घाटन करने हैं, वे लक्षण स्पष्टतया व्यक्त होनेके लिये शीघ्र दशाकी प्राप्तिकी अवश्य आवश्यकता है । "पतिके घर जानेकी कन्या" जिस अवस्थामें कन्याके मनमें माता है वह अवस्था मंगनीकी प्रतीत होती है । ये छ शब्द अच्छी, प्रौढ, प्रबुद्ध, कर्तव्य उपवर, कन्याकी अवस्था बना रहे हैं । पाठक सब शब्दोंका विचार अच्छी प्रकार करेंगे, तो उनको कन्या की निज आयुमें मंगनी होगी चाहिये इस विषयका निश्चय हो सकता है ।

भावी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोक्त लक्षणोंका स्व विचार करके भावी पतिके प्रस्तावका स्वीकार या अस्वीकार करें । इस सूक्तमें वरके मातापिताको तथा कन्याके अपना मत देनेका आधिकार है ऐसा माननेके लिये एक भी प्रमाण नहीं है । यह बात यदि किसी अन्य सूक्तमें भागे मिल जायगी, तो उस समय ही जायगी ।

सिरकी सज्जवट ।

तृतीय मंत्रमें कहा है "उद्योह पितृशालाया का तीर्थाः समोप्याह ।" (देरतक मातापितारके घरमें कन्या रहे, जवतक सिर सज्जानेका समय आजावे ।) यहां एक बात करना आवश्यक है, कि जिन समय स्त्री ऋतुमती गति है, उस समय उसको "पुण्यवती" कहते हैं । पुण्यवतीका अर्थ फूलोंसे अपने आंगको सज्जाने योग्य । प्रथम अंगदेन प्रथम ऋतु-प्राप्ति भयवा प्रथम पुण्यवती होते । उनका पूजाया सज्जानेकी तथा विशेषतः उसका गिर पूजने सज्जानेकी प्रथा भारतीयमें इस समय से ही है । मैसूर और मराठों और तो पहले यन्नीयानोंके प्रसंगके लिये मैसूरों द्वारा ही हून् इन पुण्यवती स्त्रियोंका सज्जाने के लिये लाये जाते हैं । मुंभैमें भी कई जातिवासे या प्रजा है । अन्य जातिवासे कम है, परंतु सिममें कुछ पारनेवा रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विद्ये है । यह रिवाज प्रतिदिन कम हो रहा है । एक भवभावक कारण और दूसरा बलाहके अभाव के कारण यह रिवाज मूल हो रहा है ।

वनी लोग इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फूल बनाते हैं और पुष्पवती स्त्रीके चतुर्थ दिनमें उसका शिर बहुत सजाते हैं । जिन प्रांतोंमें घूंघट निकालनेका रिवाज है, उन प्रांतोंमें यह रिवाज कम है ऐसा हमारा ख्याल है, परंतु सच्ची बात बड़ा के लोग ही जान सकते हैं । इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि घूंघटकी प्रथा अवैदिक कारणोंसे हमारे समाजमें सुस गई है ।

मंगनीके पश्चात् विवाह ।

इस सूक्तके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मंगनीके पश्चात् विवाह का समय बहुत दूर का नहीं है । प्रथम मंत्रमें घरसे पहला प्रस्ताव अर्थात् मंगनीका प्रस्ताव हुआ है । और द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें ही कन्याके अर्पण का विषय आगया है । देखिये—

१ पृथा कन्या ते वधूः निबृषताम्—यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बनकर निःशेष व्यवहार करे । तथा—

२ पृथा [कन्या] ते कुलपा, हां स ते परिदृष्टसि—

यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं ।

३ ते भगं अपिनद्यामि—तेरा भाग्य [इस कन्या के बाप] बांघता हूँ, अर्थात् इससे तू अलग न हो ।

ये मंत्रमात्र स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीका स्वीकार होनेके पश्चात् धीप्र ही विवाहका समय होता है । यद्यपि इसमें समय का साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि [१] मंगनी, [२] कन्यादान की संमति, [३] शिर सजानेके समयतक अर्थात् पुष्पवती होनेतक कन्याके पितृघरमें निवास का विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनी के पश्चात् विवाह होनेके बाद क्रतुमती और पुष्पवती होनेके मंतर कन्याका पातेके घर निवास होनेका क्रम दिखाई देगा है । पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें । यह विषय अन्यान्य सूक्तोंके साथ संबंधित है, इसलिये इस विवाह-प्रकरणके सूक्त जहां जहां आनेगे वहां वहां इसके साथ संबंध देखकर ही सब बातोंका निर्णय होगा । पाठक भी इस विषयमें अपने विचारों की सहायता देंगे, तो अधिक निर्दोष निश्चय होता संभव है ।

संगठन-महायज्ञ-सूक्त ।

[ऋषिः- अथर्व । देवता-सिंधुः]

(१५)

सं सं संवन्तु सिन्धवुः सं वाताः सं पृथुजिणः ।

इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुपन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि

॥१॥

इहैव हवुमा यात म इह संस्रावणा जुतेमं वर्धयथा गिरः ।

इहेतु सर्वो यः पृथुरस्मिन् तिष्ठतु या रुचिः ॥२॥

ये नृदीनां संस्रवन्त्युत्सांसः सदमधिवाः । तेर्मिं सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥३॥

ये मरिष्यः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च । तेर्मिं सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥४॥

अर्थ— [सिंधवः] नदियां [सं सं संवन्तु] उत्तम रीति से मिलकर बढ़ती रहें, [वाताः सं] वायु उत्तम रीतिसे मिलकर बढ़ते रहें, [पृथुजिण सं] पृथी या उत्तम गतिसे मिलकर बढ़ते रहें । इसी प्रकार (प्रदिवः) उत्तम दिव्य, जन (मे इमं यज्ञ) मेरे इस यज्ञ (जुपन्तां) सेवन करें, क्योंकि मैं (संस्राव्येण हविषा) संगठनके अर्पण (नृदीनां) क्षत कर रहा हूँ ॥ १ ॥ (इह यज्ञ) यहाँ ही [मे वर्धनं] मेरे यज्ञके प्रति (आयात्र) आओ

(उत्त) और हे (संस्त्रावणाः) संगठन करनेवाले [गिरः] वक्ताओ । [इमं वर्षयत] इस संगठनको बढ़ाओ । [यः पशुः] जो सब पशुभाव है वह (इह पशु) यहाँ आवे और (भस्मिन्) इसमें (या रयिः) जो संपाति है, वह (विष्टतु) रहे ॥ २ ॥ (नदीनां) नदियोंके जो (अस्तिताः उस्सासः) अक्षय स्रोत इस (सद्रं) संगठन स्थानमें (संस्त्रवन्ति) बढ़ रहे हैं, (तेभिः से सर्वैः संस्त्रावैः) उन मेरे सब स्रोतोंसे हम सब (धनं) धन (संस्त्राययामसि) इकट्ठा करते हैं ॥ ३ ॥ (ये) जो (सर्पिणः) घीकी (क्षीरस्य) दूधकी (च ददकस्य) और जलकी धाराएँ (संस्त्रवन्ति) बढ़ रही हैं, (तेभिः से सर्वैः संस्त्रावैः) उन सब धाराओंसे हम (धनं संस्त्राययामसि) धन इकट्ठा करते हैं ॥ ४ ॥

• मावार्थ-नदियाँ मिलकर बढ़ती हैं, वायु मिलकर बढ़ते हैं, पक्षी भी मिलकर बढ़ते हैं, उस प्रकार दिव्य जन भी इस मेरे यज्ञमें मिल जुलकर संमिलित हों, क्योंकि मैं संगठनके बढानेवाले अर्षणसे ही यह संगठनका मदायज्ञ कर रहा हूँ ॥ १ ॥ बाँधे मेरे इस संगठनके मदायज्ञमें आज्ञाओं और हे संगठनके साधक वक्ता लोगो । तुम अपने उत्तम संगठन बढानेवाले वस्तुओंसे इस संगठन मदायज्ञको फैला दो । जो हम सबमें पशुभाव हो, वह यहाँ इस यज्ञमें आवे और हम सबमें धन्यताका भाव बिखरलतक निवास करे ॥ २ ॥ जो नदियोंके अक्षय स्रोत इस संगठन मदायज्ञमें बढ़ रहे हैं उन सब स्रोतोंसे हम अपना धन संगठन-द्वारा बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ क्या घी, क्या दूध और क्या जलकी जो धाराएँ हमारे पास बढ़ रही हैं, उन सब धाराओंसे हम अपना धन इस संगठनद्वारा बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥

संगठनसे शक्तिकी वृद्धि ।

यह संगठन मदायज्ञका सूत्र है । इसके प्रथम अंशमें संगठनसे शक्ति बढ़नेका वर्णन है, यह संगठन करनेवालोंको देखना और उसपर सब विचार करना चाहिये । देखिये—

१ सिंघवः—नदियाँ । जो जल बढ़ती हैं उसको स्रोत कहते हैं । इस प्रकारके सैकड़ों और हजारों स्रोत सब इकट्ठे होते हैं और अपना भेदभाव छोड़कर एकरूप होकर बढ़ते हैं, सब उसका नाम “नदी” होता है । नदी भी जिस समय महा-पूरसे बढ़ती है, उस समय विविध छोटे स्रोतोंके एकरूप होकर बढ़नेके कारण जो महाशक्ति प्रकट होती है, वह अपूर्व ही शक्ति है । यह नदी इस समय बड़े बड़े श्रृंखोंके सखाद देती है, जो उसके सामने आजाते हैं उनको भी अपने साथ यहा देती है । बड़े शूष, बड़े मकान, बड़े पक्षी भी मदानदीके बेगके सामने लुच्छ हो जाते हैं । यह बेग कहाँसे आता है ?

पाठक विचार करने को पता लग जायगा कि यह बेग छोटे स्रोतमें नहीं होता, परंतु जब अनंत छोटे स्रोत एकरूप होकर और अपना भेदभाव गहकर एकरूपसे बढ़ने लगते हैं; अर्थात् अनंत छोटे स्रोत अपना संगठन करते हैं, तभी उनमें वह अभूतपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है । इस प्रकार नदियाँ मनुष्योंके “संगठन द्वारा अपनी शक्ति बढानेका उपदेश” दे रही हैं ।

२ वायुः—वायु भी इसी प्रकार मनुष्योंको संगठनक उपदेश दे रहे हैं । छोटे छोटे वायु जिस समय बढ़ते हैं उस

समय शूषके पते भी नहीं हिलते, परंतु बड़ी सब रक होकर प्रचंड बेगमें जब बढ़ने लगते हैं तब मदारूह दूट जाते हैं और मनुष्य भी डर जाते हैं । पाठक इन संज्ञावातोंसे भी संगठन-के बलका उपदेश ले सकते हैं । इस प्रकार वायु भी संगठनका उपदेश मनुष्योंको दे रहा है ।

३ पक्षी—पक्षी भी संगठन करते हैं । जब एकएक पक्षी होता है तो उनकी दूसरा कोई भी मार सकता है, परंतु जब सैकड़ों और हजारों चिरियोंएक कलापमें रहकर अपना संगठन करती हैं, तब उनकी शक्ति बड़ी मारी होती है । इस प्रकारके पक्षियोंके कलाप बड़े बड़े शेरोंका पान अन्य समयमें प्राप्त करके खा जाते हैं । यह संगठनका सामर्थ्य पाठक देखें और अपना अंग बनाकर अपना ऐश्वर्य बढावें । पक्षी यह उपदेश मनुष्योंको अपने आवाजोंसे दे रहे हैं ।

इस प्रकार पहिले अंशमें ये तीन उदाहरण मनुष्योंके संशुद्ध रहकर संगठनका महत्त्व बताया है । यदि पाठक इन उदाहरणोंका उपाय मनन करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि अपना संगठन किस प्रकार किया जाय ।

यज्ञमें संगतिकरण ।

“यज्ञमें संगठन होय ही है । कोई यज्ञ ऐसा नहीं है कि जिसमें संगतिकरण न हो । दहका मुख बर्य संगठन ही है । प्रथम अंशके श्रितोनाथमें इहंभिसे कहा है, कि यदिगे, वायुओंमें और पक्षियोंमें संगठनकी शक्ति अनुभव करके उप-कार करने संगठन करनेके उद्योग हमारे समामके जगता

हमारे देश, जाति या राष्ट्रके लोग, इस संगठन महात्म्यसमेत सम्मिलित हों। एक स्थानपर जमा होना पहिली सीढ़ी है। इसके पश्चात् परस्पर समर्पण करनेसे संगठनकी शक्ति बढने लगती है। हवनमें सात प्रकारकी समिधाएँ एकत्रित होती हैं और अग्निद्वारा प्रकाश करती हैं। यदि एक एक समिधा अलग होगी तो अग्नि बुझ जायगा। इसी प्रकार जातिके सब लोग संगठित होनेसे उस जातिका वन चारों दिशाओंमें फैलता है, परन्तु जिस जातिमें एकता नहीं होती, उसकी दिन प्रति दिन गिरावट होती जाती है। इससे यहाँ स्पष्ट हुआ कि संगठन करनेवाले लोगोंमें परस्परके लिये आत्मसमर्पणका भाव अवश्य चाहिये।

इस प्रकार प्रथम मंत्रने संगठन करनेके मूल सिद्धान्तोंका उत्तम उपदेश दिया है।

संगठनका प्रचार।

“सब लोग यहा आजाय, उनकी एक परिपद बने और संगठन बढानेवाले उपाय वक्तता अपने ऐश्वर्यभाव बढानेवाले वस्तुत्वमे इस संगठन महापशुका फैलाव करें।” यह द्वितीय मंत्रके पूर्वार्थका भाव है।

सभा, परिपद, महासभा आदि द्वारा जातियोंका संगठन करनेकी रीति इस मंत्रार्थमें कही है। सब लोग इसका महत्त्व जानते ही हैं। आगे आकर इसी द्वितीय मंत्रमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह अवश्य ध्यानसे देखने योग्य है—

पशुभावका यज्ञ।

“जो सब पशुभाव हम सबमें हों वह इस यज्ञमें आजाये, और यही रहे अर्थात् फिर हमारे साथ वह पशुभाव न रहे।” पशुभावकी प्रधानता जिन मनुष्योंमें होती है, उनमें ही आपसके झगडे होते हैं। यदि पशुभाव संगठनके लिये दूर किया जाय और मनुष्यत्वका भाव बढाया जाय, तो आपसके झगडे नहीं होंगे। इसलिये पशुभाव की यज्ञमें समाप्ति करनेकी सूचना इस द्वितीय मंत्रके तृतीय चरणमें दी है और संगठनके लिये

वह अत्यंत आवश्यक है। इसके बिना कोई संगठन ही ही नहीं सकता।

पशुभाव छोडनेका फल।

पशुभाव छोडने और मनुष्यत्वका विकास करनेसे तथा संगठनसे अपनी शक्ति बढानेसे जो फल होता है उसका वर्णन द्वितीय मंत्रके चतुर्थ चरणमें किया है—

“जो धन है वह इस हमारे समाजमें स्थिर रहे।” संगठनका यही परिणाम होता है। जिससे मनुष्य धन्य होता है उसका नाम धन है। मनुष्यको धन्य बनानेवाले सब धन मनुष्यको अपने संगठन करनेके पश्चात् ही प्राप्त हो सकते हैं। इस द्वितीय मंत्रमें संगठनके नियम बताये हैं, वे ये हैं—

- १ एक स्थानपर सम्मिलित होना, सभा करना,
- २ वक्तव्य वक्तता जनताको संगठनका महत्त्व समझा देवे,
- ३ अपने अंदरका पशुभाव छोडकर, पशुभावसे मुक्त होकर, लोग वापस जाय, सब लोग मनुष्य बनकर परस्पर बर्ताव करें।

इन कार्योंके करनेसे संगठन होना संभवनीय है। इस प्रकार जो लोग संगठन करेंगे, वे जगत्में धन्य हो जायेंगे।

तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें फिर नदियोंके और जलोंके स्रोतों का वर्णन आया है, जो पूर्वोक्त रीतिसे एकताका उपदेश पुनः पुनः कर रहा है। संगठन करनेवालोंको घी, दूध दही आदि पदार्थ भरपूर मिल सकते हैं, मानो उनमें इन पदार्थोंकी मदद ही बहेगी। इसलिये संगठन करना मनुष्योंकी उपासिका एकमात्र प्रधान धारणा है।

इस कारण तृतीय और चतुर्थ मंत्रोंके उत्तरार्थमें कहा है, कि “इन संप्रति प्रयत्नोंसे हम अपना धन बढाते हैं।” संप्रति प्रयत्नोंसे ही यश, धन और नाम बढता है।

आशा है कि पाठक इस सूचना अधिक विचार करेंगे और संगठनद्वारा अपनी पुढ्यार्थ शक्ति बढाकर अपना यश चारों दिशाओंमें फैलावेंगे।

चोर-नाशन-सूक्त ।

[श्रापि-चातनः । देवताः अग्निः, इन्द्रः, वरुणः]

(१६)

चैडमात्रास्यां३ रात्रिमुदस्थुं३ जमस्त्रिणः । अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्युमांश्च व्रत ॥ १ ॥

सीतायाध्याह्नं वरुणः सीतायाग्निरुपां वति । सीते म इन्द्रः प्रायच्छुत्तदुङ्ग यातुचातनम् ॥ २ ॥

इदं विष्कन्धं सहत इदं पांघते अस्त्रिणः । अनेन त्रिषां ससहे या ज्ञातानि पिशाच्याः ॥ ३ ॥

यदि नो गां हंसि यद्यश्चं यदि पूरुषम् । तं त्वा सीतेन विष्पामो यथा नोऽमो अवीरहा ॥ ४ ॥

अर्थ—(ये अग्निः) जो बाहु चोर । अमात्रास्यां रात्री) अमात्रसकी रात्रिके समय हमारे (प्रातः) ममस्वर (उदस्थुः) हमला करते हैं, उस विषयमें (यातुहा सः तुरीयः अग्निः) चोरी का नाशक वह चतुर्थ अग्नि (अस्मभ्यं) हमें (अग्निव्रतम्) सूचना दे ॥ १ ॥ वरुणने सीतेके विषयमें (अध्याह्नं) कहा है । अग्नि सीतेको (उपावति) रख कर रहा है । इन्द्रे तो (मे) मुझे सीता (प्रायच्छुत्त) दिया है । दे (अंनं) । यय । (तत् यातुचातनम्) वह बाहु हटानेवाला है ॥ २ ॥ (इदं) यह सीता (विष्कन्धं) उठाकर करनेवालोंको (सहते) इतना है । यह सीता (अग्निः) बाहुओंको (पाघते) पीटा देता है । (अनेन) इससे (पिशाच्या या विषा जातानि) पिशाचों की जो आतिशय है, उनको (ससहे) मैं हटाऊ हू ॥ ३ ॥ (यदि नः गां हंसि) यदि हमारी गायको तु मारता है, (यदि अश्चं) यदि घोड़ेकी और (यदि पूरुषं) यदि मनुष्यको मारता है (तं त्वा) तो उस मनुष्यको (सीतेन विष्पामः) सीतेसे हम वेषते हैं, (यथा) जिससे तू (नः अ-वीर-हा अस्त्रः) हमारे वीरोंका नाश करनेवाला न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—अमात्रास्यां की अथैरी रात्रिके समय जो बाहु हमारे सपर हथका करते हैं, उस विषयमें हमें ज्ञानीसे उपदेश मिला है ॥ १ ॥ जलके एक तथा उपदेशक सीतेकी गोली का प्रयोग करनेको प्रेरणा देने हैं । हर वीरने तो सीतेकी गोली हमें दे रखी है । हे बाहुओं । यह बाहुओंको हटानेवाली है ॥ २ ॥ यह सीतेकी गोली बाहुओंको हटाती है और प्रतिबंध करनेवालोंको दूर करती है । इससे सूत्र बनेवाली सब जानियोगी दूर भगवा जाना है ॥ ३ ॥ वे चोर । यदि तू हमारी गाय, हमारा घोड़ा अथवा मनुष्यका वध करेगा, तो दूसरे हम गोली बजावेंगे, जिससे तू हमारा नाश करनेके लिये फिर जीवित न रह सकेगा ॥ ४ ॥

सीतेकी गोली ।

इस सूक्तमें सीतेकी गोली का प्रयोग बाहुओंपर करनेको कहा है । सूक्तमें केवल "सीते" शब्द है, गो की सी बाधक शब्द नहीं है । तथापि "सीतेन विष्पामः" (सीतेके द्वारा वेष करेगे) इस प्रयोगसे सीते शब्दसे सीतेकी गोली का भाव समझना उचित है । केवल सीतेका उपयोग बाहुओंके नाशमें किंवा अन्य प्रकार संभवनीय नहीं दखता है । (विष्पामः) वेष करनेका भाव इसमें बांदाकारीके समान दिखाना मारता है । आसन्न सीतेकी गोली बंदूकी जलामें रखकर इससे चतुर्थो सेपते हैं । जान भी धनुस्परने इससे ही रिशते पर कंडा मारा है । तापर्यं हम मंत्रीके चर पर बना रहे हैं कि सीतेकी

गोलीसे दूरसे ही बाहुओंका वेष करना चाहिये । माली कोटोके समान यह पाघने नहीं प्रयोग होता है इतना ही यहां बताया है ।

शत्रु ।

"अग्निः, यातु" आदि शब्दोंके अर्थ सव-शत्रुके विरुद्धमें दिये हैं, पाठक यहां हो देखें । वे सब शब्द बाहु चोर छेरे अर्थात् समस्त मनुष्योंके नाशक हैं । इनमें मित्र त्रिन शब्दोंका इत्ये पूर्ण विचार नहीं हुआ ठनक विचार यहां करते हैं—

१ विष्कन्ध—अतिबंध करनेवाला, उपावति उपाव करनेवाला, बाधक शब्दों में त्रिन करनेवाला ।

२ पिशाच, पिशाची-रक्त पीनेवाले और कच्चा मांस खानेवाले मूर लोग, जो मनुष्यका मांस भी खाते हैं ।

ये सब तथा (अग्नि) भूके ढाकू, (यातु) चोर ये सब समाजके शत्रु हैं । इनको उपदेशद्वारा सुधारनेका विषय पूर्व आये हुए (कां० १, सू० ७, ८) धर्मप्रचारके सूक्तोंमें आशुका है । जो नहीं सुधरते उनको दंडके लिये क्षत्रियोंके आधीन करनेकी आज्ञा भी सप्तम सूक्तके अन्तमें दी है । उपदेश और दण्ड इन दो उपायोंसे जो नहीं सुधरते उनपर संसिद्धी गोलीका प्रयोग करनेका विधान इस सूक्तमें आया है । अपने संगठन करनेका उपदेश पूर्व सूक्तमें करनेके पश्चात् इस सूक्तमें शत्रुपर गोली चलानेकी आज्ञा है यह विशेष ध्यानसे देखना चाहिये । जिनका आप्तममें उन्मत्त संगठन नहीं है यदि ऐसे लोग शत्रुपर हमला करेंगे, तो संभव है कि वे स्वयं ही नष्टभट्ट हो जायेंगे । इसलिये " प्रथम अपना संगठन और पश्चात् शत्रुपर बहाई " यह निश्चय ध्यानमें रखना चाहिये ।

आर्य वीर ।

अग्नि इन्द्र आदिके विषयमें सूक्त सातके प्रसंगमें वर्णन आया है । (अग्नि) जानी उपदेशक, (इन्द्र) शस्त्रवीर ये आर्यवीर हैं यह पहिले बताया है । इन दो शब्दोंसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंका बोध होता है यह बात पहिले बताया जा चुका है ।

(यहा तृतीय अनुयाक और पहिला प्रपाठक भी समाप्त हुआ ।)

रक्तसाव वंद करना ।

[ऋषिः प्रजा । देवता-योषित्व]

(१७)

अमूर्पा यन्ति योषितो हिरा लोहितमाससः । अम्रातरं हव जामयस्विष्टेन्तु हुवर्चमः ॥१॥
विष्टानरे विष्ट पर उव रवं विष्ट मष्पमे । कनिष्ठिका च विष्टति तिष्ठदिष्टमनिष्ठही ॥२॥
शतस्य घ्नमनीनां महर्षस्य हिराणां । अस्थुर्निर्मम्या कुमाः साकमन्ता अरंसव ॥३॥
परि युः सिकतावती घ्नन्वैष्टर्पकमीव । विष्टेष्टवत्ता सु कम् ॥४॥

अर्थ - (अमूर्पा या) यद ओ (लोहित-माससः) रक्त साव करने पदनी हुई (योषित्व) स्त्रियां हैं अम्रातरं मात शतस्य घ्नने जानेवाली (हिरा) चमरियां इत्यादि हैं (कनिष्ठिका) उरार भाग अर्थात् अपना चलना बंद करे, (इव) प्रिय

इस सूक्तमें " वरुण " शब्द आया है । वरुण समुद्र अथवा जलका अधिपति वेदमें तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है । जलस्थान, नदी आदि तथा समुद्र परसे जो शत्रुओंके हमले होते हैं उनसे रक्षा करनेका यह ओहदेदार है । जिस प्रकार " अग्नि " शब्द ब्राह्मणत्ववाचक, " इन्द्र " शब्द क्षत्रधर्मका बोधक है उसी प्रकार " वरुण " शब्द जलमार्गसे आनेवाले और देशतरंगोंमें व्यापार करनेवाले वैद्योंका अपना वैश्यत्वा सूचक बहा प्रतीत होता है । इसलिये गोली चलानेके विषयमें (अग्नि) ब्राह्मण, (इन्द्र) क्षत्रिय और (वरुण) वैश्यने भी संमति दी है और (इन्द्र) क्षत्रिय ने तो संसिद्धी गोल्यां हमारेपास दे रखा है, इत्यादि द्वितीय मंत्रका भाव इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है । सप्तम सूक्तमें दिये उपदेशानुसार ब्राह्मण प्रचारकोंने प्रयत्न किया और उन्होंने कहा कि वे ढाकू सुधरते नहीं हैं, क्षत्रियोंने भी कहा कि अनेक बार देहदंड देनेपर भी इन दुष्टोंका सुधार नहीं हुआ, वैश्य तो दंडे जानेके कारण बहते हो रहे, इस प्रकार तीनों वर्गोंकी परिपक्वता जब गोली चलानेकी आज्ञा दी, तब इस सूक्तके आधारपर गोली चलायी जा सकती है । पाठक यह पूर्वोपर संबंध अवश्य ध्यानमें रखें ।

सूक्तकी शेष बातें स्पष्ट हैं । इसलिये आधिक विवरणकी आवश्यकता नहीं है ।

प्रकार (अ-भातरः) विना भाईके (हत वर्चसः) निखरे बनी (सामयः) बहिनें ठहर जाती हैं ॥ १ ॥ (लचरे तिष्ठ) हे नीचेकी नाडी ! तू ठहर । (परे तिष्ठ) हे ऊपरवाली नाडी ! तू ठहर । (उत मध्यमे) और बीच वाली (एवं तिष्ठ) तू भी ठहर । (कनिष्ठिका च तिष्ठति) छोटी नाडी भी ठहरती है तथा (धमनिः इत् तिष्ठात्) बड़ी नाडी भी ठहर जावे ॥ २ ॥ (धमनीनां चतस्रः) सैकड़ों धमनियोंके और (द्विसृणा सहस्रस्य) हजारों नाड़ियोंके बीचमें । हृमाः मध्यमाः सत्सुः) ये मध्यम नाडियां ठहर गई हैं । (साकं) साथ साथ (अन्ताः) अंत माग भी (धरंसत) ठीक हुए हैं ॥ ३ ॥ (शुद्धी घनः) बड़े घनघने (घः परि अक्रमात्) तुमपर हमला किया है, अतः (सिकृतावलीः खिन्वत) रेतवाली अथवा छट्टीवाली बनकर ठहर आओ, जिससे (कं) कुछ (सु हृदयत) प्राप्त करोगे ॥ ४ ॥

भावार्थ—शरीरमें राल रंगका रक्त शरीरभर पहुंचानेवाली धमनियां हैं । जब घाव लग जावे तब उनकी गति रोकनी चाहिये, जिस प्रकार दुर्भाग्यकी प्राप्त हुई भाई रहित बहिनोंकी गति रुक जाती है ॥ १ ॥ नीचेवाली, ऊपरवाली, तथा बीचवाली छोटी और बड़ी सब नाड़ियोंको बंद करना चाहिये ॥ २ ॥ सैकड़ों और हजारों नाड़ियोंमें भाईवक्त नाडियां ही बंद की जावे अर्थात् उनके फटे हुए अंतिय भाग टूट करि जावें ॥ ३ ॥ बड़े मनुष्यके बड़े बायेंसे धमनियोंपर हमला होकर नाडियां फट गई हैं, उनमें छर्कटाके साथ संबंध करनेसे घाँघ्रा आश्रय प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

घाव और रक्तसाध ।

शरीरमें छात्रादिसे घाव होनेपर घावके ऊपरकी और नीचेकी नाडियोंको बंद करके रक्तसाध घाव बंद हो जाता है । घाव देखकर ही निश्चय जाना चाहिये, कि कौनसे भागपर बंद लगाना चाहिये । यदि रक्तसाध इस प्रकार बंद किया जाय तो ही रोगीको घाँघ्रा आश्रय प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्तके बहुत क्षाव होनेके कारण ही मनुष्य मर सकता है । इसलिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये ।

इसमें पूर्ण सुखमें शत्रुको गोलीसे मारनेकी सज्जना दी दे । इस लड़ाईमें शरीरपर घाव होना समझ दे, इसलिये इस रक्तसाधके बंद करनेके विषयमें इस एकमें उपदेश दिया है “ सिकृतावली ” अर्थात् रेतवाली अथवा छट्टीवाली धमनी कोनेसे रक्तस्राव बंद होता है । बायीं मिथीका बायीं घुलं मगानेसे घाव बंद होता है, यह कथन विचार करनेयोग्य है ।

यदि जीवित रहनेपर छियां बड़े बड़े समारंभोंमें और सत्सवोंमें जा सकती हैं, उस प्रकार यदि मर जानेके पश्चात् वे जा नहीं सकती अर्थात् उनकी गति रुक जाती है । पहले उनकी गति सर्वत्र होती थी, परंतु दुर्भाग्य-वश होनेके पश्चात् उनका प्रभग नहीं हो सकता ।

यहां अतिविषयक एक वैदिक मर्यादाका पता लगना है, कि यदि मरनेके पश्चात् जो उस प्रकार नहीं घूम सकती कि जैसी पदिके होनेके समान घूम सकती है । परमेश्वर रहना, धरणीके आनंद प्रसवोंमें न जाना, मंगलनामोंमें नाम न लेना इत्यादि श्रुतपति स्त्रीके व्यवहार की रीति यहां प्रतीत होगी ।

श्रुतपति श्री भाई होनेपर भाईके घर जा सकती है, भाई न रहनेपर बिना पिता माता न रहनेपर उनको दुःखमें ही रहना होता है । इस समय यह दुर्भाग्यवती श्री परमेश्वर आश्रित अथवा समग्र शत्रुओं और परोपकार का शय करे ॥

अन्यान्य रंग मिले जुने हों तो वैसे सब रंगों के कपड़े पहनती पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें, क्योंकि इस हैं। केवल श्वेत वस्त्र भी विधवा स्त्रियां पहनती हैं, यह श्वेत विषयका निश्चय होनेके लिये कई अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता मन्त्रज्ञा रिवाज संपूर्ण भारतवर्षमें एक जैसा ही है। है।

सौभाग्य-वर्धन-सूक्त ।

(१८)

(ऋषिः—द्रविणोदाः । देवता—वैनायकं सौभागम्)

निरि॒क्ष्म्यं॑ ल॒लाम्भ्य॑ निररा॒ति सु॒वाम॑सि ।

अथ॒ या भ॒द्रा ता॒नि नः प्र॒जाया अरा॑ति नयामसि

॥ १ ॥

निररा॑ति सवि॒ता सांवि॑ष्क् प॒दोर्नि॒हस्तो॑र्विर॒णो मि॒त्रो अ॒र्य॑मा ।

निर॒स्मभ्य॑मनु॒मती॒ ररा॑णा प्रेमां दे॒वा अ॒सावि॑षुः सौ॒भाग॑ाय

॥ २ ॥

यत्तं आ॒त्मनि॑ तु॒र्वा यो॒रम॑स्ति यद्वा के॒रोषु॑ प्रतिच॒क्षणे॑ वा ।

सर्वे॑ तद्वाचां ह॒मो व॑यं दे॒वस्त्वां सवि॑ता सं॒रय॑तु

॥ ३ ॥

रि॒श्य॑प॒दीं वृ॒ष॑द॒तीं गो॒प॑धां वि॒ध॒मामु॑त ।

वि॒ली॒ढ्यं ल॒लाम्भ्य॑ ता अ॒स्मिन्नां॑श्यामसि

॥ ४ ॥

अर्थ—(ललाम्भ्यं) निरपर होनेवाले (लक्ष्म्यं) गुरे चिन्हको (निः) निःशेषतासे दूर करते हैं; तथा (अन्रातिं) कंजुषी आदि (नि सुवामसि) निःशेष दूर करते हैं। (अथ या भद्रा) और जो कल्याण का/क चिन्ह है (तानि नः प्रजायै) मे सब हमारी सतानके लिये हन प्राप्त करते हैं और (अरातिं) कंजुषी आदिसे (नयामसि) दूर भगते हैं ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र और अर्यमा (पदो हस्तयोः) पावों और हातोंकी। (अर्यो) पीडाको (निः नि साविषुः) दूर करें। (रराणा अनुमति) दानशाल अनुमाने (अस्मभ्यं निः) हमारे लिये निःशेष प्रेणा की है। तथा (देवाः) देवोंन (हमों) इस श्रोत्रो (सौभाग्याय) सौभाग्यके लिये (प्र असाविषुः) प्रेरित किया है ॥ २ ॥ (यत्तं आत्मनि) जो-तेरी आत्मामें तथा (तस्यो) पापोंमें (वा यत् केरोषु) अथवा जो केशोंमें (वा प्रतिचक्षणे) अथवा जो दृष्टिमें (घोरं अस्ति) भयानक चिन्ह है (तत् सर्वं) वह सब (वयं वाचा हन्मः) हम वाणीसे हटा देते हैं। (सविता देवः) सविता देव (त्वा संरयतु) तुझे मिद करे अर्थात् पारपक बनावे ॥ ३ ॥ (रिश्यपदीं) हरणके समान पाववाली, (वृषदतीं) बेलके समान दातवाली, (गोपेधां) गायके समान चलनेवाली, (विधमां) विरुद्ध शब्द बोलनेवाली, त्रिसर्ग शब्द कठोर है ऐसी थी (उत ललाम्भ्यं विलीढीं) और सिरपश्चा कुलक्षण यह सब हम (अस्मिन्नां श्यामसि) अपनेसे नाश करते हैं ॥ ४ ॥

मार्गार्थ—सिरपर तथा शरीरपर जो वृक्षछां होने उनको दूर करना चाहिये तथा अंतःकरणमें कंजुषी आदि जो दुर्गुण हैं उनको भी दूर करना चाहिये, और जो कुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके पापस्थिर करना अथवा बढाना चाहिये। तथा कंजुषी आदि मनके गुरे मांसकी हडाना चाहिये ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावोंकी पीडाको दूर करें, इस विषयमें वे हमें उपदेश दें। क्योंकि देवोंने स्त्री और पुरुषको उतम आर्यके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥ दुष्टारी आ मा अथवा मनमें, शरीरमें, चेष्टामें तथा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हों, जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम

वचनसे दृढते हैं । परमेश्वर तुम्हें उत्तम लक्षणोंसे युक्त बनावे ॥ ३ ॥ हरिणके समान पाँव, बैलके समान दाँत, माथके समान चलनकी आदत, कठोर सुरा अवाज क्षीमा तथा सिरपरके अल्प कुलक्षण यह सब हमसे दूर हों ॥ ४ ॥

कुलक्षण और सुलक्षण ।

इस सूक्तमें शरीरके तथा मन, बुद्धि, आत्मा आदिके भी जो कुलक्षण हैं। उनको दूर करने तथा अपने आपको पूर्ण सुलक्षण-युक्त बनानेका उपदेश किया है । इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षण ये हैं—

(१) ललाट्य लङ्घ्यं—सिरपरका लक्षण, कपाल छोटा होना, माथपर बाल होने, सुदिक्षीन दर्शन आदि कुलक्षण । (मंत्र १)

(२) ललाट्यं विक्षीर्यं—सिरपर बालोंके छुटे रहने और उससे सिरकी सीमाका विगाह अदि कुलक्षण । (मंत्र २)

(३) रिच्यपदी—हरिणके समान कूच पाँव । (मंत्र ४)

(४) सुपदरी—बैलके समान बड़े दाँत । (मंत्र ४)

(५) गौपिषा—गायके समान चलना । (मंत्र ४)

(६) निधमा-कानोंकी सुरा लगनेवाला आवाज, जिसका मीठा मंजुल आवाज नहीं । (मंत्र ४)

ये अतिम (३-६) चार कुलक्षण क्षीणिग निर्दोषसे शिथिले लिये बहुत धीरे हैं अर्थात् शिथिलसे ये न हों । अधु पदक केके समय इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है ।

(७) केतोयु घोर्—बालोंमें कूटा अथवा भयानकता दिखाई देना अर्थात् बालोंके कारण मुख कूटा होना । (मंत्र १)

(८) मसिचक्षणे कूर्-नेत्रोंमें कूटा, भयानक नेत्र, भयानक दृष्टि । (मंत्र १)

(९) तन्वा कूर्-शरीरमें भयानकता, अर्थात् शरीरके अवयवके टेढामेडा होनेके कारण भयानक दृश्य । (मं. १)

(१०) भात्मनि कूर्-मन, बुद्धि, चित्त, आत्मामें कूटाके भाव होना । (मंत्र १)

(११) अ राति—कङ्करी, उदात्तावस्था अभाव । (मं १)

(१२) परो हन्तो अ-रतिः—पति और हाथी की

इसविधे पाठक इन दोनों सूक्तोंका साथ साथ विचार करें । इन सुलक्षणोंमेंसे कई लक्षण केवल शिथिलोंमें और कई पुष्टों तथा कई दानोंमें होंगे । अथवा सब लक्षण न्यूनानधिक भेदसे शीघ्रमें दिखाई देना भी संभव है ।

ये कुलक्षण दूर करना और इनके विरोधी सुलक्षण अपनेमें बढ़ाना हरएकका कर्तव्य है । इन सुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सरता है । जिससे शरीर सुदोष दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये । इन प्रकार इन्द्रियों, मन, बुद्धि आत्मा आदिके भी सुलक्षण हैं । इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त करके अपनेमेंसे कुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढ़ाना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है ।

वाणीसे कुलक्षणोंको हटाना ।

मंत्र ३ में “ सर्वं तद्वाचाप हन्मो बयं । ” अर्थात् हम अथ सब कुलक्षण वाणीसे दूर करने हैं, अथवा वाणीसे इन कुलक्षणोंका नाश करते हैं, कहा है, तथा साथ साथ “ देवराजा भविता सुदयतु ” अर्थात् सतिता देव तुम्हें पूरा सुलक्षणयुक्त बनय, कहा है । परमेश्वर प्रभुमें समुप्य सुलक्षणोंमें युक्त हो सता है, इसमें किसीकी भेदह नहीं हो गइता, परन्तु वाणीसे कुलक्षणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत लगे हैं । देह होना समर्थ है, अतः इन विषयमें कुछ रक्षणीकरणकी आवश्यकता है । वेदमें यह विषय कई स्थानोंमें आया है । हमलिये पाठक इत्यादि सब विचार करें ।

करने योग्य है । “मैं हीन हूँ, दीन हूँ” आदि विचार जो लोग आज कल बोलते हैं, वे तबबार मनमें प्रतिबिंबित होनेसे मनपर कुसंस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं । इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चारण ही हमें याद करना चाहिये, कभी भी वस्तु गिरे हुए भावोंसे कुछ शब्दोंका उच्चारण नहीं करना चाहिये । वाणीसे शुद्ध प्रेरणके विषयमें साक्षात् उपदेश देनेवाले कई सूक्त आगे आनेवाले हैं, इसलिये इस विषयमें यहाँ इतना ही लेख पर्याप्त है । अस्तु इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने सुलक्षणोंको दूर करना और अपने अंदर सुलक्षणोंको बढ़ाना हर एक मनुष्यको योग्य है ।

हाथों और पाँवोंका दर्द ।

दिशाय मंत्रमें कहा है कि सविता (सूर्य), वरुण (जल), मित्र (प्राणवायु), अर्यमा (आगका पौधा) ये हाथों और पाँवोंके दर्दको तथा शरीरके दर्दको दूर करें । सूर्यप्रकाश, समुद्र आदि जल, घुड़ बाघ, आकके पंखोंका डेक आदिसे बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं । इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय बारंबार आनेवाला है । अरियम तो इनसे ही प्राप्त होता है ।

सौभाग्यके लिये ।

“हमा देवा असाविषुः सौमगाय ।” इसकी देवीने सौभाग्यके लिये बनाया है । निवेप करके अंके चढ़नेसे यह

मंत्रमात्र है, परंतु सबके लिये भी यह माना जा सकता है । अर्थात् मनुष्य मात्र जो हो या पुरुष हो वह अपना कल्याण साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और वह यदि परमेश्वर भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीकी सूचनासे अपने मनको प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनगा । हर एक मनुष्य इस वैदिक धर्मके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे । अपनी उन्नतिको सिद्ध करना हर एकके पुरुषार्थपर अवलंबित है । यदि अपनी अव्यवस्था हुई है तो निधम जानना चाहिये कि पुरुषार्थमें पुग्री हुई है ।

सन्तानका कल्याण

यदि अपनेमें कुछ कुलक्षय रहे भी, तथापि अपनी संतानोंमें सब सुलक्षण आजाय (या भद्रा तानि न प्रजायै) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हर एक गृहस्थोंको ध्यानमें धरना चाहिये । अपनी संतान निर्दोष और सुलक्षणोंसे तथा सद्गुणोंसे कुछ बने यह भाव यदि हर एक गृहस्थोंमें रहेगा, तो प्रति पुरुषमें मनुष्योंका सुधार होता जायगा और राष्ट्र प्रतिदिन वृद्धिप्राप्त होकर बढ़ेगा । यह उपदेश हर एक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है इसलिये इसको कोई गृहस्थी न भूले ।

इस प्रकार पाठक इस सूक्तका विचार करें और अपने सुलक्षणोंको दूर करके अपने अंदर सुलक्षण बढ़ानेका प्रयत्न करें ।

ॐ नमः शिवाय

शत्रु-नाशन-सूक्तः ।

(१९)

(ऋषिः-मरुता । देवता-ईश्वरः, मरुतः)

बले बाण समूहोंको (अस्मत् आरात् पातय) हमसे दूर गिरा ॥ १ ॥ (ये अस्माः) जो फेंके हुए और (ये च अस्याः) जो फेंके जायेंगे, वे सब (विष्वजः शरवः) चारों ओर फैले हुए बाण आदि शस्त्र (अस्मत् पतन्तु) हमसे दूर जाकर गिरें (वैवीः मनुष्येयवः) हे मनुष्योंके दिव्य बाणों ! (मम अग्निमान्) मेरे शत्रुओंको (विविष्यत्) वेष कर डालो ॥ २ ॥ (यः नः स्वः) जो हमारा अपना अथवा (यः शरवः) जो दूसरा परतीय हो, किंवा जो (स-जायः) समान उष जातिघ्न कुलीन (उत) अथवा जो (निष्टयः) भिन्न जातिवाला या संघर्ष जातिका हीन (अस्मान् अग्निदासति) हमपर चढ़ाई करके हमें दास बनानेकी चेष्टा करे, [एतान् मम अग्निमान्] इन मेरे शत्रुओंको [रुदः] छलनेवाला और [शरव्यया विविष्यत्] बाणोंसे वेष करे ॥ ३ ॥ [यः] जो [सपत्नः] विरोधी और [यः अ-सपत्नः] जो प्रकट विरोधी नहीं है । [च नः त्रिपत्नः] और जो द्वेष करता हुआ [नः शपत्ति] हमको शपता है [तं] उसका [सर्वे देवाः] सब देव (पूर्वन्तु) नाश करें । [मम अन्तर वर्म] मेरा आंतरिक कवच [द्रक्ष] द्रष्टागण ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ-हमारे शत्रुओंका शत्रु ऐसा हो कि हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले सब शत्रु हमसे दूर रहें और हमतक वे कभी न पहुंच सकें । उनके शस्त्र भी हमसे दूर रहें ॥ १ ॥ सब शस्त्र हमसे दूर गिरें । और हमारे शत्रुओंपर ही सब शस्त्र गिरते रहें ॥ २ ॥ कोई हमारा मित्र या शत्रु, हमारी जातिवाला या परजातीयका, कुलीन या हीन, कोई भी कभी न हो, यदि वह हमें दास बनाने या हमारा नाश करनेकी चेष्टा करता है तो उसका नाश सबोंसे करना योग्य है ॥ ३ ॥ जो प्रकट या छिपा हुआ शत्रु हमारा नाश करना चाहता है या हमें घुरे शब्द बोलता है सब सबन उसकी दूर करें । मेरा आंतरिक कवच शत्रु ज्ञान ही है ॥ ४ ॥

यह "नाभ्रात्मिक गण" का सूक्त है, इस कारण "अपराजित गण" के सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध है, अतः पाठक इस गणके सूक्तोंके साथ इसका भी विचार करें ।

आन्तरिक कवच ।

इस सूक्तमें जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात कही है वह आंतरिक कवचकी है । देशके कवच पर्वत, दुर्ग और समुद्र होते हैं, इनके होनेके कारण बाहरके शत्रु देशमें घुस नहीं सकते । आत्मिक कवच किते होते हैं इनके कारण शत्रु प्राममें घुस नहीं सकते । शरीरके कवच सोहेके अथवा छारके बनाने जाते हैं जिनके कारण शत्रुके दाख शरीरपर लगते नहीं और शरीर सुरक्षित रहता है । शरीरके अंदर आत्मा और अंतःकरण है, मन, बुद्धि, जित और अहंकार मिलकर अंतःकरण होता है, इसकी साथ आत्माके लिये रहती है । इस "अन्तःकरण" के लिये "अंतः कवच" अवश्य चाहिये, जो इस शत्रुनाशन सूक्तने "अग्न वर्म मयान्तान्" शब्दोंद्वारा बताया है । "ज्ञानरूप कवच ही मेरा आंतरिक कवच" है । जिसके आत्मा

विषयक आत्मिक सुबुद्धि ज्ञान "इतना अर्थ इस सूक्तके समझना योग्य है ।

इस सूक्तके दो विभाग ।

इस सूक्तके दो विभाग होते हैं, प्रथम विभागमें प्रारंभमें चतुर्थ मंत्रके तृतीय पद्यके सब मंत्र आते हैं और द्वितीय विभागमें चतुर्थ मंत्रके चतुर्थ पद्यका ही समावेश होता है । इन विभागोंको देखकर इस सूक्तका विचार करनेसे बड़ा बोध मिलता है ।

वैदिकधर्मका साध्य । आत्म कवच ।

शक्तिका ही आश्रय करते हैं । अतः हम कहते हैं प्रथम विभागके मंत्र पाशवी शक्तिका विचार करते हुए साधारण जनोका मार्ग बता रहे हैं और द्वितीय विभागका मंत्रमात्र आत्मिक दिव्य शक्तिका मानवी अंतिम रथिय बता रहा है ।

“ आत्मिक शक्ति या आत्मिक ज्ञान ही मेरा सबसे बड़ा कवच है, जिससे मैं सब प्रकारके शत्रुओंसे सुरक्षित रह सकता हूँ, मेरे अंदर आहुँसाका भाव पूर्ण रूपसे स्थिर रहा, तो जो जो मेरे पास लावेगे उनके अंदरसे भी शत्रुताका भाव दूर हो जायगा ”

इत्यादि वैदिक धर्मकी शिक्षा अन्तिम साध्य है, मनुष्यको मही बात अंतमें स्वीकारनी है, परंतु यह स्वीकार बाह्य दबावसे नहीं होना चाहिये, परंतु अंतःस्फूर्तिमेंही होना चाहिये, अपना समाधि ही ऐसा बनाना चाहिये । इसी भावसे मनुष्यका सबसे अधिक कल्याण है ।

अन्य कवच । क्षात्र कवच ।

शारीक, नगरीके तथा देशोंके अन्याय कवच उक्त विद्यासके अभावमें आवश्यक ही हैं । स्वतंत्रताके कक्षात्र आदि सब इस अवस्थामें ही सहायक हैं । अर्थात् जबतक जनता पूर्णतः अधिकारके लिये योग्य नहीं होती, तबतक शरीर और अभियोग्य पट्टका संरक्षण इन कक्षाओंसे ही । ये क्षात्र साधन हैं । ज्ञान कवचसे सुरक्षित होना ब्राह्म साधन है और लौकिक कवचों तथा कक्षाओंसे छुड़ित होना क्षात्र-साधन है । ब्राह्मसाधन स्वीकारने योग्य जनताकी उन्नति धर्मसाधनसे कानी चाहिये और जबतक वृत्ती उन्नति नहीं होती, तबतक क्षात्रसाधनसे शत्रुओंका

प्रतिकार करना योग्य है । क्षात्रसाधनोंसे युद्धोंके बहुत होनेसे ही मनुष्य इन साधनोंकी कृताका अनुभव करता है और ब्राह्मसाधनको स्वीकारनेका यत्न करता है ।

इस प्रकार युद्ध भी मनुष्यको ब्राह्मसाधनतक पहुंचानेवाले मार्गदर्शक बनते हैं ।

दासभावका नाश ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि “जो अपना या परया हमें दास बनाने की चेष्टा करता है उसका नाश करना चाहिये ।” राष्ट्रीय पारतंत्र्य शारीरिक दास भावका द्योतक है, इसके आंतरिक मानसिक, बौद्धिक तथा भाविक, पारतंत्र्य भा है और ये सबसे अधिक घातक हैं । किसी प्रकारका भी पारतंत्र्य जो अपने शत्रुका कारण हो वह स्वीकारना नहीं चाहिये, परंतु उसके कारणों दूर करना चाहिये । आर्योंको दास कभी नहीं बनना चाहिये । स्वाधीनता ही मनुष्यका साध्य है । ज्ञान और पुद्वार्यसे स्वाधीनता-बंधनसे मुक्ति-प्राप्त होती है, इसका भी आशय यही है । मनुष्यके सब दुःख दास्यके कारण हैं । इसलिये कोई मनुष्य या कोई राष्ट्र दूसरे मनुष्यको या राष्ट्रको दासत्वमें दबानेका यत्न न करे और यदि किसीसे ऐसा प्रयत्न हुआ तो सब मनुष्य उसका विरोध करें ।

दासभावको हटानेका उपदेश पाठक इस सूक्तमें विशेष प्रकारसे देखें और उसको अपने जीवनमें पढ़ावें । पाठक इस सूक्तके इस प्रकार विचार करनेसे बहुत ही भोग प्राप्त कर सकते हैं ।

महान् शासक ।

(२०)

(ऋषिः—अथर्व । देवता—सोमः)

अदोरमुद् मवत् देव सोमास्मिन्पुत्रे मरुतो मुदतां नः ।

मा नो विददग्निमा सो अश्विस्तुर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥ १ ॥

यो अथ सेन्यो वषोऽज्यायूनमुदीरति । युवं तं मित्रावरुणावस्मद्योवयत् परि ॥ २ ॥

इतश्च यदमुतश्च यद्वर्धं वरुण पादय । वि मुह्यन्मै यच्छ वरियो यावया वृधम् ॥ ३ ॥

ज्ञास इत्या मुहो अस्पमित्रसाहो अस्तुतः । न यस्प इत्युक्ते सग्न न ज्ञीयते कदा चन ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (देव मोम) सोम देव ! (अ-दार-सत्त्व भवतु) आपसकी फूट उत्पन्न करनेका कार्य न हो । हे (महत्तः) भवतो ! (अस्मिन् यत्ने) इस यज्ञमें (नः सृष्टव) हमें सुखों करो । (अभि-भाः नः मा विद्द्) परामर्श हमारे पास न आवे, (अशस्तिः मो) अकीर्ति हमें प्राप्त न हो, (या द्वेष्या वृजिता) जो द्वेष बढानेवाले कुटिल हृत्त्य हैं वे भी (नः मा विद्द्) हमारे पास न हों ॥ १ ॥ (अथापूर्वां) पापमय जीवनवालोंका (याः सैन्यः वधः) जो सेनाके शूर वीरोसे वध (अथ उदीरते) आज़ हो रहा है । हे भग्न और वरुणो ! (युर्व) तुम (तं अस्मत् परि यावयतं) उससे हमसे सर्वथा हटा दो ॥ २ ॥ हे (वरुण) सर्व श्रेष्ठ ईश्वर ! (यत् इतः च यत् अमुतः) जो यज्ञसे और जो बहासे वध होगा उस (वधं यावय) उपाको भी दू कर दे । (महत्तः शर्मं वियच्छ) बड़ा सुख अथवा आश्रय हमें दे और (वधं वरीयः यावय) वधको अतिदूर कर दे ॥ ३ ॥ (इत्या महान् शास) इस प्रकार सत्य और महान् शासक ईश्वर (अ-मित्र-साह अस्मृतः) शत्रुका पराजय करनेवाला और कभी न हारनेवाला (अभि) तु है । (यस्य सखा) जिसका मित्र (कदाचन न हन्यते) कभी भी नहीं मारा जाता और (न जीयते) न पराजित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपसकी फूट बढानेवाला कोई कार्य हमसे न हो । इस सार्वभौमसे हमें सुख प्राप्त हो । पराजय, अपकीर्ति, अवश, द्वेष आर कुटिलता हमारे पास न आवें ॥ १ ॥ हे देव ! शत्रुओंके द्वारा जो पापयोगिक वध हो रहे हैं, वेसे वधोंके प्रलेप भी हमारे अंदर न उत्पन्न हों ॥ २ ॥ हे प्रभु ! हमारे अंदर अथवा दूसरोंके अंदर वध करनेका भाव न रहे । वधका भाव ही हम सबसे दूर कर और तेरा बड़ा आश्रय—सुखपूर्व आश्रय—हमें दो ॥ ३ ॥ इस रीतिसे तेराही महान् सत्य शासन सबके ऊपर है, तुही सखा शत्रुओंका दूर करनेवाला और सर्वदा अपराजित है, तेरा मित्र बनकर जो रहता है न उसका वध कभी होगा और नही उसका कभी पराजय होगा ॥ ४ ॥

पूर्व सूक्तसे संबंध ।

पूर्व सूक्तके अंतमें " ईश्वरमाहियुक्त सत्यज्ञान हा मेरा, सखा वध है " यह विशेष बात कही है, उसी में विशेष वर्णन इस सूक्तमें हो रहा है । सबसे पहिले आपसकी फूटको दूर करनेकी सूचना दी है ।

आपसकी फूट हटा दो ।

" अ-दार-सत्त्व भवतु " हमारा आचरण फूट हटानेवाला हो, यह इस उपदेशका ता-पर्य है । देखिये—

दार=फूट (दू=हटना पाठ)

दार+सत्त्व=फूटका प्रयत्न, फूटका कार्य ।

अ-दार+सत्त्व=फूट हटानेवाला कार्य ।

" अ-दार+सत्त्व भवतु " अर्थात् " आपसकी फूट हटानेवाला कार्य हम सबसे होता रहे । " आपस की फूटके कारण शत्रु हमला करते हैं और शत्रुओंके हमसे हो जानेर हमें शत्रुओंके भगनेका यात करना पड़ता है । इसलिये सुद्धा कारण आपस की फूट है । यदि आपसकी फूट न होगी और सब लोग एक मनुष्य रहें तो दूसरे लोग हमला करनेके लिये भी नही । जहाँ आपसमें फूट होती है वही शत्रुओंका हमला होता है । इसलिये सुद्धा कारण आपसकी फूटमें देखना और आपस की फूटके दूर करना

चाहिये । राष्ट्रीय सुखही यही सुनिश्चय है ।

आपसकी फूट हट जानेके पश्चात् ही (सृष्टव) सुख होनेकी सम्भावना है । अन्यथा सुखही मारा नहीं है । आपसकी फूट हटानेसे जो लाभ होगा वह निम्नलिखित प्रकारसे प्रथम मंत्रके उतरार्धमें वर्णन किया है ।

१ अभिभाः नः मा विद्द्=पराजय हमारे पास न आवे,

२ अशस्तिः मो=अकीर्ति हमारे पास न आवे,

३ वृजिता नः मा=कुटिल हृत्त्य हमसे न हों,

४ द्वेष्या वः मा विद्द्=द्वेष भाव हमारे पास न आवें ।

त्रिषु समय हम आपसकी फूट हटायेंगे, उस समय हमें निरुक्ति के द्वेष करनेका कोई कारण नहीं रहेगा, निरुक्ति के दूर-गुरु कुटिल व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, हमारा कभी परामर्श न होगा अथवा हमपर कोई आशय नहीं आयेगी और हमारी अपकीर्ति भी नहीं होगी, अर्थात् अब हम आपसकी फूट हटाकर आना उभय संगठन करेंगे और एक-दूसरे के बन्धे आगे बढ़ेंगे, उस समय सब लोग हमारे मित्र बनकर हमारे साथ मित्रभावात् व्यवहार करेंगे, हम भी सबके साथ खल व्यवहार करते जायेंगे, एकनाके कारण हमारा बल बढेगा और उस हेतुसे कभी पराजय नहीं होगा तथा हमारा वध केन्द्र भावगा । (मंत्र १)

त्रितीय और चतुर्थ संघमें जो सैनिक बोरसि होनेवाले हुएकि संहारका वर्गन है, वह वर्गन भी हमारी आगवकी फूट के कारण ही हुए लोग हमें बताते हैं और उनका वध करनेका प्रयोजन उत्पन्न होता है, अर्थात् यदि हमारा समाज दुर्गमठिन होगा तो उस वधही अजही नष्ट होनेसे वह वध भी नहीं होगा और हमें (मनु उर्न) वधा सुख प्राप्त होगा। "धर्म" शब्दका अर्थ "इष्ट और आश्रय" है। पूर्वोक्त संवेधसे यहां परमेश्वरका आश्रय समीप है। क्योंकि सच्चा सुख भी परमात्माके आश्रय ही होता है। (मंत्र. २, २)

बड़ा शासक।

एक ईश्वर ही सबसे बड़ा शासनकर्ता है, उसके उत्तर करेंगे,

विही अन्धका अपिहार नहीं है, सब उसीके शासनमें कार्य करते हैं, बड़ी सर्वोपारे है। वह अनुनाका सदा नायक और कभी पराजित न होनेवाला है। यदि ऐसे समय प्रमुखा मित्र बनकर कोई रहे तो उसका कर्मा नाश न होगा, और कभी पराजय भी न होगा। अर्थात् प्रमुखा मित्र बनकर व्यवहार करनेवालेका यह सर्वत्र फैलेगा और उसका ही मान सर्वत्र होगा। (मंत्र. ४)

पूर्व सूक्तोंमें जिस "ज्ञान-श्रवच, नक्ष-वर्न" का वर्णन किया है वह श्रद्धा-श्रवच यही है कि "परमेश्वरका शासन सर्वोपरि मानना और उसका सदा बनकर व्यवहार करना।"

आरा है कि पाठक इस प्रकार प्रमुके मित्र बननेका बल

प्रजा-पालक-सूक्त ।

(२१)

(भाषी:—अथर्व । देवता—इन्द्रः)

स्वस्तिदा विद्यां पर्विर्विबुधा विमृषो बृषी । धृषेन्द्रः पुर एत नः सोमपा अमयंकुरः ॥ १ ॥
वि न इन्द्र मृषो जहि नीचा यच्छ पृतन्मृतः । अधमं रमया तमो यो अस्मा अभिदासति ॥ २ ॥
वि रक्षो वि मृषो जहि वि वृत्रस्य हनू रुच । वि मनुष्यिन्द्र वृत्रहन्मित्रैस्वामिदासतः ॥ ३ ॥
अपेन्द्र द्विपतो मनोऽपु विज्यासतो वृधम् । वि मुहूर्च्छर्म यच्छु वरीयो वावपा वृधम् ॥ ४ ॥

अर्थ—(स्वस्ति-दा) मेरा देनेवाला, (विद्यां पर्विः) प्रकाशोंका पालक, (विमृषो बृषी) पेलनेवाले अनुसूच नाथ करनेवाला, (वि-मृषः बृषी) विषय दिखेंके वधमें करनेवाला, (वृषा) बलवान् (सोम पाः) सोमका पान करनेवाला, (अमयंकुरः) समय देनेवाला (इन्द्रः) प्रभु राजा (नः) हमारे (पुरः पटु) आगे चले, हमारा नेता बने ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! (ना मृषः) हमारे अनुसूचों (विमृषि) भार बाल । (पृतन्मृतः) सेनाके द्वारा हमारा हमला करनेवालेको (नीचा यच्छ) नीचे प्रतिबंध कर । (अधमं रमया तमो यो) जो हमें दास बनाना चाहता है, या हमारा पात्र करना चाहता है, उसको (मृषः तमः रमय) दिन संघर्षमें पहुंचा दे ॥ २ ॥ (इन्द्रः मृषः वि विमृषि) राजाओं और विषहोंके मार बाल, [वृत्रस्य हनू विरुद्ध] येरका दण्डना करनेवाले अनुके क्षीरों जराओंको तोड़ दे । हे (वृत्रहन् इन्द्र) अनुनाक मने ! (अभिदायकाः अभिदास्य) हमारा नाथ करनेवाले अनुके (मनुष्य विरुद्ध) वज्रास्की तोड़ दे ॥ ३ ॥ हे (इन्द्र) प्रभु ! राजन् ! (द्विपतः मनः कन) दोषीका मन बद्ध दे । [विज्यासतः वर्ध जप] हमारी आगुका नाथ करनेवालेको रुच कर (मनुष्य रमि विरुद्ध) बड़ा मुक्त हमें दे और (वर्य बरीयः वावप) वधको दूर कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ—प्रकाशोंका दित और अंगत करनेवाला, प्रकाशोंका दण्डना करनेवाला, येरका नाथ करनेवाले अनुके दूर करने, मने, विरुद्ध, वज्रासना करनेवाला, प्रभुको समय देनेवाला राजा ही हमारा आगुकी बने ॥ १ ॥ हे राजन् ! प्रभुके अनुका नाथ

कर, सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुओं दबा दे, जो पातपात और नाश करना चाहता है उसको भगा दे ॥ २ ॥ हितक दूर शत्रुओंको मारहाल, बेर कर सतानेवाले दुष्टोंको काट दो, सब प्रकारके शत्रुओंका समाप्त नाश कर दे ॥ ३ ॥ शत्रुओंके मन ही बदल दे अर्थात् वे हमला करनेका विचार छोड़ दें, नाश करनेवालोंको दूर कर दे, पातपात आदिको दूर कर और सब प्रजाको सुखी कर ॥ ४ ॥

शाश्वधर्म ।

यह " अमरवर्ण " वा सूक्त है । इस सूक्तमें शाश्वधर्मका उपदेश और राजाके कर्तव्योंका वर्णन है उसका मनन पाठक करें । उत्तम राजाके गुण प्रथम मंत्रमें वर्णन किये हैं । इस मंत्रकी कवौदीसे राजा उत्तम है या नहीं इसकी परीक्षा हो

सकती है । अन्य तीन मंत्रोंमें विविध प्रकारके शत्रुओंका वर्णन है और उनका प्रतिकार करनेका उपदेश है । सब प्रकारके अंतर्गत शत्रुओंका प्रतिहार करके प्रजाको अधिकसे अधिक सुखी करना राजाका मुख्य कर्तव्य है । यह सूक्त अति सरल है इसलिये इसका अधिक स्मृतीकरण आवश्यक नहीं है ।

[चतुर्थ अनुवाक समाप्त]

हृदयरोग तथा कामिलारोग

की चिकित्सा

(२२)

(ऋषिः—प्रजा । देवता—सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः)

अनु सूर्यमुदयतां हृदयोतो हरिमा च वे । गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दार्घ्यामुत्वाय दध्मसि । यथाऽयमेवया असुदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥
येन रोहिणीर्देवपुत्राः गात्रो या उत रोहिणीः । रूपं रूपं यवो-वयस्ताभिर्द्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥
शुकपु ते हरिमाणं रोपुणाकामु दध्मसि । अपो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

अर्थ—(वे हृदयोतः च हरिमा) तेरे हृदयकी जलन और पीतावन सूर्य अनु उदयताम्) सूर्यके पंखे चला करे । गोके अपश सूर्यके (रोहितस्य तेन वर्णेन) उस लाल रंगके (त्वा परि दध्मसि) तुमने सब प्रकारसे हृदय पुट करते हैं ॥ १ ॥ (रोहितैः वर्णैः) लाल रंगोंसे (त्वा) तुमको (दार्घ्यामुत्वाय परि दध्मसि) दार्घ्य आगुने लिये चले हैं । (यथा) त्रिवले (अयं) यह (अरया असत्) नीरोग हो जाय और (अ-हरितः भुवत्) पीतक रोगसे मुक्त हो जाय ॥ २ ॥ (याः देवता रोहिणीः गात्राः) जो दिव्य लाल रंगकी गीबें हैं (उत या रोहिणीः) और जो लाल रंगकी धारियाँ हैं (ताभिः) उनसे (रूपं रूपं) मृदाला और (यवः यवः) बमके अनुसार (त्वा परि दध्मसि) तुमने चले हैं ॥ ३ ॥ (ते हरिमाणं) पीतक रोगको (शुकपु रोपुणाकामु च) तोने और पीतक रंगोंसे (दध्मसि) घात करते हैं (यवो) और वे (हरिमाणं) तेरा पीतान्न दध्म (हारिद्रवेषु) हरी बनहरानेवालों (नि दध्मसि) रख देते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—गो । हृदयरोग और पीतक रोग सूर्यकिरणोंके साथ संबंध करने के लिये जानना । लाल रंगकी गीबें और पीतकी लाल धारियाँ हैं, इनके द्वारा पीतान्न हो सकती हैं ॥ १ ॥ लाल रंगके प्रयोगसे हृदय आगुच मान होय है, पीतक रोग

दूर होता है और नीरोगता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ लाल रंगकी चोंचें और काल रंगकी सूर्यकिरणें दिश्य गुणोंसे युक्त होती है । रूप और बलके अनुसार उनके द्वा । रोगी घेरा जखे ॥ ३ ॥ इसलाल रंगकी चिन्मयमे रोगीका पलायन तथा कीकायन दूर होगा और वह दूरे पक्षा और दूरी वनस्पतियोंमें जाकर निवास करेगा, अर्थात् रोगीने पाप छिड़ नहीं आवेगा ॥ ४ ॥

वर्णचिकित्सा ।

यह सूत्र " वर्णचिकित्सा " के महत्वपूर्ण विषयका उपदेश दे रहा है । मनुष्योंका हृदयका रोग और कामिला नामक पीला रोग कष्ट देते हैं । अगचन, पेटके विकार, तमाखू, मद्यप्राशन आदि अनेक कारण हैं, जिनके कारण हृदयके दोष उत्पन्न होते हैं । तरुण अवस्थामें वयसदोष हानिके कारण भी हृदयके विकार उत्पन्न होते हैं । कामिला रोग रित्तके दूषित हौनेक कारण उत्पन्न रोग है । इन रोगोंके कारण मनुष्य कृश, निलेश, शरीर दुबल और दान हाना है । इसलिये इन रोगोंका हटानेका उपाय इस सूत्रमें वेद बता रहा है । सूत्रके रणों द्वारा चिकित्सा तथा लाल रंगवाली गोभीके द्वारा चिकित्सा करनेसे उक्त दोष दूर होते हैं और उत्तम स्वास्थ्य मिलता है ।

सूर्यकिरणें कमरेमें लेकर उनमें नंगे शरीर रहना और शरीरको उलट पुलट करके सब शरीरके भाग लाल रंगके सूर्यकिरणोंका संबंध करना परिधारण विधि का तात्पर्य है ।

१ रोहितै वर्णैः परिदृष्मसि । (मंत्र १)

२ दीर्घायुत्वाय परिदृष्मसि । (")

३ गो रोहितस्य वर्णेन स्वा परिदृष्मसि । (मंत्र १)

४ छाभिर्दृष्ट्वा परिदृष्मसि । (मंत्र ३)

ये सब मंत्रभाग एक वर्णके सूर्यकिरणोंका स्नान अर्थात् " परिधारण " करनेका विधान कर रहे हैं । रोगीको नंगे शरीर सूर्यके एक वर्णके शीशाने कमरेमें रखने और उसके शरीरका संबंध एक वर्णकी सूर्यकिरणोंके साथ करनेसे वह परिधारण हो सकता है और इससे नीरोगता, दीर्घ आयु प्राप्ति तथा बलप्राप्ति भी हो सकती है । अन्योन्य रोगोंके निवारणके लिये अन्योन्य वर्णोंके रोगियोंकी स्नानोंकी योजना करना चतुर वैदिक बुद्धिमत्तापर निर्भर है ।

स्वानर अमारोग्य होगा । अथवा कठोर प्रकृतिवालेको अल्प प्रमाणमें देनेसे उसपर कुष्ठ भी परिणाम न होगा । इस दृष्टीसे तृतीय मंत्र का उत्तरार्थ बहुत ममन करने योग्य है ।

रंगीन गौंके दूधसे चिकित्सा ।

इसी मूल्ये रंगीन गौके दूधसे रोगीकी चिकित्सा करनेकी विधि भी बना दी है । गौके घनेद, काले, लाल, भूरे, नयवारी, बादामी तथा विविध रंगके घन्चोवाला होनी हैं । सूर्यकिरणों कीकी पीठपर गिरता है और उस कारण रंगके भेदके अनुसार दूधपर भिन्न परिणाम होता है । श्वेत गौके दूधका गुणधर्म भिन्न होगा, काले रंगकी गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, लाल गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, उसा प्रकार अन्योन्य रंगवाली गौओंके दूधके गुणधर्म भिन्न होंगे । एक बार वर्ण चिकित्सा का तत्त्व मन्नेपर यह पोलोनाम मानना ही पड़ता है । इसीलिये इस सूक्तके मंत्र १ में 'रौहिणीः गायः' अर्थात्

लाल गौओंके दूधका तथा अन्योन्य गौओंका उपयोग हृदय विकार और कामिला रोगकी निरागतिके लिये करनेका विधान है । यह विधान ममन करनेसे बड़ा बोधप्रद प्रतीत होता है । और इसके ममन करनेसे अन्योन्य रोगोंके लिये अन्योन्य गौओंके गौरांश उपयोग करनेका उद्देश भी प्राप्त होगा । वर्ण-चिकित्सा का ही तत्त्व गौगुण चिकित्साके लिये बर्ती आयाग । दोनोंके बीचमें तत्त्व एक ही है ।

पथ्य ।

वर्णचिकित्साके साथ साथ गौरस सेवनका पथ्य रखनेसे अत्यधिक लाभ होना संभवनीय है । अथवा लालरंगके किरणोंके परिचारण करनेके दिन लाल गौके दूधका सेवन करना, इत्यादि प्रकार यह पथ्य समझना उचित है ।

इस प्रकार इस सूक्ता विचार करके पाठक बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं ।

श्वेतकुष्ठ-नाशन-सूक्त ।

(२३)

(आपिः-प्रथर्था । देवता-ओपाधिः)

नृक्तंजातास्पोषधे रामे कृष्णे अभिक्वि च । इदं रजनि रजय क्लिप्तं पलितं च यत् ॥ १ ॥
 क्लिप्तं च पलितं च निग्नितो नाशया पृषत् । आ त्वा स्वो विंशुतां वर्णः परां शुक्लानि पादय ॥ २ ॥
 अभिक्वि ते प्रलयनमास्थानमभिक्वि त्वं । अस्तिक्म्यस्पोषधे निग्नितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥
 अस्थिजस्य क्लिप्तस्य तनुजस्य च यदराचि । दूष्यां कृतस्य मर्दना लक्ष्मं श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

अर्थ-हे रामा कृष्णा और अभिक्वि ओपाधि । तू । मर्दने जाया अथि । रात्रिके समय उत्तरास हुई है । हे (रजनि) रंग देनेवाली । (यत् क्लिप्तं पलितं च) जो कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ है (इदं रजय) उसमें रंग दे ॥ १ ॥ (इतः) इनके शरीरों (क्लिप्तं पलितं) कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ तथा (पृषत्) धुने आदि सब । निः नाशय । नष्ट कर दे । (शुक्लानि परा पादय) श्वेत धर्मों पर कर दे (स्वः वर्ण) ममन रंग (त्वा) तुम (आशितो) प्राप्त हो ॥ २ ॥ (ते मर्दयन्) तेरा मर्दना (अभिक्वि) कृष्ण वर्ण है तथा (त्वं अवस्थानं) तेरा स्थान भी (अस्थि) काला है, हे ओपाधि । तू स्वः (अस्थिनी अथि) काले रंगवाली है इसलिये (इत्) यामे (इदम्) धुने (निः नाशय) नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ (दूष्यां हनय) शरीरके कारण उत्पन्न हुए (अस्थिजस्य तनुजस्य च) दृष्टि तथा शरीरसे उत्पन्न हुए (क्लिप्तमस्य यत् रजयि श्वेत कर्दन) कुष्ठ में रंगवापर श्वेत किन्हीं है उसमें (मर्दना मनीनशम्) इन कर्मों में नष्ट नाश दिया है ॥ ४ ॥

भावार्थ-—रामा कृष्णा अभिक्वि हे ओपाधि । हे, इनका पालन रात्रिके समय होगा है, इनमें रंग बढानेका पालन है ।

“ सौमार्ग्य-वर्धन ” के (१८ वें) सूक्तों सौर्ध्ववर्धनका पाठक इस सूक्तके पूर्वोक्त १८ वें सूक्तके साथ पढ़ें । आता है उपदेश दिया है, इसलिये उस कार्यके लिये श्वेत वृष्ट यदि कि पाठक इस प्रकार पूर्वोक्त सूक्तों से संबंध देखकर सूक्तार्थके किर्तिका हो, तो उसको दूर करना आवश्यक ही है । अतः अधिकते अधिक लाभ उठावें ।

कुष्ठ-नाशन सूक्त ।

(२४)

(ऋषिः-ब्रह्मा । देवता-आसुरी वनस्पतिः ।)

सुपुणो जातः प्रथमस्तस्य त्वं वित्तमांसिय । तदासुरी युधा जिघा रूपं चक्रे वनस्पतिम् ॥ १ ॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलामनाशनम् । अनीनशक्तिक्रामं सरूपामरुच्यचम् ॥ २ ॥
सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता । सरूपकृत्तमौषधे सा सरूपामिदं कृषि ॥ ३ ॥
इयामा सरूपकरणी पृथिव्या अष्टगुद्धता । इदम् पु प्र सांघ्य पुनां रूपार्थि कल्पय ॥ ४ ॥

अर्थ-सुरर्ग (प्रथमः जातः) सबसे पहिले हुआ (तस्य वित्तं) उसका पित (त्वं मांसिय) ऐसे प्राप्त किया है । (युधा जिघा) दुन्दुभे जाति हुई वह आसुरी (वनस्पतीन्) वनस्पति गेहो (स्य रूपं चक्रे) वह रूप करती रही ॥ १ ॥ (प्रथमा आसुरी) पहिली आसुरीने (इदं किलास-भेषजं) यह कुष्ठका औषध (चक्रे) बनाया । (इदं) यह (किलास-नाशनं) कुष्ठ रोगका नाश करनेवाला है । इसने (किलासं) कुष्ठका (अनीनशक्तं) नाश किया और (रच्यं) (वचाके (स-रूपो) समान रंगवाली (अकरत्) बना दिया ॥ २ ॥ हे औषधी तू माया (सरूपा) समान रंगवाली है तथा तैय पित्ता भी समान रंगवाली है । इसलिये (त्वं स-रूप-कृत्) तू मा समानरूप करनेवाली है (सा) वह तू (इदं सरूपं) इसको समान रंगरूपवाला (कृषि) कर ॥ ३ ॥ इयामा नामक वनस्पति (सरूप-करणी) समान रूपरंग करनेवाली है । यह (पृथिव्या अष्टगुद्धता) पृथ्वीमें उछाड़ी गई है । (इदं क भु प्रसाधय) यह कर्म ठीक प्रकार निद कर और (पुनां रूपार्थि कल्पय) फिर पूर्ववत् रंगरूप बना दे ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुपुर्ग नाम सूर्य है उसकी किरणें पित्ता बनाती हैं शक्ति है । सूर्यकिरणों द्वारा वह पित्तवनस्पतिबोमं संवित होता है । योग्य उपयोक्ति स्थापित करी हुई वनस्पतिवर्ग रूप रंगका सुधार करनेमें सहायक होती है ॥ १ ॥ आसुरी वनस्पतिसे कुष्ठ रोगके लिये उत्तम औषध बनता है । यह निषधसे कुष्ठ रोग दूर करती है और इसने छीर की लक्षा समान रंग रूपरंगी बनती है ॥ २ ॥ जिन पौधोंके संयोगसे यह वनस्पति बनती है, वे पौधे (अर्थ-इसके माता पितामही पौधे भी) चारिका रंग गुणालेवाते हैं । इसलिये यह वनस्पति भी रंगका सुधार करनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥ यह इयामा वनस्पति छीर की चमकीला रंग ठीक करनेवाली है । यह भूमिमें उछाड़ी हुई वह कार्य करती है । अतः इससे उपयोग्य छीरका रंग गुणाला जाय ॥ ४ ॥

वनस्पतिके माता पिता ।

इस सूक्तके मूलिक मंत्रसे वनस्पति के मातापिताओंका वर्णन है अर्थात् दो वनस्पतिमालाके संयोगसे वनस्पति बनी है । दो पौधोंके वनस्पति बोझसे ही वनस्पति विकसित

गुणमंत्रसे पुन बनती है, यह उदाहरण ज्ञानेय होने लायक है । कुष्ठरोगका इयामा आसुरी वनस्पति इस प्रकार बनाती जानी है । छीरके रंगका सुधार करनेवाली दो औषधियोंके संयोगसे यह रंग मा बनती है । जो आकारार्थ बोधा है उसे वनस्पति

नाम माता और जिसकी शाखा उसपर विपश्चयी या जोड़ी जाती है वह उसका पिता तथा उस संयोगसे जो नयी वनस्पति बनती है वह उस दोनोंका पुत्र है । पाठ १६४ उद्यान-विद्याको इध मंत्रमें देखें । (मंत्र ३)

सरूप-करण ।

शरीरके वास्तविक रंगके समान कुश्रोगके रंगानके चमड़ेका रंग बनाना "सरूपकरण" का तात्पर्य है । आगुरी श्यामा वनस्पति यह करती है इसीलिये कुश्रोगपर इसका उपयोग होता है । (मं. २-३)

वनस्पतिपर विजय ।

"युद्धसे जीती हुई आगुरी वनस्पति औषध बनती है ।" यह प्रथम मंत्रका कथन विशेष मननीय है । वैद्यको प्रत्येक दवापर इस प्रकार प्रभुत्व संपादन करना पड़ता है । अर्थात् उसके हाथमें अनेकी आवश्यकता है । वनस्पतिक गुणधर्मोंमें पूर्ण परिचय और उनका उपयोग करनेका उत्तम ज्ञान वैद्यको होना आवश्यक है । नहीं तो औषध सिद्ध नहीं कहा जा सकता । (मं. १)

सूर्यका प्रभाव ।

सूर्यमें नाना प्रकारके बीज हैं । वे बीज किण्वों द्वारा वनस्पतियोंमें जाते हैं । वनस्पतिद्वारा वे ही बीज प्राप्त होते हैं और रोगनाश अथवा हलार्थन करते हैं । इस प्रकार यह सब

सूर्यका ही प्रभाव है । (मं. १)

सूर्यसे बीज-प्राप्ति ।

सूर्यसे नाना प्रकारके बीज प्राप्त करनेकी यह सूचना बहुत ही मनन करने योग्य है ।

सूर्य आत्मा जगत्स्वस्त्युपध । (ऋग्वेद १ । ११५ । १)

"सूर्य हा स्थावर जंगम का आत्मा है " यह वेदका उपदेश भी वहाँ मनन करना चाहिये । जब सूर्यसे नाना प्रकारसे बीज प्राप्त करके हम अधिर बीजवान हो जायेंगे तभी यह मंत्रभाग हमारे अनुभवमें आ सकता है ।

जैसे शरीर सूर्यकिरणोंमें विचलनेसे और सूर्यकिरणोंद्वारा अपनी चमड़ी अच्छी प्रकार तगनेसे शरीरके अंदर सूर्यका ज्ञान अंचरित होता है इसी प्रकार सूर्यसे तथा हुआ वायु प्राणायामसे अंदर लेनेके अभ्यासमें क्षययोगमें भी बड़ा लाभ पहुँचता है । इस प्रकार कई रीतियोंसे हम सूर्यमें बीज प्राप्त कर सकते हैं । पाठक स्वयं इसका अधिक विचार करेंगे तो उनसे बहुत लाभ प्राप्त हो सकता है ।

बैद्योंकी जितनी है, कि वे खोजसे इसका वनस्पतिकी प्राप्त की और उसके योगसे कुष्ठ रोग दूर करें । तथा सूर्यमें अनेक बीज प्राप्त करनेके उपाय दूँदक निकाल दें और उनका उपयोग आरोग्य बचानमें करते रहें ।

शीत-ज्वर-दूरीकरण सूक्त ।

(२६)

(ऋषिः भृगुः । देवतः-अग्निः, तक्मा ।)

यदुमिरापो अर्दहत्त्रविश्य यथाकृण्वन् धर्मपृतो नमोसि ।

तत्र त आहुः परमं जुनित्रं स नः संविद्वान् परि वृंघि तक्मन् ॥ १ ॥

यद्विर्षिट्ति वामिं शोचिः शोकल्लेषि यदि वा ते जुनित्रम् ।

नृहृन्नामामि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंघि तक्मन् यदि शोको यदि वाऽभिज्ञोको यदि वा रात्रो यकृत्स्वामिं पुत्रः । ॥ २ ॥

नृहृन्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृंघि तक्मन् ॥ ३ ॥

नमः शीतार्थं त्वमने नमो ह्यार्यं शोचिषे कृणोमि ।

यो अन्येद्युर्हमप्युद्युभ्योति तृतीयकाय नमो अस्तु त्वमने

॥ ४ ॥

अर्थ—(यत्र) जहाँ (धर्म-धृतः) धर्मका गलन करनेवाले सदावागी लोग (नमोऽस्ति कृण्वन्) नमस्कार करते हैं, वहाँ (प्रविश्य) प्रवेश करके (यत् शनि) जो अग्नि (आपः अद्भुत) प्राणधारक जलतत्त्वमें जगता है (यत्र) वहाँ (ते परमं जानित्री) तेरा परम जन्म स्थान है, ऐसा (आहुः) कहे हैं । हे (त्वमन्) कष्ट देनेवाले उवर ! (सः संविद्वान्) जानता हुआ तू (नः परि वृन्धि) हमसे छेड़ दे ॥ १ ॥ (यदि अर्चिः) यदि तू उवालाह्वय, (यदि वा शोचिः अस्ति) अथवा यदि तापह्वय हो, (यदि ते जानित्री) यदि तेरा जन्म स्थान (शकश्य इति) अंगप्रसंगमें परिणाम करता है, तो तू (ऋद्धः नाम अस्ति) ऋद्ध [अर्थात् गति करनेवाला] इस नामका है । अतः हे ! हरितस्य देव त्वमन् । पालक रोगको उत्पन्न करनेवाले उवर देव ! (सः संविद्वान्) वह तू यह जानता हुआ (नः परि वृन्धि) हमें छोड़ दे ॥ २ ॥ (यदि शोकः) यदि तू पीडा देनेवाला अथवा (यदि अभि शोक) यदि शोक पीडा उत्पन्न करनेवाला हो, (यदि वरुणस्य पुत्रः अस्ति) किंवा वरुण पुत्रका तू पुत्र ही क्यों न हो, तुम्हारा नाम ऋद्ध है । हे पालक रोगके उत्पन्न करनेवाले उवर देव ! तू हम सबको यह जन्मका छोड़ दे ॥ ३ ॥ (शीतार्थं त्वमने नमः) शीत-उवरके लिये नमस्कार, (ह्यार्यं शोचिषे नमः कृणोमि) रुद्धे तापको भी नमस्कार करता हूँ । (य. अन्येद्यु) जो एक दिन छोड़कर आनेवाला उवर है, (त्वमद्यु) जो दो दिन आनेवाला (अभ्येति) होता है, जो (तृतीयकाय) निहारी है, उस (त्वमने नमः अस्तु) उवरके लिये नमस्कार होवे ॥ ४ ॥

आचार्य-धार्मिक लोग जहाँ प्राणधामद्वाग पहुँचते और प्राणशक्ति महरार जानकर उसको प्रणाम भी करते हैं उस प्राणके मूलस्थानमें पहुँचकर वह उवरका अग्नि प्राणधारक आपु तराको जला देता है । यही इस उवरका परम स्थान है । यह जानकर इससे मनुष्य बचे ॥ १ ॥ यह उवर बहुत ओखी तपिश-वशनेवाला हो किंवा अंदर ही अंदर तपनेवाला हो, किंवा हरएक अंग-प्रसंगमें कमबोर करनेवाला हो, वह हरएक जीवनके अणुको दिला देता है इसलिये इसको " ऋद्ध " कहते हैं, यह पांडुरोग अथवा जामिला रोगको उत्पन्न करता है, यह जानकर ह एक मनुष्य इससे अपना बचाव करे ॥ २ ॥ कई उवर सबसे अंगमें दर्द उत्पन्न करते हैं और कई संपूर्ण अंगप्रसंगमें पीडा उत्पन्न करते हैं, जलराश बरगसे हवारी उत्पत्ति होती है, वह हरएक अंगप्रसंगको दिला देता है और पालक रोग शरीरमें उत्पन्न कर देता है । इसलिये हरएक मनुष्य इनसे बचता रहे ॥ ३ ॥ शीत उवर, बृद्ध उवर, प्रतिदिन आनेवाला, एकदिन छोड़कर आनेवाला, दो दिन छोड़कर आनेवाला, तीसरे दिन आनेवाला ऐसे अनेक प्रकारके जो उवर हैं उनको नमस्कार ही अर्थात् ये हम सबसे दूर रहे ॥ ४ ॥

आग्निः आपः अद्दह ॥ (मंत्र १)

“यद् उवर जावनरसरो हो जला देता है।” इसी कारण क्वासे शरीरका शक्ति कम होती है। आर्त्तवत्त्व शणशक्ति का धारण करनेवाला है। (आधामयः) आर्त्तवत्त्वमय प्राण है यह उपनिषदोंका कथन है। प्राणक आध्रयका शरीरस्थ आर्त्तवत्त्व इस उपाके द्वारा जल जाता है, इसी कारण उवर आग्निपर जीवन शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण इस उवरको पीलक रोगका उत्पादक कहा है। देखिये—

हरितव्य देव ! (मंत्र २, ३)

“पीलापन उत्पन्न करनेवाला” पीला निरुद्ध बननेवाला, पीलकरोग, बामिला, पांडुरोग, जीवनशक्ति ध्वस्त करनेवाला। इन सबका उत्पादक उवर है। यह उवर इतने भयानक रोगोंमें उत्पादक करनेवाला है, इसीलिए इससे मनुष्यको अपने आग्रह बचाव करना चाहिये। यह उवर प्राणको मूल स्थान पर हमला करके उठाकर कमजोर करता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

यदमिरापो अद्दहत् ध्विद्वय यनाकृष्वन्
धर्मधुयो नमसि ॥ (मंत्र १)

“जहां धार्मिक लोग जाकर मनन करते हैं वहां प्रविष्ट होकर यह आग्नि-उवर-प्राण धाक जीवनरसको उठाता है।” योमादि साधनद्वारा धार्मिक लोग समाधि अवस्थामें हृदय कमलमें प्रविष्ट होते हैं, उसी हृदयमें जीवनरस रस है, वही रस उवरसे जलता है। अर्थात् उवरका हृदयपर बहुत दुष्ट परिणाम होता है, जिससे बहुत कमजारी भी उत्पन्न होती है। इसी कारण यह उवर पीलक रोग अथवा पांडुरोग उत्पन्न करता है ऐसा मूफके द्वितीय मंत्रमें कहा है। यह हिमज्वर जिवनो आरंभक “मेरीया” कहा जाता है बहुत बहुत ही हानिकारक है। इसीलिए उसका ह्रास प्रयत्न दूर रहना चाहिये, यही निम्नलिखित मंत्रभागमें सूचित किया है—

स नः संनिद्रान् परिमुंषिष स्रजन् ॥ (मंत्र १, २, ३)

“यह बात जानता हुआ उवर दूर रखा जाय” अर्थात् उवरके कारण दूर करके उसका हमला मनुष्यपर न हो इस विषयमें योग्य प्रयत्न किये जाय। उवर आनेके बाद उसके प्रतिधरका यत्न करना चाहिये इसमें किंसाधा विवाद नहीं हो सकता, परंतु इस संध्यामें वेद कही उपदेश देना चाहता है, कि अपने पाली और प्रामथी व्यवस्था मनुष्य इस प्रकार रखे कि यह मनेरिया उवर आवेगी न और उसके निवारणके लिये उपचार पीनी न पड़े। क्योंकि यह विषय इतना घातक है कि

एक घात आया हुआ हिमज्वर अपना परिणाम स्थिर रूपसे शरीरमें रख जाता है और उसके निवारणके लिये वर्षोंतक और बड़े व्ययसे यत्न करने आवश्यक होते हैं।

हिमज्वरके नाम ।

इस सूक्तमें हिमज्वरके निम्नलिखित नाम दिये हैं—

१. हुड्ड-गति उत्पन्न करनेवाला, शरीरमें कंप उत्पन्न करनेवाला, उवरका शक्ति जिस समय प्रारंभ होता है, उस समय मनुष्य कांपने लगता है। मराठी भाषामें इस हिमज्वरका नाम “हुडहुडा ताप” है, यह शब्द भी वैदिक “हुड्ड” शब्दके साथ मिलता जुलता है। यही शब्द विभिन्न इत्सुलिखित पुस्तकोंमें निम्नलिखित प्रकार लिखा हुआ मिलता है—हुड्ड, हुड्ड, हुड्ड, हुड्ड, हुड्ड, हुड्ड, हुड्ड, हुड्ड। अथर्ववेदकी पिण्लाद शाखा की संहितामें “हुड्ड” पाठ है। यह “हुड्ड” शब्द मराठी “हुडहुडा” शब्दकेही सदृश शब्द है। (मंत्र २, ३)

२. दग्धिः—ओ उवर शक्ति लग कर प्रारंभ होता है ॥ यह प्रतिदिन आनेवाला समझना उचित है। (मंत्र ४)

३. अन्वेष्टुः—एक दिन छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

४. उन्मेषुः—दूसरे दिन आनेवाला अथवा दा दिन छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

५. स्तृतीयक—तीसरे दिन आनेवाला किवा सोन दिन छोड़कर आनेवाला अथवा नियत दिन बीचमें छोड़कर आनेवाला। (मंत्र ४)

६. स्रजम्—जीवन दुःखमय बनानेवाला उवर।

७. अर्चिः—अग्नि की ज्वालाएं भटकेके समान जिसकी उष्णता बाहर बहुत होती है। (मंत्र २)

८. शोचिः, शोकः—जिसमें शरीरमें पीडा होती है। (मंत्र २)

९. शकल्य-हृदि—अंग-प्रत्यंग अलग अलग होनेके समान विभिलता आती है। (मंत्र २)

१०. अमिषोक्तः—जिसमें सब शरीर घटा दहं करता है। (मंत्र ३)

इन नामोंका विचार करनेसे इस उवरके स्वरूपका पता लग सकता है और निश्चय होता है कि यह वर्णन शीतज्वर अर्थात् मनेरिया आगकन कहते हैं इसका ही है।

परके पाप जल छड़ता न रहे, परके पापकी भूमि अच्छी रहे और किसी भी स्थानमें इस रोगकी उत्पत्ति होने योग्य परिस्थिति न हो, इसी प्रकार प्राममें और प्रामके आसपास भी

स्थान योग्य और आरोग्य कारक हों, जिससे यह रोग उत्पन्न ही न होगा । क्योंकि यह ज्वर जलके दलदलसे उत्पन्न होता है । इसीलिये “ जल देवताका पुत्र ” इसका एक नाम इसी सूक्तमें दिया है । यदि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे तो उनको हमसे बचनेका उपाय ज्ञात हो सकता है । आशा है कि वे इसका विचार करेंगे और अपने आपको इससे बचावेंगे ॥

नमः शब्द ।

इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें “ नमः ” शब्द तीनवार आया

है । यहाँका यह नमनवाचक शब्द भ्रातक मनुष्यको दूर रखनेके लिये किये जानवाले नमस्कारके समान उस ज्वरसे बचनेका भाव सूचित करता है ऐसा हमारा ख्याल है । कौशोमें “ नमस्कृ, नमस्करी ” शब्द औपधियोंके भी वाचक हैं । यदि “ नमः ” शब्दसे किसी औपधीका बोध होता हो तो वह खोज करवा चाहिये । “ नमः ” शब्दके अर्थ “ नमस्कृ, अन्न, शस्त्र, दण्ड ” इतने प्रसिद्ध हैं, “ नमस्करी, नमस्कार, नमस्करी ” ये शब्द औपधियोंके भी वाचक हैं । अतः इस विषयका अन्वेषण वैय लोग करें ।

सुख प्राप्ति सूक्त ।

(२६)

(ऋषिः—ब्रह्मा । देवताः— इंद्रादयः)

आरे ३ सावस्मदस्तु हेतिर्देवास्तो असत् । आरे अश्मा यमस्यय ॥ १ ॥
सखासावस्मर्षमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः सविता चित्ररांघाः ॥ २ ॥
यूयं नः प्रवतो नपान्मर्हतः सूर्यस्त्वचसः । शुभं यच्छाय सुप्रथाः ॥ ३ ॥
सुपुदतं मृदतं मृदपां नस्तनूम्यो मयस्तोकेर्मयस्कृधि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (देवास्तः) देवो ! (अस्ती हेतिः) यह पद्य (असात् आरे अस्तु) हमसे दूर रहे । और (यं अस्वय) भित्ति तुम फैलते हो यह (अश्मा आरे असत्) पथर भी हमसे दूर रहे ॥ १ ॥ (अस्ती रातिः) यह दानशील, (भगः) धनयुक्त सविता, (चित्ररांघः इन्द्रः) विशेष ऐश्वर्यसे युक्त इन्द्र हमारा (सखा अस्तु) मित्र होवे ॥ २ ॥ हे (प्रवतो नपाय) अपने आपका रक्षण करनेवालेको न गिरानेवाले हे (सूर्यस्त्वचसः मरुतः) सूर्यके समान तेजस्वी मरुत देवो ! (यूयं ' तुम (नः) हमारे लिये (' सप्रयः शर्म) विस्तृत सुख (यच्छाय ' दो ॥ ३ ॥ (सुपुदतं) तुम हमें आश्रय दो, (मृदतं) हमें गुणोंको, (नः) तनूम्यः मृदय) हमारे शरीरोंको आरोग्य दो तथा (तोकेर्मयः मयः कृधि) बालबच्चोंके लिये आनन्द करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे देवो ! आपका दंडरूप पथर आदि हमारे ऊपर प्रयुक्त होनेका अशुभ न आवे, अर्थात् हममें ऐसा कोई कार्य न हो कि जिसके लिये हम दण्डके भागी बनें ॥ १ ॥ इन्द्र सविता भग आदि देवगण हमारे सहायक हों ॥ २ ॥ मरुत देव हमारा गुण बढावें ॥ ३ ॥ सब देव हमें उत्तम आश्रय दें, हमारे शरीरका आरोग्य बढावें, हमारे मनकी प्राप्ति सुदृढत करे, हमारे बाल बच्चोंको कुशल रखें और सब प्रकारसे हमारा आनंद बढावें ॥ ४ ॥

देवोंसे मित्रता ।

इन्द्र, सविता, भग, मरुत आदि देवोंसे मित्रता करनेसे तुच्छ मिलता है और उनके प्रतिद्वंद्व आचरण करनेसे दुःख प्राप्त होता है । इसलिये श्रम मंत्रमें प्रार्थना है कि उन देवोंका दंड

१० (म. घ. भा. कं. १)

हमपर न पड़े, और हमसे मंत्रमें प्रार्थना है कि वे हमसे दूर हमारे मित्रः हमारे सहायक बनकर हमारा सुख बढावें, अपना हमारा ऐसा आचरण बने कि वे हमारे सहायक बनें और शिरोभी न हों । देखिये इसका आशय क्या है—

१ सविता-सूर्यदेव है, यह स्वयं मित्रता करनेके लिये हमारे पास नहीं आता है, परन्तु सवरे उदय होनेके समयसे अपना हाथ हमारे पास भेजता है और हमसे मिलना चाहता है, परन्तु पाठक ही ख्याल करें कि हम अपन आपको तग मकानोंमें बंद रखते हैं, और सविता देवके पवित्र हाथक पास जाते ही नहीं। सूर्य ही आगोम्य की देवता है, उसके साथ इस प्रकार विरोध करनेसे उसका वज्रापात हमपर गिरता है जिससे नाना रोगके दु खोंमें गिरना आवश्यक होता है।

२ मरुत्व नाम वायु देवता का है। यह वायुदेव भी हमारी सहायता करनेके लिये हरएक स्थानमें हमारे पाहलेसे ही उपस्थित है, परन्तु हम सुधी हवा सेवन नहीं करते हैं, परिशुद्ध वायु हमारे घरों और कमरोंमें आवे ऐसी व्यवस्था नहीं करते, इतना ही नहीं परन्तु वायुको बिगाड़नेके अनत साधन निर्माण करते हैं। इत्यादि कारणोंसे वायु देवताका क्रोध हमपर होता है और उनका वज्रापात हमें सदन करना पड़ता है। जिससे विविध बीमारियां वायुके क्रोधसे हमें सता रही हैं।

इसी प्रकार अग्न्याग्न्य देवोंका सङ्घ जानना उचित है। इस विषयमें अथर्ववेद स्वाग्रण्य का० १ सूक्त १, ९ देखिये, इन सूक्तोंके स्पष्टीकरणके प्रसङ्गमें देवताओंसे हमारे सम्बन्धका वर्णन किया है। इसलिये इन सूक्तके साथ उन सूक्तोंका समय अवश्य देखना चाहिये।

जिस प्रकार ये षड् देवता ए हमारे मित्र बनकर रहनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और सुख बढ सकता है, उसी प्रकार उनके प्रतिनिधि-जो हमारे घरारमें स्थान स्थानमें रहे हैं उनके मित्र बनाकर रखनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है, इस विषयमें अब योगसा विवरण देखिये—

१ धृतिता सूर्य देव आकाशमें है, उसीका प्रतिनिधि-अग्रहण्य एव हमारी आँखमें तथा नाभिस्थानके सूर्यचक्रमें रहा है। प्रमथ. इनके काम दर्शनशक्ति और पाचनशक्तिके साथ सम्बन्धित हैं। पाठक यहां अनुभव करें कि ये देव यदि हमारे प्रमथ बनकर रहें तो ही स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है। यदि आँख किसी समय भीखा देने, अथवा रूपके विषयमें नादेन हाकर हान मार्गमें इस चक्रारको ले चले, तो उससे प्राप्त आनवाली शरीर का कष्टमय दशा की कल्पना पाठक ही कर सकते हैं। इसी प्रकार पेटकी पाचन शक्ति ठीक न रहनेसे

कितने रोग उत्पन्न हो सकते हैं, इसका ज्ञान पाठकोंसे छिपा नहीं है। अर्थात् शरीरस्थानीय सूर्य सविताके अग्र रूप देव के सखा बनकर न रहनेसे मनुष्यकी आपत्तियोंकी संख्या कितनी बढ सकती है इसका पाठक ही विचार करें।

२ इसी प्रकार मरुत्व वायु देव फेफड़ोंमें तथा शरीरके नाना स्थानोंमें रहते हैं। यदि उनका कभी प्रकोप हो जाय तो नाना विद्यारोंकी उत्पत्ति हो सकती है।

इसी प्रकार इन्द्रदेव अंतःकरणके स्थानमें तथा अग्न्याग्न्य देव शरीरके अग्न्याग्न्य स्थानोंमें रहते हैं। पाठक विचार करके जान सकते हैं कि उनके “सखा” बनकर रहनेसे ही मनुष्य मानकी स्वास्थ्य और आनन्द प्राप्त हो सकता है। इनके विरोधी बननेसे उ सुख पापाकार नहीं होगा।

पहले मन्त्रमें “देवोंके दृग्गृहे दूर रहने की” और दूसरे मन्त्रमें “देवोंसे मित्रता रखने की” सूचनाका इस प्रकार विचार पाठक करें और यह परम उपयोगी उपदेश अपने आचरणमें डालनेका प्रयत्न करें और परम आनन्द प्राप्त करें। तीसरे मन्त्रका “इसी आचरणसे विस्तृत सुख मिलता है,” बढ कपन अब सुरुष्ट ही हुआ है।

चतुर्थ मन्त्रमें जो कहा है कि “ये ही देव हमें सहाय देते हैं, हमें सुखी रखते हैं, हमारे शरीरका आरोग्य बढाते हैं और बालबच्चोंकी भी आनन्दित रखते हैं,” यह कथन अब पाठकोंकी भी दितके प्रकाशके समान प्रलक्ष हुआ होगा। इसलिये स्वास्थ्य और सुख ही मांसिके इस सच्चे मार्गका अवलंबन पाठक करें।

विशेष सूचना।

विशेषका पाठक इस बातका अधिक ख्याल रखें, कि वेद सुख स्वास्थ्य और आनन्दके प्राप्त करनेके लिये घनादि साधन नहीं बताता है, प्रायुत “जल, वायु, सूर्य आदि के साथ सख्य करो” यही साधन बता रहा है। यह हरएक कर सकता है। यदि घन किसीको मिले या न भा मिले, परन्तु “जल वायु और सूर्य प्रकाश” तो हरएक को मिल सकता है। इस स्वास्थ्यके अति सुलभ साधनका पाठक अधिक विचार करें, विश्वकी इस शैलीका अवश्य मनन करें और उपदेशके अनुसार आचरण करके लाभ उठावें।

विंजयी स्त्री का पराक्रम ।

(२७)

(-ऋषिः-अथर्वा । देवता-इन्द्राणी)-

अमूः पारे पृदाकंस्त्रिपत्ता निर्जरायवः ।

तासौ जराधुभिर्व्यमक्ष्याः ३ वपि व्ययामस्यघायोः परिपान्थिनः ॥ १ ॥

विपूज्येत् कृन्तुती पिनार्कामिव विभ्रती । विष्वक्पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥ २ ॥

न बहवः समशकृन्नाभिका अभिदाद्युषुः । वेणोरद्रा इवाऽभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ३ ॥

मेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पूणतो गुहान् । इन्द्राण्येति प्रथमाजीतामुपिता पुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अमूः पारे) वह पारमें (निर्जरायवः) शिथिल निकली हुई (त्रि-पत्ता) तीन गुणा सात (पृदाकः) सर्पिणियोंके समान सेनाएं हैं । (तासौ) उनकी (जराधुभिः) केंचुलियोंके (व्ययं) इन (अघ—आयोः परिपान्थिनः) पाप, दुष्टशत्रुकी (अक्षयौ) दोनों आखें (जपि व्ययामसि) ढके देते हैं ॥ १ ॥ (पिनार्कं इव विभ्रती) घनुष्य धारण करनेवाली, और शत्रुको (कृन्तुती) काटने वाली संतरेना (विपुनी पतु) चारों ओर आगे बढ़े । जिससे (पुनर्भुवा) फिर इकट्ठी हो हुई शत्रुसेनाका (मनः विष्वक्) मन इधर उधर हो जावे । और उससे (अघायवः) पापी शत्रु (असमृद्धा) निर्धन हो जावे ॥ २ ॥ (बहवः न समशकृन्) बहुत शत्रु, भी उनके सामने ठहर नहीं सकते । फिर (अर्भकाः) जो बालक हैं वे (न अभि दाद्युः) धैर्यही नहीं कर सकते । (वेणोः इन्द्राः इव) बासके अंडरोंके समान (अभितः) सब ओरसे (अघायवः) पापीलोग (असमृद्धाः) निर्धन होंगे ॥ ३ ॥ हे (पादौ) दोनों पांवों । (मेतं) आगे बढ़ो, (प्र स्फुरतं) फुरती करो, (पूणतः गुहान्) संतोष देनेवाले चरोंके प्रति हमें पहुंचाओ । (अजीवा) बिना जीवों, (असुपिता) बिना दूदी हुई और (प्रथमा) मुखिया बनी हुई (इन्द्राणी) महारानी (पुरः पतु) सबके आगे बढ़े ४ ॥

भावार्थ—केंचुलीसे बाहर आयी हुई सर्पिणियोंके समान बचल सेनाएं तीन गुने सात विभागोंमें विभक्त होकर युद्धके लिये छिद्र हैं, उनकी हलचलोंसे हम सब पापी शत्रुओंकी आखें बंद कर देते हैं ॥ १ ॥ छत्र धारण करनेवाली और शत्रुको काटनेवाली शीतकी सेना चारों दिशाओंमें आगे बढ़े, जिससे शत्रुसेनाका मन तितर बितर हो जावे और सब पापी शत्रु निर्धन हो जावे ॥ २ ॥ ऐसी छत्र शीतकी सेनाके सम्मुख बहुत शत्रु भी ठहर नहीं सकते फिर कमबोर बालक कैसे ठहर सकेंगे ? बासके बीमल और अशक्त अंडरके समान चारों ओरसे पापी शत्रु घनहीन होकर नाशको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ विजयी अपराजित और न छुटी गई बाँर स्त्री महारानी मुखिया बनकर आगे बढ़े, इतर लोग उसके पीछे चले, हरएक बाँरके पाँव आगे बढ़ें, शरीरमें फुली चडे और सब लोग संतोष मननेवालोंके पर्यंतक पहुंच जाय ॥ ४ ॥

इन्द्राणी ।

“ इन्द्र ” शब्द रामाका बाबक है जैसा-नेन्द्र (मनुष्यों-का रामा) एनेन्द्र (मृगोंका राजा), सनेन्द्र (पाशियोंका-रामा) इत्यादि । केवल इन्द्र शब्द भी रामाका ही बाबक है, और “ इन्द्राणी ” शब्द इन्द्रकी रानी, रामाकी रानी, यक्षरानी, एनी ” का बाबक है । यह इन्द्राणी गैलाथी शेरक देवी है यह

सात वैशिश्व संश्लेष कही है देखिये—

इन्द्राणी के सेनाएं देवता । मे- सं० ११/१/११
“ इन्द्राणी के-चारी देवता है । ” बसोकि इसकी देवताके
वैदिक अथवा पण्डित दिसाने और विश्व प्राप्त करते हैं ।

वीर स्त्री ।

“ इन्द्राणी अर्थात् एनी सेनाकी मुखिया बनकर सेनाके

प्रोत्साहन देती हुई आगे चले, हरएकके पाँव आगे बढ़े, हाँ एकदम मन उत्साहसे युक्त रहे, संगीत बढाने वाले सबनेकि घरोंमें ही रोग जाय । ” परन्तु जो लोग सलोकको कम करने वाले, उत्साहका नाश करने वाले, और मनकी आशाका घात करनेवाले हो उनका पाम कोई न जावे, क्योंकि ऐसे लोग अपने हीन भावसे मनुष्योंको निरुत्साहित ही करते हैं । यह मंत्र ४ का भाव विचार करने योग्य है ।

जिस राष्ट्रमें स्त्रियाँ भी ऐसी शूर और दक्ष होंगी वह राष्ट्र सदा विजयी ही होगा इसमें क्या संदेह है ? जिस देश में स्त्रियाँ सेनानी बनी सकेंगी उस देशके पुरुष कितने शूर और दैवी भी होंगे । क्या ऐसा हीर ज़िंको कोई हीन मनवाला आदमी धमका सकता है और ऐसी शूर स्त्रियोंको किसी क्षणपर कोई बेइज्जती कर सकता है । इसलिये आत्यसमान रखनेका इच्छा करने वालोंको उचित है, कि वे स्वयं मर्द बनें और अपनी ज़िंको भी ऐसी शिक्षा दें कि वे भी शूरवीर बनकर अपने समान ही रहना कर सकें ।

“ हाथों चात्र धारण करती हुई, शत्रुको काटती हुई आगे बढ़े, जिसका वेग देखकर शत्रुका मन उत्साहहित होवे और शत्रु निर्भय अर्थात् परास्त हो जावे । ” यह त्रितीय मन्त्रका भाव भी चतुर्थ मन्त्रके साथ देखने योग्य है । क्योंकि यह मन्त्र भी वीर आका पराक्रम ही बता रहा है । यह सेना का वर्णन करता हुआ भी वीर छोटा वर्णन करता है । (मन्त्र)

विराजिंको उपमा केंचुलीसे निरखी हुई सर्पिणीकी इस सूक्तमें भी है । स्वभावतः सर्पिणी बड़ी तेज रहती है और अति कुतिल शत्रुपर हमला करती है । परन्तु जिस समय वह केंचुलीसे बाहर आती है उस समय अतिवेगशी और अतिचपल रहती है क्योंकि इस समय यह मन्त्रजीवनसंयुक्त होती है । वीर जो ऐसी ही होनी है । वीर स्वभावतः चपल होनी है, परन्तु जिस समय कार्यवश राष्ट्रीय आपत्तिले प्रेरित होकर, आत्मसमानकी रक्षाके लिये कोई वीर वी अपने अतृप्य रूपसे केंचुलीसे बाहर आती है, उस समय उसकी तेजस्विताका वर्णन करना देती है । वह उस समय सचमुच सर्पिणीकी आवृत्ति समझनी हुई, बिजलीके समान तेजस्विनी बनकर वीर सेनासंगोंको प्रेरित करती है । उस समयका उत्साह वीर पुरुष ही सम्मानसे जान सकते हैं । “ उसके तेजसे शत्रुकी आँखें ही अभी धन जाती है ” और उसके सब शत्रु नि सत्त्व हो जाते हैं । (मंत्र १)

जहाँ ऐसी विधापनाई समर्थ है उन लोगोंके सामने बड़े बड़े शत्रु भी डर नहीं सकते, फिर अल्प शक्तिवाले कमजोर मनुष्योंकी बात ही क्या है ? पासके शत्रुओंके समान उनके शत्रु नष्टश्रेष्ठ ही हो जाते हैं । ” (मन्त्र २)

शत्रुवाचक शब्द ।

इस सूक्तमें शत्रुवाचक कुछ शब्द हैं उनका विचार यहाँ करना आवश्यक है—

१ अघायु = आयु भर पाप कर्म करनेवाला ।

२ परिपन्थि = बटमार, घुरे मार्गसे चलनेवाला ।

पापीलोग ये हैं और इनके घुरे आचरणके कारण ही वे शत्रुत्व करने योग्य हैं । “ असंयुक्ताभ्यायव ” यह शब्द प्रयोग इस सूक्तमें दोबारा आया है । “ पापी समुद्धिसे रहित होते हैं । ” यह इच्छा भाव है । पापसे कभी मुक्ति नहीं होगी । पापसे मनुष्य गिरता ही जाता है । यह भाव इसमें देखने योग्य है । जो मनुष्य पाप कर्म द्वारा धनाश्रय बनना चाहते हैं उनको यह मन्त्र भाग देखना योग्य है । यह मन्त्र उपदेश दे रहा है कि “ पापी कभी उन्नत नहीं होगा, ” यदि किसी अवस्थासे वह धनवान् हुआ, तो भी वह उत्तम मन उसके नाशका ही होवे नि संदेह बनेगा । तत्पर्य परिणामकी दृष्टिसे वह स्पष्ट ही समझना चाहिये कि पापी लोग अवश्य ही नाशको प्राप्त होंगे ।

सैन गुणा सात ।

सेनाके सात गुण सात विभाग हैं । रथयोधी, गजयोधी, अश्वयोधी, पदाती, दूर्गयोधी, जलयोधी तथा कूटयोधी ये सात प्रकारके सैनिक होते हैं । प्रत्येकमें अधिकारी, प्रत्यक्ष युद्धकारी, और सहायक इन सात भेदोंसे सात गुणा सात सैनिक होते हैं ।

निर्जरायु ।

“ जरायु शब्द शिरी, जेरीका वाचक है पान्द्रु यहाँ स्त्रियाँमें प्रयुक्त है । यहाँ इसका अर्थ (जरा+आयु) वृद्धावस्था अथवा जर्णता किंवा पक्षाघात, तथा आयुष्य । (नि+जरा-आयु) जो जीर्णता, पक्षाघात, वृद्धावस्था अथवा आयुकी प्रवृत्ति करने वाले होते हैं, अर्थात् जो अपने जीने मरनेकी प्रवृत्ति न करने लड़ते हैं, जो अपनी अवस्थाकी तथा सुखदुःख की प्रवृत्ति न करते हुए अपने यशके लिये ही लड़ते रहते हैं उनको “ निर्जरायु ” अर्थात् “ जरा और आयुके विचारसे मुक्त ” कहते हैं । जीवित की आशा छोड़कर लड़नेवाले धैरिक ।

इस सूक्तके मन्त्र वीरा वीर विषयक तथा सेना विषयक वर्णन करते हैं, इसलिये ये मन्त्र विशेष मननके साथ पढ़ने योग्य हैं ।

तथा इसमें कई शब्द द्वेय अर्थ बताते वाले भी हैं जेहा कि ऊपर वीर पुरुष उत्पन्न करेंगे और अपना यश बढ़ानेका परम पुरुषार्थ बताया है । इन सब बातोंका विचार करके यदि पाठक इस करेंगे ।

स्वतंत्रता अभ्यास करेंगे तो उनको बहुत बोध मिल सकता है । यह सूक्त “स्वस्त्ययन गण” का है इसलिये इस गणके आधा है कि इस प्रकार पाठक अपने राष्ट्रमें वीर बनी और अन्य सूक्तोंके साथ पाठक इतका विचार करें ।

दुष्ट नाशन सूक्त ।

(२८)

(ऋषिः-चातनः । देवता-स्वस्त्ययनम् ।)

उप प्रागाद्वैवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः । दहन्नप द्याविनो यातुधानान्किमीदिनः ॥ १ ॥
प्रति दह यातुधानान्प्रति देव किमीदिनः । प्रतीचीः कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्यः ॥ २ ॥
या शशाप धर्षनेन याधं मूर्मादधे । या रसस्य हरणाय जातमारेभे तोकमत्त सा ॥ ३ ॥
पुत्रमेषु यातुधानीः स्वसारमुत नृप्यम् ।
अथा मिथो विकेश्यो ऋ वि मता यातुधान्यो ऋ वि तृक्षन्तामराय्यः ॥ ४ ॥

अर्थ- (अमीर चातनः) रोगोंको दूर करनेवाला और (रक्षोह) राक्षसोंका नाश करनेवाला अग्निदेव (किमीदिनः) सदा भूशक्ति (यातुधानम्) छुट्टी को तथा (द्याविनः) दुमुखे कार्टियोंको (अप दहन्) जलाता हुआ (उप प्रगात्) पास पहुंचा है ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! (यातुधानम् प्रति दह) छुट्टी को जलादे तथा (किमीदिन प्रति) सदा भूशक्ति भी जलादे । हे (कृष्णवर्तने) कृष्ण मार्गवाले अग्निदेव ! (प्रतीचीः यातुधान्यः) सुंभु आनेवाली छुट्टी प्रियोंकी भी (संदह) ठीक जला दो ॥ २ ॥ यह दुष्ट छुट्टी प्रियां (धारणेन शशाप) धारण धार देती हैं, (या अधं मूर् मादधे) जो पाप ही प्रारंभके स्वीकारती हैं, (या रसस्य हरणाय) जो रस धानिके लिये (जातं योर्क भारेभे) जन्मे हुए बालकको खाना आरंभ करती हैं और (सा अन्तु) वह पुत्र खाती है ॥ ३ ॥ (यातुधानीः) शरीर की (पुंभे अन्तु) पुत्र खाती है । (स्वसारं उत नृप्यम्) बहिन को तथा मानी को खाती है । (अप) और (विकेश्यः) केश पकड़ पकड़ कर (मिय. शरीर), आपसमें संग्रहता है । (अराय्यः यातुधानीः) दानभाव-रहित पातकी स्त्री (विवृक्षन्तां), आपसमें मार गंद करती हैं ॥ ४ ॥

आचार्य-रोग दूर करनेमें समर्थ अर्थात् उत्तम श्रेय, आशुत मावधे दाने वाना, अग्निदेव समान तेजस्वी, उपदेशक स्वामी छुट्टी तथा कपटियोंके दूर करता हुआ आगे चले ॥ १ ॥ हे उपदेशक ! तू छुट्टी स्वार्थी दुष्टोंको नाश कर, तथा शान्ति आने वाली दुष्ट प्रियोंकी भी दुष्टता दूर कर दे ॥ २ ॥ इन दुष्टोंका नष्टन यह है कि वे आपसमें गालियां देते रहते हैं, एक काम पाप हेतुके करते हैं, यशस्व के क्रूर होने हैं कि रक्त पीनेकी इच्छासे नरे उत्पन्न बाइको ही भुजना आरंभ कर देते हैं ॥ ३ ॥ इनकी स्त्री अने पुत्रको खाती है, बहिन तथा नर को भी खाती है, तथा एक दूसरेके नाश पकड़कर आपसमें ही सज्जती रहती है ॥ ४ ॥

पूर्वापर संबंध ।

इसी प्रथम वाक्यके ७ तथा ८ पं सूक्तकी व्याख्याके उपदेशक की है तथा वह कि प्रथम बताया है अर्थात्

प्रथममें सर्वप्रथम प्रहलमें अग्निदेव जिस प्रकार अपना

दुष्टोंको सुधारता है; इत्यादि सब विषय अतिस्पष्ट कर दिया है। इसलिये इन ७ और ८ वें सूक्तके स्पर्शकरण पाठक यहाँ पाँहिले पंखें और पश्चात् यह सूक्त पढ़ें

संस्कृतमें “वि दग्ध” (विशेष प्रकारसे जलाहुआ) यह शब्द “अति विद्वान्” के लिये प्रयुक्त होता है। यहाँ अज्ञानका दहन जलन आदि अर्थ समझना उचित है। जिस प्रकार अग्नि लोहे आदिको तपाकर शुद्ध करता है उसी प्रकार उपदेशक द्वारा प्रेरित ज्ञानाग्नि अज्ञानी मनुष्योंके अज्ञानको जलाकर शुद्ध करता है। इस कारण “ब्राह्मण” के लिये वेदमें “अग्नि” शब्द आता है। ब्राह्मण और क्षत्रियोंके वाचक वेदमें “अग्नि और इन्द्र” शब्द प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणधर्म अग्नि देवताके और क्षात्रधर्म इन्द्र देवताके सूक्तोंसे प्रकट होता है। इत्यादि बातें विस्तारसे ७ और ८ वें सूक्तकी व्याख्याके प्रसंगमें स्पष्ट कर दी हैं। वहाँ धर्म प्रचार की बात इस सूक्तमें है, इसलिये पाठक उक्त पूर्व सूक्तोंके साथ इस सूक्तका संबंध देखें।

इस सूक्तमें “अमीव-चातनः” (रोगोंका दूर करनेवाला) यह शब्द विशेषण रूपमें आया है। यह यहाँ चिकित्सा द्वारा रोग दूर कर सकने वाले उत्तम वैद्यका बोध करता है। उपदेशक जैसा शास्त्रमें प्रवीण आदिसे वैसा ही वह उत्तम वैद्य भी आदिसे। वैद्य होनेसे वह रोगोंका चिकित्सा करता हुआ धर्मका प्रचार कर सकता है। धर्म प्रचारकके अन्य गुण सूक्त ७, ८ में देखिये।

दुर्जनोंके लक्षण।

इस सूक्तमें दुर्जनोंके पूर्वकी अपेक्षा कुछ अधिक लक्षण कहे हैं जो सूक्त ७, ८ में कहे लक्षणोंकी पूर्ति कर रहे हैं; इस लिये उनका विचार यहाँ करते हैं—

१ इषाविन- सन्धे एक माव और आदर एक माव ऐसा कण्ट करीये। (मं. १) “किमादिनु यातुषानु” इन चन्द्रोंका माव सूक्त ७, ८ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया ही है। इस ग्लानमें दुर्जनोंके कई व्यवहार बताये हैं, वे भी यहाँ देखिये—

२ आपनेन क्षापाय- आपसे क्षाप देना, मुझे शब्द बोलना, गालियाँ देना इ. १. मं. ३

३ अयं मूर्त आदये- प्रार्थनमें पापका माव रखता है। हर एक धर्ममें पाप रखिये ही उपाय प्रार्थन करना।

४ रसव्य हरण्यज्जं जयं तौर्क आरिमे- रसत पानिके क्रिये प्रयत्न करनेकी क्षमता है।

५ यातुषानी पुत्रं स्वसारं नप्यं- अति-यह दुष्ट आसुते। ली बच्चा, बहिन अथवा नाती को खाती है।

६ विकेदयः मिथः विप्रतां, वितृहन्तां- आपसमें केश पकड़ कर परस्पर मार पीट करती हैं।

ये सब दुर्जन छीपुच्छोंके लक्षण हैं। बालनक्षोंको खानेवाले लोग इस समय अफिममें कई स्थानोंपर हैं, परंतु अन्य देशोंमें अब ये नहीं हैं। जहाँ कहीं ये हों, वहाँ धर्मोपदेशक चला जावे और उनको उपदेश देकर उत्तम मनुष्य बना देवे, ज्ञानी बनावे, उनही दुष्टता दूर करके उनको सज्जन बना देवे।

ऐसे मनुष्य-भक्षक दुष्ट, क्रूर, हिंसक, मनुष्योंमें भी जाकर धर्मोपदेश देकर उनको सुधारनेका यत्न करतका उपदेश होनेसे इससे बृद्ध सुधरे हुए किंचित् ऊपरी श्रेणीके मनुष्योंमें धर्म जागृत करनेका आशय स्वयंही स्पष्ट हो जाता है।

दुष्टोंका सुधार।

दुष्ट लोगोंमें दुष्टता होनेके कारण होवे असभ्य; समझे जाते हैं। उनकी दुष्टता उपदेश आदि द्वारा हटाकर उनको सभ्य बनाना ब्राह्मणों हैं और उनसे दण्ड देकर बर्बादसे उनका सुधार करनेका यत्न करना क्षात्र मार्ग है। वेदमें अग्निदेवता से ब्राह्मणों और इन्द्र देवतासे क्षात्र मार्ग बताया है। जलावे या तपाते तो दोनों ही हैं, परंतु एक उपदेशद्वारा उनके अज्ञानको जलाता है और दूसरा शस्त्र दण्ड और इष्टीप्रचार के बली उपायोसे पीटा देकर उनको सुधारता है।

सुधार तो दोनोंमें होता है, परंतु क्षत्रियोंके दंडद्वारा तपाने के उपायसे ब्राह्मणोंके ज्ञानाग्निद्वारा तपानेका उपाय अधिक उत्तम है और इसमें बड़ भी कम हैं।

पाठक अग्नि शब्दसे आगका ग्रहण करके उससे दुष्टोंको जलानेका माव इस सूक्तसे न निशंके, क्योंकि इस सूक्तका संबंध आग्नेयपंडितके अनेक सूक्तोंसे है और अग्निके गुणोंके प्रमाण देकर ज्ञानी उपदेशक ही अग्निशब्दसे ऐसे सूक्तोंमें अग्निदंड है वह सूक्त ७, ८ के प्रसंगमें स्पष्ट बताया ही है। इसके अतिरिक्त “रोग दूर करनेवाला अग्नि” इस सूक्तमें कहा है। यदि यह उन लोगोंको जलाही देवे तो उसके रोगमुक्त, करनेके गुणसे क्या लाभ हो सकता है। शक्तिसे वह अग्निध्व जलाना “ज्ञानाग्निसे अज्ञाननाशक जलाना” ही है। दुष्ट गुणधर्मोंकी हटाया और वहाँ श्रेष्ठ गुण धर्म स्थापित करना ही यहाँ अग्निदंड है और इष्टीयोंसे रोगमुक्त करनेवाला क्षम

“खावे” ऐसा होता है-परंतु “शराप-आदपे” इन क्रियाभक्ति
आश्रयानसे “अनु” के स्थानपर “अति” मानना युक्त है।
अथोक्ति-यहां आनुपातिकी रीति बतई है जैसे (शराप) शरा
देते रहते हैं, (अर्थ आदपे) पाप स्वीकारते रहते हैं, (तोंक अति)
बच्चेको खाते रहते हैं अर्थात् यह उनकी रीति है। पूर्वोपर
संबंधसे यह स्वयं यदा अभीष्ट है ऐसा हमें प्रतीत होता है।
तथापि पाठक अधिक योग्य और कोई अन्य बात इस सूक्तमें
देखेंगे, तो स्वयंकी खोज होनेमें अवश्य सहायता होगी।

अर्थ-हे (प्रधानस्वप्ने) शानी पुत्र ! (येन इन्द्रः अभिवर्षये) तिसरे इन्द्राभिप्रेत हुआ था, (येन अभिवर्षेन ममिना) उस तिसरे करनेके अगिते (अस्मान्) हमको (राष्ट्राय अभिवर्षये) राष्ट्रके लिये बड़ा दो प्र-१ ॥ (याः वाः अवापयः) जो हमारे शत्रु हैं उनको तथा अन्य (संपन्नान्) वैरियोंकी (अभिवृत्त) परामर्श करके, (याः नः दुस्वपति) जो हमसे दुस्वप्ताका आचरण करता है तथा जो (पृतन्यन्तः) हमसे हमपर बढ़ाई करता है उससे (अग्निं अग्निं शिशुं) युद्धकरके लिये स्थिर हो जाओ ॥ २ ॥ (सजिता दंतः) शृंग देवने तथा (सोमः) चंद्रमा देवने की (रथा) द्रुमें (नाभिं नाभिः अर्वावृष्यन्) सब प्रशाले बट मा दे । (विधा भूगानि) सब भूत (रथा नाभि) द्रुमे बटा रहे हैं, शिशवे-न् (अभिवर्षः आ-सि) शत्रुको दबानेवाला हुआ है ॥ ३ ॥ (अभिवर्षः)-शत्रुको जेतनेवाला, (अभिमयः) शत्रुका पराजय करदेवाला, (संपन्नसंपन्नः) प्रतिपक्षियोंका आश करनेवाला यह (अग्निं) मयि है । यह (सशस्त्रेभ्य परामुने) प्रतिपक्षियोंका पराजय करदेवे लिये तथा (राष्ट्रम्) राष्ट्रके अभ्युदयके लिये (अयं वप्यग्रः) मुझरा बाधा जाने ॥ ४ ॥ (अगौ मूर्धः वप्यग्रः) दाह शृंगें वदनेके प्रात हुआ है, (हर्षं सामर्थं वप्यः उग्रः) यह मेला बचन भी प्रकट हुआ है, (मया) शिशुने (अर्वावृष्यन्) शत्रुका आश करदेवाला, (संपन्नवहा) प्रतिपक्षियोंका आश करनेवाला होकर मैं (वप्यग्रः आगानि) शत्रुपरीत होऊँ ॥ ५ ॥

(यथा) जिससे (अर्ह) मैं (सफल-क्षयणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला, (वृथा) बलवान और (विपासहिः) विजयी होकर (अभिराष्ट्रः) राष्ट्रके अनुकूल बनकर तथा राष्ट्रको सहायता प्राप्त करके (एषां वीरानां) इन वीरोंका (जनस्य च) और सब लोगोंका (वि राजानि) विशेष प्रकारसे रंजन करने वाला राजा होंकें ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे राष्ट्रके ज्ञानी पुरुषो ! जिस राजबिह्व रूपी मणिसे धारण करके इन्द्र विजयी हुआ था, उसी विजयी मणिसे हमें राष्ट्रके हितके लिये बढाव दे ॥ १ ॥ जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं उनके परास्त करनेके लिये; तथा जो हमसे बुरा व्यवहार करते हैं और जो हमपर सेना भेजकर चढाई करते हैं उनको ठीक करनेके लिये अपनी तैयारी करके आगे बढो ॥ २ ॥ सूर्य चन्द्र आदि देव तथा सब भूतमात्र तुमसे सहायता देकर बढा रहे हैं, जिससे तू सब शत्रुओंको दबानेवाला बन गया है। ॥ ३ ॥ शत्रुको घेरनेवाला, बैराका परामर्ष करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला यह राजबिह्व रूपी मणि है। इसलिये प्रतिपक्षियोंका परामर्ष करनेके लिये और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके लिये मुत्सर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा यह सूर्य उदय हुआ है, वैसा यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है, अब तुम ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला होकर शत्रु रहित हो जाऊँ ॥ ५ ॥ मैं प्रतिपक्षियोंका नाश करके बलवान बनकर, विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और अपने राष्ट्रके सब लोगोंका हित साधन करूँगा ॥ ६ ॥

अनुसन्धान

यह सूक्त राज प्रकरणका है इसलिये इसी कांडके अपराजित गणके सब सूक्तोंके साथ इसका विचार करना योग्य है। तथा आगे आनेवाले राज प्रकरणके सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध देखने योग्य है। इससे पूर्व अपराजित गणके सूक्त २. १९, २०, २१ ये आये हैं, इसका आतिरिक्त अथर्व गण, सामांमिक गणके सूक्तोंके साथ भी इन सूक्तोंका विचार करना चाहिये।

अभीवर्त मणि ।

जिस प्रकार राजाके चिन्ह राजदंड, छत्र, चामर आदि होते हैं उसी प्रकारका 'अभीवर्त मणि' भी एक राजचिन्ह है। इसके धारण करनेके समय यह सूक्त बोला जाता है।

देवोंका राजा इन्द्र है, उसका पुरोहित वृक्षरुति भद्राग्रस्पति है। यह पुरोहित इन्द्रके धर्मोपर यह अभीवर्त मणि बांधता है। अर्थात् राजा पुरोहित ही राजाके धर्मोपर यह राजचिन्ह रूपी मणि बांध देवे। यहाँ संबंध देवनेत्रे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूक्त संवाद रूप है। यह संवाद इस प्रकार है। देखिये—

इस सूक्तका संवाद ।

राजा—हे पुरोहित जी ! जो अभीवर्त मणि इन्द्रके धर्मोपर देव वृक्षरुतिने बांध दिया था और जिसने इन्द्र दिग्विजयी हुआ था, वह राजचिन्हरूपी मणि मेरे धर्मोपर आर धारण कराविये, जिससे मैं राष्ट्रका वर्धन करनेके समर्थ हो जाऊँ ॥ १ ॥

पुरोहित—हे राजा ! जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी

हैं तथा जो हमारे राष्ट्रके साथ बुरा व्यवहार करते हैं और हमपर सैन्यसे चढाई करते हैं उन्हींको परास्त करनेकी तैयारी करो ॥ २ ॥ सूर्य, चंद्र तथा सब भूत तुम्हारी सहायता कर रहें ह, जिससे तू शत्रुको दबा सकता है ॥ ३ ॥

राजा—पुरोहित जी ! यह राजबिह्व रूपी मणि शत्रुको घेरने, बैरीका परामर्ष करने और प्रतिपक्षियोंको हटानेका सामर्थ्यदेनेवाला है। इसलिये विरोधियोंका परामर्ष और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके कार्यमें मुझे समर्थ बनानेके लिये मुत्सर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा सूर्य उदयको प्राप्त होता है वैसाही मेरेसे शत्रुओंका प्रकाश होता है, इसलिये आप ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश कर सकूँ ॥ ५ ॥ मैं बलवान बनकर प्रतिपक्षियोंको दूर करूँगा और विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और राष्ट्रका हित करूँगा ॥ ६ ॥

पाठक यह संवाद विचारते पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें अब सूक्तका आशय धीप्रतामे आसकेगा। राजा राजबिह्व धारण करता है, उस समय पुरोहित राजासे प्रजाहितकी कुछ बातें करनेके लिये कहते हैं और राजा भी राष्ट्रहित करनेकी प्रतीक्षा उस समय करता है। पुरोहित साम्राज्यशक्तिकी ओर राज्य शक्ति का रक्षण प्रतिनिधि है। राष्ट्रकी साम्राज्यशक्ति पुरोहित मुखमें राजचिन्हरूपका उपदेन राजाको करती है, राजाके लिए राजाका रक्षण ही रक्षण राष्ट्रकी साम्राज्यशक्तिकी रक्षण चाहिये। अर्थात् साम्राज्यशक्तिकी आधीन साम्राज्यशक्ति रानी चाहिये। यह बात यहाँ प्रकटित होती है। ज्ञानी लोगीर

शरीर की हुकूमत न रहे, परंतु शर ज्ञानलिंगोंके आधीन कार्य करें । राष्ट्रकी (Civilant military) भावात्मक क्षात्र शक्ति एक दूसरेके साथ कैसा बर्ताव करे, यह इस सूक्तमें स्पष्ट हुषा है । शासकशक्ति द्वारा संमत हुआ राजा ही राजगद्दीपर आधिक्यता है अन्य नहीं ।

राजाके गुण ।

इस सूक्तमें राजाके गुण बताये हैं, वे निम्न शब्दोंद्वारा पाठक देख सकते हैं—

१ अस्मान् राष्ट्राय अभिवर्धय=इसमें शक्ति राष्ट्रकी उत्पत्ति के लिये बड़े अर्थात् राजाके अंदर जो शक्ति बढती है वह राष्ट्रकी उत्पत्तिके लिये ही सार्वभौम सगे, यही भाव राजाके अंदर रहे । अपनी बड़ी हुई तन मन धन आदि सब शक्ति अपने भोगके लिये नहीं है प्रत्युत राष्ट्रकी भलाईके लिये ही है यह त्रिष राजाका निधय होगा वही सचा राजा कहा जायगता है ॥ (मंत्र ११)

२ राष्ट्राय महां बभ्रवतां सप्तनेभ्यः पशुभुवे=राष्ट्रकी उत्पत्ति और वैरियोंका पराभव करनेके लिये राजाविरूप मणि मेरे (राजाके) शरीरपर बांधा जावे । मणि आदि रत्न तथा अन्य राजविशेष जो राजा धारण करता है वह अपनी शोभा बढाने के लिये नहीं है, प्रत्युत वे केवल तो ही उद्देश्य के लिये हैं, (१) राष्ट्रकी उत्पत्ति हो, और (२) जनताके घनु दूर भिये जाय । राजाके अंदर यह शक्ति उत्पन्न करनेके लिये ही उत्पन्न राजविशेष बनाये जाते हैं । (मंत्र ४)

३ अभिराष्ट्रः-(अभितः राष्ट्रं यस्य) जिसके पारों ओर राष्ट्र है, ऐसा राजा हो । अर्थात् राजा अपने राष्ट्रमें रहे, राष्ट्रके साथ रहे, राष्ट्रका रक्षक रहे । राजाका हित राष्ट्रहित ही हो, और राष्ट्रका हित राजहित हो, अर्थात् दोनोंके हित संबंधमें परक न रहे । राजाके लिये राष्ट्र अनुरक्त रहे और राष्ट्रके लिये राजा अनुरक्त हो । राष्ट्रहितका उद्यम्य अपने सामने रखनेवाले राजाका बोध इस शब्दसे होता है । त्रिष राजाके लिये अपनी जान देनेके लिये राष्ट्र तैयार होता है उस राजाका यह नाम है । यह शब्द आदर्श राजाका वाचक है । (मंत्र ६)

४ धनुश्च-धनुश्च नाश करने वाला । (मं० ५)

५ असत्पान-भरभरके प्रतिपक्षी या विरोधी त्रिषको न हो । (मं० ५)

६ सत्पनश्च-प्रतिपक्षी नाश करनेवाला, अर्थात् प्रतिपक्षीका पराभव करने वाला । (मंत्र ५) "सत्पन-सत्पनः" ११ (अ. छ. भा. बं० १)

यह शब्दभी इसी अर्थमें (मं० ६ में) आया है ।

७ वृषा-चलवान् । सप्त प्रकारके मलोंसे युक्त राजा होना चाहिये, अन्यथा वह परास्त होगा । (मं० ६)

८ विषासहिः-शत्रुके हमले होनेपर उनको सहन करके अपने स्थानसे पीछे न हटने वाला । (मं० ६)

९ वीराणां जनस्य च विराजानि-राष्ट्रके शरीर तथा राष्ट्रकी संपूर्ण जनता इन सबको संतुष्ट करनेवाला । (मं० ६)

१० प्रतिपक्षियोंको दबाना, वैरियोंका नाश करना, सेनाके साथ चढ़ाई करनेवालेका प्रतिहार करना और जो दुष्ट व्यवहार करता है उसको ठीक करना आदि राजाके कर्तव्य(मंत्र १२) में कहे हैं ।

ये दस कर्तव्य राजाके इस सूक्तमें कहे हैं वे सब मनन करने योग्य हैं । ये सब कर्तव्य बड़ी मात्रा बता रहे हैं कि राजा अपने भोगके लिये राजगद्दीपर नहीं आता है, प्रत्युत राष्ट्रहित करनेके लिये ही आता है । यदि राजासंग इस सूक्त का अधिक मनन करके अपने लिये योग्य बोध सगे तो बहुत ही उत्तम होगा ।

राजचिह्न ।

छत्र, चामर, राजदण्ड, मणि, रत्न, रत्नमाला, मुकुट, विशेष बभ्रवलेख, राजसभाका छाट, हाथी, घोड़े आदि सब जो राजचिह्न रूपमें समझे जाते हैं, इन चिह्नोंके धारण करनेसे जनतापर कुछ विशेष प्रभाव पड़ता है और उस प्रभावके कारण राजाके इंद्रिन्द्र शक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है । यद्यपि इस प्रत्येक चिह्नमें कोई विशेष शक्ति नहीं होती, तथापि राजचिह्न धारण करनेवाले का धारण विचारहीन भी अन्य सामान्य लोगोंकी अपेक्षा कुछ विशेष शक्ति होनेका अनुभव हरएक करता है; इसी प्रकार एक चिह्नके कारण अमूर्त राजा कायनश एव विशेष प्रभाव जनतापर पड़ता है जिस कारण राजा शक्तिहीन केन्द्र बनता है । जिस समय अपने चिह्नोंके और श्रृंगों उठाने राजा जाता है उस समय उसका ब्रह्मासी प्रभाव सामान्यजनता पर पड़ता है, इसी कारण राजामें शक्ति इकट्ठी होती है । इस सूक्तके धनुश्च मंत्रमें " यह मणि ही धनुश्च करने वाला, प्रभाव करनेवाला, राष्ट्रहित साधन करनेवाला है " इत्यादि कहा है, इसका अर्थ उक्त प्रकार ही समझना योग्य है । शिपहीकी शक्ति उगनेके पक्षोंकी ही उगने का ही वह शक्ति कारण-विशेष नहीं प्रज्जु । एक विशेष सामान्य ही उत्पन्न होती है । धनुश्च राजचिह्न ही शक्ति ही प्रसार मानना चाहिये । अष्ट, अष्ट दण्डके प्रमाण केन्द्र—

शत्रुके लक्षण ।

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रकारमें शत्रुके लक्षणों का वर्णन किया है—

१ यः दुस्त्वयि = जो दुष्ट व्यवहार करता है । (मं० २)

२ सपत्नः = मित्र पक्षरा मनुष्य । राष्ट्रमें जितने पक्ष होंगे, उतने पक्षवाले आपसमें सपन होंगे । सपत्न शब्द (Party Politics) पक्ष भेद का राजकारण बता रहा है ।

३ धरातिः = अनुदार, जो मनमें धेड़भाव नहीं रखता ।

४ वृत्तन्व्य = सैन्यसे चढाई करनेवाला ।

इन शब्दोंके विचारसे शत्रुका पता लग सकता है । इनमें कई धर्मरके शत्रु हैं और कई बाहरके हैं ।

सबकी सहायता ।

सुतोय मंत्रमें कहा है कि " सूर्य चंद्र और सब भूतमान जिस राजाके सहायक होते हैं वह शत्रुको पराजित करता है ॥ "

(मं० ३) इसमें सूर्य चंद्र आदि साध बाळ साधकी सहायता बता रहे हैं, (Nature's help) निःसर्गकी सहायता राजाको शासिका एक महत्त्वपूर्ण भाग है । राष्ट्रों रचना ही ऐसी हो कि जहाँ शत्रुका प्रवेश सुगमतासे नू हो सके । वह एक शक्ति ही है ।

दूसरी शक्ति (मित्रा मूलानि) सब भूत मानसे प्राप्त होती है । पचमहाभूतोंसे शक्ति प्राप्त करनेकी भी बात इसमें सुगमतासे मत हो सकती है । " भूत " शब्दका दूसरा प्रसिद्ध अर्थ " प्राणी, मनुष्य " ऐसा होता है । जिस राजाको राष्ट्रके सब प्राणी और सब मनुष्य सहायक हों, उसका शक्ति विशेष होगी ही, हममें क्या सदेह है ? यही सब जनताकी शुभ इच्छासे प्राप्त होनेवाली शक्ति है जो राजाको अपने पास रखनी चाहिये क्योंकि हम पर राजाका नियन्त्रणिय अवलम्बित है ॥

वैदिक राजप्रकारके विषयमें इस सूक्तमें बड़ा अच्छा उपदेश है । यदि पण्डित अधिक मनन करिगे तो उनकी राजप्रवृत्तके बहुत उपाय निर्देश इस सूक्तमें मिल सकते हैं ।

बने । हमारा शरीर सुदृढ हो, हमारी आयु दीर्घ हो, हमारे इन्द्रिय अधिक कार्य क्षम बनें, हमारा मन मननशक्तिसे युक्त हो, हमारी बुद्धी ज्ञानसे परिपूर्ण हो, हममें आभिक बल बढ़े, तथा हमारी नैतिक, सामाजिक तथा अर्थशास्त्र शक्तियां बढ़ें । ये सब शक्तियां इच्छासे बढ़ें कि इनके योगसे हमारा राष्ट्र अमर-दशसे युक्त हो । इन शक्तियोंकी वृद्धि इसलिये नहीं करनी है कि इनसे केवल व्यक्ति का ही सुख बढ़े, केवल एक जातिके हितमें अधिकार रहे, या किसी एक कुलके पाद परम अधिकार हो जाय; परन्तु ये शक्तियां इच्छासे बढ़ानी चाहिये कि इनके संयोगसे राष्ट्रकी प्रगति हो, राष्ट्रकी उन्नति हो ।

सामान्य अर्थ देखनेके समय इस प्रथम मंत्रका " अस्मान् " शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । इसका अर्थ होता है " हम सबको " । अर्थात् हम सबको मिलकर राष्ट्र दितके लिये कृतिगत करो । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि किसी एककी ही उन्नति या किसी एककी शक्तिका विकास ही नहीं अपेक्षित नहीं है, वरन् सभी शक्तिका विकास यहाँ अपेक्षित है । राष्ट्रीय उन्नतिके लिये जो प्रजाजनताकी शक्तिका विकास करना है वह हर एक प्रजाजनका, किसी प्रकार भी पक्षपात न करते हुए, करना चाहिये । अर्थात् जातिविरुद्ध या संप्रतिष्ठित पक्षपातके लिये यहाँ कोई स्थान रहना नहीं चाहिये ।

जो मैं करता हूँ वह राष्ट्रके लिये समर्पित हो बड़ी भाव हर एकके मनमें रहना चाहिये ।

राष्ट्राय सदां वप्यती ।

सपत्नोन्व्य परासुवे ॥ (मं० ४)

" सुते राष्ट्रके लिये बांध दे शक्ति में राष्ट्रके शत्रुओंका पराभव कर सके । " यह भाव मनमें धारण करना चाहिये । मैं राष्ट्रके साथ बांधा आऊँ, मेरा अपने राष्ट्रके साथ ऐसा संबंध जुड़ जाय कि वह कभी न टूटे, राष्ट्रका हित और मेरा हित एक बने, मैं राष्ट्रके लिये ही आबित रहूँ, इसलिये प्रभारके भाव सदा मंत्रमें है । जो मित्र के साथ बांधा जाता है वह उतनी ही पक्का होता है । यदि स्वराष्ट्रमित्राने मनुष्य राष्ट्रके साथ एक बार अपनी प्रभार कंधार बांधा जाय तो वह बहाये नहीं हटेगा । इसी प्रकार मनुष्य अपने राष्ट्रके साथ बांधे जाय यों । ऐसा परस्पर संबंध जुड़नेके कारण राष्ट्रमें अतृप्त शक्ति उत्पन्न हो वह राष्ट्र के भद्रों अंगीष्ट है ।

आमत र है । इस प्रकार जिसके मनके सामने राष्ट्रका विचार सदा जाग्रत रहता है, उसीको वेद 'अभिप्राष्ट्र' कहता है (अमितः राष्ट्रं) अपने चारों ओर अपना राष्ट्र है ऐसा माननेवाला हर एक अवस्थामें अपने संमुख अपने राष्ट्रको देखनेवाला जो होता है उसका यह नाम है ।

‘राष्ट्र’ का अर्थ

राष्ट्र शब्द केवल देश अथवा केवल जनताका वाचक वेदमें नहीं है । केवल भूमिके एक विभागपर रहनेवाले मनुष्यसमाजका भाष्य ‘राष्ट्र’ शब्दसे वेदमें नहीं होता है । इस प्रकारके राष्ट्र भूमिपर बहुत होंगे, परंतु वेद जिसको राष्ट्र कहता है, वैसे राष्ट्र किनने होंगे इसका विचार पाठकोंको अवश्य करना चाहिये वेदमें ‘राष्ट्र’ शब्द (राजते सद् राष्ट्रं) जो चमत्कृत है, यह राष्ट्र है । इस अर्थका बोधक है । जो मनुष्योंका समुदाय भूमिद्वारा पर अपने कर्मायें यत्तसे चमकता है और सब अन्य लोगोंकी

आंख आनी और खींच सकता है वही वैदिक दृष्टिमें राष्ट्र है । अन्य मानवी समुदाय राष्ट्र नहीं हैं । इस प्रकारके राष्ट्र विस्तारमें छोटा हो या बड़ा हो, वह राष्ट्र ही कहलावेगा । परंतु जो निश्चयसे अति प्रचंड हो, परंतु यशस्वी हो, जिसमें चमत्कृत न हो तो वह राष्ट्र नहीं होगा । वैदिक धर्मियोंको अपने परिग्रहसे अपने राष्ट्रमें इस प्रकारका तेज उत्पन्न करना चाहिये और बढाना चाहिये, तभी उनके देशका नाम वैदिक रीतिसे राष्ट्र होगा । वेदमें राष्ट्रवर्धन विषयक अनेक सूक्त हैं और उनका परस्पर निकट संबंध भी है । पाठक जिस समय इन सूक्तोंका विचार करने लगे उस समय आगे पीछेके राष्ट्रीय सूक्तोंका संबंध अवश्य देखें और ऋषि उपदेशका इच्छा मनन करें ।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके सामान्य उपदेशसे अधिक मनन करके बोध लेंगे । वेदमें राष्ट्रवर्धनके ऋषि प्रसार स्पष्ट रूपमें हैं यह इस रीतिसे पठक देश पश्यते हैं ।



आयुष्य-वर्धन-सूक्त ।

(३०)

(श्रुतिः— अथर्षा आयुष्यकामः । देवता विश्वे देवाः ।)

विश्वे देवा वसन्ता रक्षन्तेममृतादिंस्तथा जागृत यूपमास्मिन् ।

मेमं सर्वाभिरुत वान्यनाभिमेमं प्राप्त् पौर्ण्यो यथो यः ॥ १ ॥

ये वां देवाः पितरो ये च पुत्राः संचेतमे मे शृणुतेदमुक्तम् ।

सर्वेभ्यो वः परि ददाभ्येतं सृष्ट्येनं जरेमं वहाथ ॥ २ ॥

ये देवा द्विविष्ट ये पृथिव्यां ये अन्तर्धि ओषधीषु पुनरुप्यन्तः ।

ते कृणुत जरसमाप्तरस्मै शतमुन्यान्परि वृषकतु मायुन् ॥ ३ ॥

येषां प्रयाजा उत पांनुपाजा हुतमांसा अहुतादथ दुषाः ।

येषां वः पक्षं प्रदिजो विमंक्तास्तान्वां अक्षं संप्रमर्दः कुषांभि ॥ ४ ॥

अर्थ— दे (विश्वे देवा) सब देवी । दे (वयः) वयस्के । दे (वसन्तः) वसन्त ऋतु । दे (वः) वः । दे (अस्मिन्) अस्मिन् । दे (पृथिव्यां) पृथिव्यां । दे (अन्तर्धि) अन्तर्धि । दे (ओषधीषु) ओषधीषु । दे (पुनरुप्यन्तः) पुनरुप्यन्तः । दे (वः) वः । दे (पक्षं) पक्षं । दे (प्रदिजो) प्रदिजो । दे (विमंक्ता) विमंक्ता । दे (अक्षं) अक्षं । दे (संप्रमर्दः) संप्रमर्दः । दे (कुषांभि) कुषांभि ।

जो पुरुष प्रयत्नसे होनेवाला पातपात है वह भी (इमं मा प्रापत्) इसको प्राप्त न करे ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो (ये वः पितर) जो आपके पिता हैं तथा (च ये पुत्राः) जो पुत्र हैं वे सब (स चेतसः) सावधान होकर (मे हृदं उक्तं शृणु) मेरा यह कथन श्रवण करें (सर्वेभ्यो यः पृतं परिददामि) सब आपकी निगरानमें इसको मैं देता हूं (पुनं जरते स्वस्ति वहाय) इसको वृद्ध आनुतक सुखपूर्वक पटुंवा दो ॥ २ ॥ (ये देवाः दिवि स्थ) जो देव धुलोकमें हैं, (ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्षे) जो पृथ्वीमें और अंतरिक्षमें हैं और जो (ओषधीषु पशुषु वस्यु अन्तः) औषधों, पशु और जलोंके अंदर हैं (ते अस्मै जरसं वायुः कृणुत) वे इसके लिये रक्षास्थानवाली दीर्घ आयु करें । यह पुरुष (शत मन्यान् मृत्यून् परिवृणक्तु) सैकड़ों अथ अपमृत्युको हटा देवे ॥ ३ ॥ (येषां) जिन तुम्हारे अंदर (प्रयाजाः) विशेष यजन करनेवाले, (उत वा अनुयाजाः) अथवा अनुकूल यजन करनेवाले तथा (हुत-भागाः बहुताः च देवा) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं, (येषां यः पन्त्र प्रदिक्षः विभक्ताः) जिन आपकी ही पांच दिशाएँ विभक्त की गई हैं, (तान् वः) उन तुमको (शस्ते) इस पुरुषकी दीर्घ आयुके लिये (सत्र-सदः कृणोमि) सदस्य करता हूं ॥ ४ ॥

भाष्य—हे सप्त देवा, हे वसुदेवा ! मनुष्यकी रक्षा करो । हे आदित्य दंडो । तुम मनुष्यमें आप्रत रहो । मनुष्यका सर्वांगे बंधु अथवा कोई अन्य मनुष्यसे अथवा कोई पुरुषसे बंधन हो ॥ १ ॥ हे देवा । जो तुम्हारे पिता हैं और जो तुम्हारे पुत्र हैं वे सब मेरा कथन सुने । मनुष्यको पूर्ण दीर्घ आयुतक ले जाना तुम्हारे आधीन है, अतः मनुष्यकी दीर्घ आयु करो ॥ २ ॥ जो देव दुर्लभ, अंतरिक्षगण, भूलोक, औषध, पशु, जल आदिमें हैं वे सब मिलकर मनुष्यकी दीर्घ आयु करें । तुम्हारी सहायतासे मनुष्य में हमें अपमृत्युसे बचे ॥ ३ ॥ विशेष यजन करनेवाले, अनुकूल यजन करनेवाले, हवनका भाग लेनेवाले तथा हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं और जिन्होंने पांच दिशाएँ विभक्त की हैं, वे सब आप देव मनुष्यकी आयुष्यवर्धक समाके सदस्य बनें और मनुष्यकी आयु दीर्घ पतनमें सहायता करें ॥ ४ ॥

तब तक मनुष्यकी आयु क्षीण ही होती जायगी। इसलिये वध करनेकी शक्ति अपने समाजमें से दूर करनेका धर्म मनुष्य प्रथम करे।

देवोंके आधीन आयुष्य।

मनुष्यका समाज जितना आदिशास्त्रियांवा होण उतनी उसकी आयुष्यमर्यादा दीर्घ होवकती है। यह बात जितनी सिद्ध होगी उतनी सिद्ध करके अगिका मार्ग आक्रमण करना चाहिये। आगेका मार्ग यह है कि—“ अपना आयुष्य देवोंके आधीन है, देव हमारी रक्षा कर रहे हैं ” यह भाव मनमें धारण करना। इसकी सूचना प्रथम मंत्रके पूर्वार्धने दी है, उसका आशय यह है—

“ हे सब वसुदेवो! मनुष्यकी रक्षा करो। हे सब आदित्यो! मनुष्यमें जागते रहो। ” (मंत्र १)

इस मंत्रमें भी दो भाग हैं। पहिले भागमें वसु देवोंकी रक्षाक शक्तिके साथ संबंध बताया है और दूसरे भागमें आदित्य देवोंकी मनुष्यके अंदर, मनुष्यके देहमें, जाग्रत रहनेकी सूचना दी है। ये दोनों बातें दीर्घ आयु करनेके लिये अत्यंत आवश्यक हैं। अब इनका संबंध देखिये—

सबसे पहिले मनुष्य यह विचार मनमें धारण करे कि संपूर्ण देव मेरी रक्षा कर रहे हैं, परंतु परमात्मा सर्वेश्वर सबेसे प्रभु मेरी रक्षा कर रहा है और उसकी आज्ञानुसार मैं स्वर्गादि सब देव सदा मेरी रक्षा कर रहे हैं। मैं परमात्माका अग्रत पुत्र हूं इसलिये मेरा परमपिता परमात्मा मेरी रक्षा करता था, करता है और करताही रहेगा। परमात्माके आधीन अन्य सब देव होनेके कारण वे भी उस परमात्माके पुत्रही रक्षा अवश्य करेंगे ही।

इस प्रकार संपूर्ण देव मेरा संरक्षण करते हैं इसलिये मैं विमर्ष हूं यह विचार मनमें रख करके मुझे अंदर जो जो विन्ताके विचार आयेगें उनको हटाना चाहिये और विश्वाससे मनकी ऐसी रज अवस्था बनानी चाहिये कि जिसमें पिताका विचार ही न उठे और चित्तवृत्ति निर्जन्म होनेके साथ आनंद शक्तिके साथ मनमें हूं। दीर्घायुष्यके लिये इस प्रकार परमात्मा पर तथा अन्यान्य देवोंकी संरक्षक शक्तितर अपना पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, अन्यथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना अशक्य है।

बड़े पाठक थोका करेगें कि अन्यान्य देव हमारी रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं? इस विषयमें हमने पूर्व कई स्थानोंपर उल्लेख आगया है। तथापि संक्षेपसे यहीही इसका विचार करते हैं। पाठक जानते ही हैं कि प्रथम अंशमें “ वसु ” देवोंका कर्तव्य

है, ये सब जगत्के निवासक देव होनेके कारण ही इनको “ वसु ” कहते हैं। सबके जो निवासक होते हैं वे सबकी रक्षा अवश्य ही करेंगे।

सब वसुओंका भी परम वसु परमात्मा है क्योंकि वह जैसा सब जगत् को बसाता है इसी प्रकार जगत्के संरक्षक सब देवोंको भी बसाता है। उसके बाद पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये अष्टवसु हैं ऐसा कहा जाता है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, आदि के साथ हमारे संरक्षणके आयुष्यका संबंध है, इनमें से एकका भी संबंध हमसे टूट गया तो हमारा नाश होगा। इतना महत्त्व इनका है और इसी कारण इनके रक्षणमें सदा मनुष्य रहता है ऐसा उपरवाले मंत्रमें कहा है। इससे स्पष्ट हुआ कि मनुष्य की रक्षा इन देवोंके कारण ही रही है और अति निःपक्षपातसे हो गयी है। ये देव कभी किसीका पक्षपात नहीं करते हैं। सूर्य सबपर एकसा प्रकाशता है, वसु सबके लिये एकसा बह रहा है, जल सबके लिये ब्यापारसे गिरता है, पृथ्वी सबको समानतया आधार दे रही है, इस प्रकार ये सब देव न केवल सबकी रक्षा कर रहे हैं बल्कि सबके साथ निःपक्षपातसा भी बर्ताव कर रहे हैं।

हमारे जीवनके साथ इनका संबंध इतना पवित्र है कि इनके बिना हमारा जीवन ही अशक्य है। वायुके बिना प्राण धारणा कभी होगी? सूर्यके बिना जीवन ही अरुण होगा, इत्यादि प्रकार पाठक देखें और मनमें निश्चयपूर्वक यह बात धारण करें कि परमात्माके नियमके आधीन रहते हुए ये सब देव हमारी रक्षा कर रहे हैं।

हम क्या करते हैं?

सब देव तो हमारी रक्षा कर ही रहे हैं, परंतु हम क्या कर रहे हैं, हम उनकी रक्षामें रहतेका यत्न कर रहे हैं या उनकी रक्षासे बाहर होनेके यत्नमें हैं? इसका विचार पाठकोरे करना चाहिये। देखिये, परमात्माओ और देवोंकी रक्षामें हम कैसे बाहर जाते हैं—परमात्मावर जो विश्वास ही नहीं रखते वे परमात्माकी रक्षासे बाहर ही जाते हैं। इसीसे परमात्मा सब की उनकी रक्षा करना ही रहता है वह उनकी ही अपरा दना है, परंतु ये अविद्याकी शोण उनकी अपरा दनासे भाग नहीं उठाते। अविद्याके कारण जिसकी दानि है, किसी अन्य कारणसे नहीं हो सकती। दीर्घ आयुष्य प्राप्तिके लिये हमें बाला यन्त्रों का आचरितवक यह विचार करना है।

इसके बाद सूर्य अपने प्रकाशसे सबको जीवनायुत देकर सबकी रक्षा कर ही रहा है, परंतु मनुष्य सूर्य प्रकाशसे दूर रहते हैं, तंग गलियोंके तंग मकानोंमें रहते हैं, दिनभर कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं और इस प्रकार सूर्यदेवकी सरक्षक शक्तिसे अपने आपको दूर रखते हैं। इनके लिये मृगवान् सहस्रारमी सूर्यदेव क्या कर सकते हैं ? इसी प्रकार वायु और जल आदि देवोंके विषयमें समझना उचित है। ये देव तो सबकी रक्षा कर ही रहे हैं परंतु मनुष्योंको भी चाहिये कि वे इनकी उतम रक्षासे अपने आपको दूर न रखें और जहांतक होसके उतना प्रयत्न करके उनकी रक्षामें अपन आपको अधिक रखें।

पाठक यहां समझ ही गये होंगे कि संपूर्ण देव मनुष्यमात्रकी किस रीतिसे रक्षा कर रहे हैं और मनुष्य उनकी रक्षासे किस प्रकार दूर होते हैं और स्वयं अपना नुकसान किस प्रकार कर रहे हैं।

आदित्य देवोंकी जाग्रती ।

इस प्रथम मंत्रमें दीर्घ आयुष्य वर्षक एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह यह है—“ हे आदित्य देवो ! इस मनुष्यमें जाग्रत रहो। ” मनुष्यके अंदर आदित्यसे ही सब जीवन शक्ति आरही है। वह जीवन शक्ति जैसी मनुष्यमें कार्य करती है उसी प्रकार सब जगत्में कार्य कर रही है। इसी शक्तिसे सब जगत् चल रहा है। परंतु यहां मनुष्यका ही हमें विचार करना है। मनुष्यमें यह आदित्य शक्ति मालिष्कमें रहती है, नेत्रों रहती है और पेटमें रहती है। मालिष्कमें मज्जाकेंद्र चलती है, पेटमें पाचक केंद्रको चेतना देती है और नेत्रों देखनेका व्यापार कराती है। इनमेंसे कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्यका आयुष्य घटता जायगा। मालिष्कका मज्जाकेंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो संपूर्ण शरीर चेतना रहित हो जाता है वेगका पाचक केंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो हाजमा बिगड़ जाता है, नेत्रकी आदित्यशक्ति हटगई तो मनुष्य अंधा बनता है और उसके सब व्यवहार ही बंद हो जाते हैं। इसका महत्त्व इस आदित्य शक्तिका मनुष्यके अथवा प्राणीके शरीरमें है। इसलिये वेदमें कहा है कि—

सूर्य आत्मा जगत्प्रभुत्वम् । ऋग्वेद. १ । ११५ । १

“ यह अद्वितीय सूर्य ही रक्षार अंगमज्जात्मा आत्मा है। ” पाठक इस मंत्रका भावय ध्यानमें रखें और अपने अंदरकी आदित्य शक्ति गुदा जाग्रत रखनेका अनुष्ठान करें। सूर्यभेदन व्यायाम और सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा पेटके रचनमें रहनेवाली

आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है, ध्यान धारणा द्वारा मालिष्ककी आदित्य शक्ति जाग्रत होती है, तथा नाटक आदि अभ्यास द्वारा नेत्रकी आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है। इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा अपने अंदरकी आदित्य शक्ति जाग्रत और बलवृद्ध करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

इस प्रथम मंत्रके ये उपदेश यदि पाठक ध्यानमें धारण करेंगे और इन उपदेशोंका योग्य अनुष्ठान करेंगे तो उनकी आयु बढ जायगी इसमें कोई संदेह ही नहीं है। “ समाजमें निर्भयता, परमेश्वरपर दृढनिष्ठा, वायु जल सूर्य आदि देवताओंसे अधिक संबध करना और अपने अंदर आदित्य शक्तियोंकी जाग्रती करना ” यह संक्षेपसे दीर्घायु प्राप्त करनेका मार्ग है।

इसी मार्गका घोडावा स्पष्टीकरण आगेके मंत्रोंमें है, वह अब देखिये—

देवोंके पिता और पुत्र ।

इस आयुष्यवर्धन सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है, कि “ हे देवो ! जो तुम्हारे पिता हैं और तुम्हारे पुत्र हैं वे मेरी बात सुनें। मैं तुम्हारे ही आधीन इस मनुष्यको करता हूं, पुत्र इसको दीर्घ आयुष्य तक सुखसे पहुंचाओ। ” (मंत्र १)

इस द्वितीय मंत्रमें “ देव, देवोंके सब पिता और देवोंके सब पुत्र ये सब मनुष्योंको सुखसे दीर्घ आयुष्य तक पहुंचानेवाले हैं ” ऐसा कहा है, यह सूचना मनन करने योग्य है। यह मंत्र ठीक समयमें आनेके लिये देव कौन हैं, उनके पिता कौन हैं और उनके पुत्र कौन हैं, इसका विचार करना यहां अत्यंत आवश्यक है। अथर्ववेदमें इन पिता पुत्रोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।

यो वै तान्विचारवत्यक्ष स वा अथ महद्भदेव ॥ १ ॥

प्राणापानी चक्षुःश्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च वा ।

व्यानीदानीं याहमनस्ते वा आकृतिमावहन् ॥ ४ ॥

कुत इन्द्र कुत सोम कुतो अग्निरजायत ।

कुतव्यष्टा सममवत्कुतो धाताऽजायत ॥ ८ ॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमारत्नो अग्नेरभिरजायत ।

व्यष्टा ह जने व्यष्ट्यानुष्ठाताऽजायत ॥ ९ ॥

ये स आसन्दा जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।

पुत्रेभ्यः लोकं दत्वा कर्मस्ते लोक आसते ॥ १० ॥

[अथर्व ११।८।१०]

(पुरा) सबसे प्रथम (देवेभ्यः दश देवा) देवोंसे दश देव (आकृतिमावहन्) साथ साथ उत्पन्न हुए । जो इनको प्रत्यक्ष आनेगा, (दश अथ महद्भदेव) वह बड़े बड़े देवोंमें

कोलेगा । वही ब्रह्मज्ञान कहेंगेगा ॥ ३ ॥ प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अक्षितिः) अविनाशी बुद्धि, और (क्षितिः) नाशवान् चित्त, व्यान, उदान, वाचा और मन ये दस देव तेरे (आकृति आवहृत्) संकल्पको उठाते हैं ॥ ४ ॥ वहांसि इन्द्र, सोम, और अग्नि होयेंगे ? कहांसे त्वष्टा हुआ, और घाताभी कदांचे हो गया ? ॥ ८ ॥ इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और घातासे घाता हुआ है ॥ ९ ॥ (ये पुरा देवभ्यः दत्ता देवाः) जो पहिले देवोंसे दत्त देव हुए हैं, (पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा) पुत्रोंको स्थान देकर ये स्वयं (कस्मिन् लोके आसते) किस लोकमें बैठे हैं ? ॥ १० ॥

इन मंत्रोंमें देव, देवोंके पिता और पुत्र बोनसे हैं इसका वर्णन है । प्राण अपानादि दस देव इन्द्रादि देवोंसे बने हैं और वे पुन रूप देव इस शरीरमें रहते हैं, इन पुत्रदेवोंके पिता देव इस जगत्में हैं और उनके भी पिता परमात्मामें रहते हैं, इसका स्पष्टीकरण यह है—प्राणरूप देव मनुष्य शरीरमें है, वह जगत्में संचार करनेवाले वायुका पुत्र है, और इस वायु-कामी पिता-वायुका भी वायु-परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार चक्षुरूपी पुत्रदेव शरीरमें रहता है, उसका पिता सूर्यदेव सुलोकमें है, और सूर्यका पिता-सूर्यका भी सूर्य-परमपिता परमात्मा है । इसी प्रकार अन्धान्य देवोंके विषयमें जानना योग्य है । यह विषय इससे पूर्व आ चुका है, इसलिये यहां अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है ।

सबका सारांश यह है कि पुन रूपी देव प्राणियोंके इन्द्रियों और अवयवोंमें अर्थात् शरीरमें रहते हैं । इनके पितादेव भू-भुवः स्वः इस त्रिलोकीमें रहते हैं और इन सूर्यादि देवोंके भी पिता विशेष शक्तिके रूपसे परमात्मामें निवास करते हैं ।

हमारी ओंछ सूर्यके बिना कार्य करनेमें असमर्थ है और सूर्य परमात्मा ही शरीर महाशक्तिके बिना अपना कार्य करनेमें असमर्थ है । इसी प्रकार संपूर्ण देवों और उनके पिता पुत्रोंके विषयमें जानना योग्य है । इन सबके आधीन मनुष्यका दार्ष्टान्य बनना है ।

इसलिये जो दार्ष्टान्य आयुष्यके इच्छुक हैं, वे भक्तियुक्त अंतःकरणसे अपना संबंध परम पिता परमात्मासे रखें । यह परम पिता परमा सूर्य भी सूर्य, वायु भी वायु, प्राण का भी प्राण, अपान्ति देवोंका मा देव है और वहां हम सबका पिता है । इसी भक्ति यदि अंतःकरणमें रह ही गई तो मनभी समान शिपर रह सक्ती है और उससे दार्ष्टान्य प्राप्त होती है । इस प्रकार देवोंके पितासे मनुष्यका संबंध होता है

और यह संबंध अत्यंत लाभकारी है ।

वायु सूर्य आदि देवोंसे हमारा संबंध किस प्रकार है और उसका हमारे आरोग्य और दीर्घ आयुसे कितना घनिष्ठ संबंध है, यह हमने प्रथम मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें वर्णन किया ही है इसलिये उनको दुहरानेकी यहां आवश्यकता नहीं है ।

माण, चक्षु, कर्ण आदि देवपुत्र हमारे शरीरमें ही रहते हैं । योगादि साधनोंसे इनका बल बढ सकता है । इसलिये इनके ध्यायामके अनुष्ठानसे पाठक इनकी शक्ति विकसित करें और अपना शरीर बीरोग और बलवान बनाकर दीर्घायुके अधिकारी बनें ।

इस प्रकार मनुष्यका दीर्घ आयुष्यके साप देवों, देवोंके पिता और देवोंके पुत्रोंका संबंध है । यह जानकर योग्य-अनुष्ठान द्वारा आयुष्यवर्धन का प्रयत्न करें ।

परमपिता परम रत्ना यद्यपि एक ही है तथापि यह संपूर्ण सूर्य, चंद्र, वायु, दत्त आदि अनेक देवनाओंकी विविध शक्तियोंसे युक्त है, इसलिये संपूर्ण देवताओंका सामुदायिक पितृत्व उसमें है, ऐसा काव्यमय वर्णन मंत्रमें किया है वह उचितही है । इस प्रकार इस मंत्रमें मनुष्यके दीर्घ आयुष्यके अनुष्ठान का मार्ग इस मंत्रमें उलभ और स्पष्ट दृष्टान्तोंद्वारा बताया है । पाठक इसका विशेष विचार करें ।

देवोंके स्थान ।

तृतीय मंत्रमें देवोंके स्थान बड़े हैं । यह तृतीय मंत्र यह आशय प्रकट करता है, कि “ सुलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, ओषधि, वन, जल, इन स्थानोंमें देव रहते हैं, वे मनुष्यके लिये दार्ष्टान्य करते हैं और त्रिनदी सहायतासे सेक्यों अपहरण कर हो जाते हैं । ” (मंत्र ३) यह मंत्र रत्न विचार करने योग्य है ।

सुलोकमें सूर्यादि देव, अंतरिक्षमें वायु, दत्त, इन्द्र, चन्द्र आदि देव, पृथ्वीमें अग्नि आदि देव, ओषधियोंमें रसायन शोभदेव वनमें दुग्धादिहृषसे अमृत देव, जलमें वरुण आदि देव निवास करते हैं । ये सब देव मनुष्यकी आयु बढानेके कार्यमें सहायक होते हैं । सूर्य देव जीवन देता है, वायु प्राण देता है, इन्द्र और चन्द्र क्रयशः शुशुति और जाग्रतिके व्यापक और अव्यपक मनके संबलक देव है, दत्त रत्न प्राणोंका बालक है, अग्नि वातित संबंध रखता है, ओषधियोग्यतासे अमृत तथा दवाइयां बनकर मनुष्यकी सहायता करती है, वनमें भोज्य दुग्ध रूपी अमृत मिश्रा है, जल देवसे दीर्घ बनता है, वन प्रकार अन्धान्य देव मनुष्यके यशस्वक है । पशु प्रजनन द्वारा

मनुष्यने उनसे लाभ उठानेका पुरुषार्थ करना आवश्यक है ।

इन सब देवोंसे अपना संबंध सुरक्षित करके, उनसे व्या-
योग्य लाभ लेनेका यत्न करनेसे आमुष्य बल सकता है । इन
देवोंसे नाना प्रकारकी चिकित्साएं बनाई हैं, सुलोचके देवोंसे
सीरचिकित्सा, वर्णचिकित्सा, प्रकाशचिकित्सा-चिकित्सा, अंतरिक्ष
रक्षणीय देवोंसे वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, मानसचिकित्सा
अथवा चन्द्रचिकित्सा, पृथ्वीस्थानीय देवोंसे अग्निचिकित्सा,
खनिजपदार्थोंसे रसचिकित्सा, रात्रिचिकित्सा, औषधिविषेसे तथा
वनस्पतिवर्गसे भैषज्यचिकित्सा, पशुओंके दूधसे दुग्धचिकित्सा
अर्थात् पशुओंकी विविध औषधियां रिलकर तथा विविध
रंगोंकी गोबरोंके दूधका उपयोग करनेसे, तथा पशुके मूत्रादि-
के उपयोगसे विविध चिकित्साएं सिद्ध होती हैं, जलसे जल
चिकित्सा, इस प्रकार अनेकानेक चिकित्साएं होती हैं ।

इन सब चिकित्साओंका अर्थ ही यह है कि विविध रीतों से
इन सब देवोंकी दिव्य शक्तियोंसे लाभ उठाना । प्राचीन काल-
के ऋषिमुनियोंने इन सब देवोंसे लाभ उठानेके जो जो प्रयत्न
किये, उनका फल ही ये सब चिकित्साएं हैं । आजकल भी इस
दिशासे विविध प्रयत्न हो रहे हैं । इन देवताओंमें विविध और
अनंत शक्तियां हैं, उनकी समाप्ति नहीं होगी, इसलिये मनुष्यों
की विविध रीतोंसे बल करके इन देवताओंसे विशेष लाभ
उठानेके लिये यत्न करना चाहिये । इतने प्राचीन कालमें
मनुष्योंका यह उद्योग करनेसे और लाभ उठाने से और दीर्घजीवी
भी बने थे । यह शिलशिला दृढ़ गयी है, तथापि आजकल
प्रयत्न करनेपर उनी मर्मसे बहुत खोज होना संभव है । जो
पाठक इस क्षेत्रमें कार्य कर सकते हैं कार्य करें और विद्याकी उन्नति
करें तथा सबके भागी बनें । अस्तु । इस प्रकार इन देवताओं की
शक्तियों अपने अंदर लेने और उस शक्तिको अपने अंदर रिपर
करनेसे मनुष्य दीर्घ आमुष्य प्राप्त कर सकता है ।

छापारणसे छापारण प्रयत्नसे भी बड़ा लाभ हो सकता है ।
पैदा हुए चिन्तों में अपना मंगल शरीर रखनेसे, हाथमें नये
शरीर लम्बने, जकमें लम्बनेसे उत्तम औषधिविषयका रस पीनेसे
और गोशुष आदिसे पीनसे गापारण परिरक्षितमें रहने बाने
मनुष्य भी बहुत लाभ उठा सकते हैं । फिर जो विविध संज्ञ
निर्माण द्वारा इन देवों की शक्तियोंके आधिक लाभ उठानेका पुरुषार्थ
करने उनसे विरहमें क्या करता है । इस प्रकार वे देवताएं
ही समान हैं, इनसे अनेक दूध रक्षणा आदि क्या उठाना
दुष्ट सकते हैं । इनमें अनेक अमृत रस आते हैं । जो अनेकाना
पुरुषार्थ करने, लक्ष्य उठाना अमृत विनियोग और बल उठाना
अनर होना ।

देवताओंके चार वर्ग ।

इस प्रकार तीन वर्गोंमें देवताओंसे अमृतत्व प्राप्त करके
अमरत्व प्राप्त करके अर्थात् दीर्घायु बननेके अनुष्ठानका स्वरूप
बतानेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रमें देवताओंके चार वर्गीक वर्णन
किया है और इन देवताओंके अपने सहकारी सदस्य बननेका
उपदेश किया है । इस चतुर्थ मंत्रका आशय यह है—

“ देवोंमें प्रजापति, अनुयाज, हुतभाग और अनुवाद ये चार
वर्गके देव हैं । इन देवोंसे ये पाचों दिशाएं निरूपण हुई हैं ।
ये सब देव मनुष्यके सहकारी सभ्य बनें । ” (मंत्र ४)
इन चार वर्गोंके देवोंके लक्षण इनके नाचक शब्दोंसे ही
स्पष्ट होते हैं । ये लक्षण देखिये—

१ प्रजापतिः— विशेष यजन करने वाले,

२ अनुयाजः— अनुकूल यजन करने वाले,

३ हुतभागः— हुतन का भाग लेने वाले,

४ अनुवादः— हवनका माप न खानेवाले ।

पाठक इन देवोंको अपने शरीरमें सबसे प्रथम देखें— (१)

जिनपर इच्छा शक्तिका परिणाम नहीं होता, परंतु जो अवश्य
अपनी ही गतिसे कार्य करते हैं उन अवयवोंका नाम प्रजापति
है, जैसे हृदय आदि अवयव । (२) जो अवयव अपनी इच्छा
शक्तिके अनुरूप कार्यमें लगते जा सकते हैं उनको अनुयाज
कहते हैं, जैसे हाथ, पांव, कान आदि । (३) हुतभाग वे
इन्द्रिया हैं जो भोग की इच्छा हैं और कार्य करनेसे बचती
हैं और विधामसे तथा सत्कार मिलनेसे पुष्ट होती हैं । (४)
शरीरमें अनुवाद केवल ग्यारह प्राण ही हैं, क्योंकि ये प्राण
शरीरमें सदा कार्य करते हैं और स्वयं इच्छा भोग नहीं लेते,
जन्मसे लेकर मरनेतक बराबर कार्य करते हैं ।

इस प्राणस्य वर्णन तथा अन्य इन्द्रियोंके वर्णन इसी प्रकार
उपनिषदोंमें किया है । प्राणादिप्रोक्त उपनिषदोंमें शरीर बरके
प्रजापति और अनुयाज का वर्णन इस प्रकार है—

शरीरप्रत्यक्ष— के प्रजापतिः के अनुयाजः ॥

महामुष्यानि प्रजापतिः ॥

मूल्यामनुयाजः ॥

प्राणादिप्रोक्त ॥ १—४

शरीरमें बसे हुए बरके प्रजापति और अनुयाज कीन हैं ।
महामुष्य प्रजापति और मूल अनुयाज हैं । इसी प्रकार हुतभाग
और अनुवाद विषयक वर्णन उपनिषदोंमें तथा प्राज्ञायोगेतिहास
के विषयका तात्पर्य स्पष्ट दिया ही है ।

इसी भावसे ही दक्षक महाराज आदिद्वयोंमें किया जाता है ।

ससका वर्णन यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है । अनुयायों से प्रयात्र अधिक महत्त्व के हैं तथा हृतमागों से अहुताद विशेष महत्त्व रखते हैं । जो शरीरशास्त्र जानते हैं उनको इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे जानते ही हैं कि इच्छा शक्तिकी नियंत्रणासे चलनेवाले हृदयादि अंतरव-यव अधिक महत्त्व के हैं । तथा अहुताद अर्थात् कुछ भी भोग न लेते हुए जन्मसे मरनेतक अधिभ्रान्त कार्य करनेवाले प्राणादिक अधिक धोष्ठ हैं और नेत्र, कर्ण आदि अवयव जो धमसे चरते हैं, विश्राम करते हैं और भोग भी भोगते हैं वे उनके मोक्ष हैं ।

यह मुरय गौगका भेद देखकर दीर्घायु प्रशिक्षा अनुष्ठान करनेवाले को उचित है, कि वह अपने अंदर के मुख्य देवों अर्थात् इंदियशक्तियोंको अधिक बलवान् करे और अन्यो को भी बलवान् करे, परंतु यह ख्याल रखे कि गौण अवयवों की शक्ति बढाने के कार्य करते हुए मुख्य अवयवों की क्षीयता न होने दे । उदाहरण के लिये पहलवानोंके व्यायाम ही लीजिये । पहलवान लोग अपने शरीरके सुदृढीको बलवान् बनानेके यत्न बहुत करते हैं, परंतु हृदय आदि अंतरवयवोंका ख्याल नहीं करते हैं, इससे ऐसा होता है कि उनका शूल शरीर बड़ा बलशाली होता है, परंतु हृदयादि विशेष महत्त्वके अवयव कमजोर हो जाते हैं । इसका परिणाम अस्वायुमें उनकी मृत्यु हो जाती है ।

यदि ये लोग साथ हृदयको भी बलवान् बनानेका यत्न करें तो ऐसा नहीं होगा । इसलिये यहां कहना यह है कि अपने अंदर

जो देवताओंके अंश रहते हैं उनमें मुरय अवयवोंका विशेष ख्याल करना, उनकी शक्ति बढानेका और उनकी कमजोरी न पड़े इसका विशेष विचार करना चाहिये । इसके पश्चात् गौण अवयवोंका विचार करना उचित है । श्वाससंस्थान, मज्जा-संस्थान और हृदयसंस्थान आदि महत्त्वपूर्ण संस्थानोंका बल बढाना चाहिये और स्नायु आदि उनके अनुकूल रहनेकाय शक्तिशाली बनने चाहिये ।

मंत्रका प्रयात्र शब्द मुख्यका भाग और अनुष्ठान शब्द गौगका भाग बताता है । ये सब देव हमारे चारों ओर सब दिशाओंमें विभक्त हुए हैं और उन्होंने संपूर्ण स्थानको विभक्त किया है । ये सब देव हमारे शरीरमें चलनेवाले शतसात्वत्तरिक यन्त्रके भागो बने, अर्थात् ये इस सौ वर्ष चलनेवाले जीवन रूपी महायन्त्रके हिस्सेदार हैं ही, परंतु ये अपना कार्य करनेमें समर्थ बनकर अपना यहका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करनेमें समर्थ हों, अपना यत्नका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करें और निर्धिक्तासे यह शतसात्वत्तरिक यन्त्र चलानेमें हमारे सहकारी बनें ।

इस प्रकार इन मंत्रोंका आशय है, ये मंत्र स्पष्ट हैं और बहुत बोधप्रद हैं । यदि पाठक इस रंगसे अनुष्ठान करे तो उनको निःसंदेह लाभ हो सकता है । यह "आयुष्य-गण" का सूक्त है और पाठक इस विरयके अन्य सूक्तोंके साथ इसका विचार करें ।

आशा-पालक-सूक्त ।

(३१)

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता— आशापालाः; यास्तोष्पतिः)

आशानामाशापालेर्मधुतुर्म्यो अमूर्तेभ्यः । इदं भूतस्यार्ष्यधेभ्यो विधेम हविषा वृषम् ॥ १ ॥

य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थनं देवाः । ते नो निष्कृत्वाः पार्श्वेभ्यो मूधुताहंमो-अहमः ॥ २ ॥

अस्नामस्त्वा हविषा यज्ञाम्पस्नामस्त्वा घृतेन जुहोमि ।

य आशानामाशापालस्तुगीर्वो देवः म नः समूतमेह पंचवृ ॥ ३ ॥

स्वस्ति माय उग पिबे नो अस्तु स्वस्ति गोम्यो जगते पुलेभ्यः ।

विश्वं सुभूतं सुधिदयं नो अस्तु ज्योगेव द्यौम धर्मम् ॥ ४ ॥

अर्ध- (भूतस्य अध्यक्षेभ्यः) जगत्के अध्यक्ष (अमृत्येभ्यः) अमर (आशानां चतुर्भ्यः आशापालेभ्यः) दिशाओंके चार दिशापालोंके लिये (वयं) हम सब (हविषा इदं विधेम) हविर्द्व्यसे इस प्रकार अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवों ! (ये आशानां चत्वारः आशापालाः स्यन्) जो तुम दिशाओंके चार दिशापालक हो (ते नः) वे तुम हम सबको (निर्ऋत्याः पादोभ्यः) अवनतिके पाशोंसे तथा (अंहसः अंहसः) हरएक पापसे (मुञ्चतां) छुड़ाओ ॥ २ ॥ (अ-न्नामः) न यका हुआ मैं (हविषा स्वायजामि) हविर्द्व्यसे तेरा यजन करता हूँ । (अ-श्लोणः स्वाधृतेन जुहोमि) लंगड़ा न होता हुआ तुमसे पक्षि अर्पण करता हूँ । यह (आशानां आशापालः तुरयिः देवः) जो दिशाओंका दिशापाल चतुर्थ देव है (सः नः सुभूतं इह धावशन्) यह हम सबको उत्तम प्रकारसे यहां पहुंचावे ॥ ३ ॥ (नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हम सबकी माताके लिये तथा हमारे पिताके लिये आनंद होवे । तथा (गोभ्यः जगते गुरुभ्यः स्वस्ति) गौबोंके लिये, चलने फिरनेवालोंके लिये और पुरुषोंके लिये सुख होवे । (नः प्रिद्वं सुभूतं सुविद्वं अस्तु) हम सबके लिये सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हो और हम (सूर्यं ज्योत्स्नं पूषं इक्ष्मे) सूर्यको बहुत कालतक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायुयी हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— चार दिशाओंके चार अमर दिक्पाल हैं, वे इस अने हुए जगत्के अध्यक्ष हैं । उनकी पूजा हम करते हैं ॥ १ ॥ चार दिशाओंके चार दिक्पाल हैं, वे हमें हरएक पापसे बचावें और दुर्गतिसे भी हमारा छुटकारा करें ॥ २ ॥ मैं न यकता हुआ उनका सन्तार करता हूँ, लंगड़ा लूला न बनकर मैं उनको धी देता हूँ, जो इन चार दिक्पालोंके चतुर्थ देव है यह हमें सुखपूर्वक उत्तम अवस्थातक पहुंचावे ॥ ३ ॥ हमारे माता पिता, हमारे अन्य इष्टमित्र, हमारे गाय घोड़े आदि पशु तथा जो भी हमारे प्राणी हों वे सब इस इस प्रकार सुखी हों । हमारा सब प्रकारसे अभ्युदय होवे और हमारा ज्ञान उत्तम प्रकारसे बढ़े तथा हम दीर्घायु हों ॥ ४ ॥

इस द्वार से जानेसे उच्चतर अवस्था प्राप्त होती है ।

यह द्वार मन्वा केन्द्रके साथ संबंधित है । इसी मन्वा केन्द्रके साथ संबंध रखनेवाला निचला द्वार शिख है जिससे बाँयाँपात होता है । इसके योग्य नियम पालनसे सुगोम्य संतति उत्पन्न होती है, परंतु इसके अनियम में चलानेसे मनुष्यकी अचो-गति होती है । ये दो द्वार मनुष्यको उच्च और नीच बनानेमें समर्थ हैं । मन्वाचर्य पालनद्वारा उत्तर मार्गसे जानिका उपनि-षदोंका वर्णन इसी उत्तर मार्गसे सूचित करता है, इसीका नाम "उत्तरायण (उत्तर+अयन)" अर्थात् उत्तर मार्गसे जाना है । इसके विरुद्ध "दक्षिणायन" अर्थात् दक्षिण मार्गसे जाना है, जिसके संयमसे उत्तम गृहस्थधर्मपालनपूर्वक उन्नति होना संभव है, परंतु असंयमसे मनुष्य इतना गिरता है कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं होता । ये दो मार्ग मन्वातंत्रुओंके साथ संबंध रखनेवाले हैं ।

इस प्रकार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार से शरीरमें अन्ननलिका के साथ संबंध बताते हैं तथा उत्तर द्वार और दक्षिण द्वार से दो मार्ग मन्वातंत्रुओंके साथ संबंध रखते हैं । ये चार द्वारोंके चार संस्कार देव हैं परंतु ये देव राक्षसोंके हमलेके अंदर दबने नहीं पादिये ।

आशा और दिशा ।

इस सूक्तमें दिशावाचक "आशा" शब्द है और, उसके पालकका नाम "आशापाल" मंत्रोंमें आया है । "आशा" शब्दके दो अर्थ हैं । एक "दिशा" और दूसरा "आशा, महत्त्वा-कांक्षा, उम्मीद" । मनुष्यकी जैसी आशा, इच्छा, महत्त्वाकांक्षा और उम्मीद होती है उसी प्रकारकी उसकी कार्य करनेकी दिशा होती है । मनुष्य जिस समय आशाहीन हो जाता है, निराश होता है, हताश होता है, उस समय वह इस जगत्से

हटनेका या मर जानेका इच्छुक होता है । यह विचार यदि पाठकोंके मनमें जम जायगा, तो उनको पता लग जायगा कि यह सूक्त मनुष्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध रखता है ।

जिस समय "आशा" शब्दका अर्थ "आशा, आकांक्षा," आदि किया जाता है उस समय यही सूक्त मनुष्यका अभ्युदयर मार्ग बताता है । तथा जिस समय इसी "आशा" शब्दका अर्थ "दिशा" किया जाता है, उस समय यही सूक्त बाध जगत् तथा राष्ट्रके प्रबंधका भाव बताता है । सूक्तकी यह शब्दरचना विशेष गंभीर है और वह हरएक को नेदकी अद्भुत वर्णन शैलीका स्वप्न बता रही है ।

सूक्तका मनुष्यवाचक भावार्थ ।

मनुष्यकी चार आशाएँ हैं, उनके चार अमर पालक हैं । इन भूतार्थ्योंकी हम हवनसे पूजा करते हैं ॥१॥ मनुष्यकी चार आशाओंके चार पालक हैं, वे हमें पापसे बचावें और दुष्ट अवस्थासे भी बचावें ॥२॥ मैं न एकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हविते तथा घृतसे इनकी घृत करता हूँ इन चार आशाओंके पालकोंसे चतुर्थ पालक जो है वह हमें उत्तम आनंदको प्राप्त करनेमें सहायक होवे ॥३॥ इनकी सहायकसे हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोड़े आदि सब सुखी हों । हमारा अभ्युदय होवे और हम ज्ञानी बनकर दीर्घायु बनें ।

केवल एक "आशा" शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानेसे आनेसे व्यक्तिविषयक उन्नतिके मार्गके संबंधमें कैसा उत्तम उपदेश मिल सकता है यह पाठक यहाँ देखें । यह उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके अनुसार चलनेसे मनुष्य ऐंद्रिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निःश्रेयस प्राप्त कर सकता है । इस सूक्तपर बहुत सिखा जा सकता है, परंतु यहाँ संक्षेपसे ही इसका विवरण करेंगे ।

मनुष्यमें

चार द्वारोंकी चार आशाएँ ।

मनुष्यके शरीरमें चार द्वार हैं, इस बातका वर्णन इससे पूर्व किया ही है । इन चार द्वारोंके कारण चार आशाएँ मनुष्यके मनमें उत्पन्न होती हैं । जिस प्रकार घरके जितने द्वार होते हैं उनसे बाहर जाने और उन दिशाओंसे कार्य करनेकी इच्छा घरके मालिक की होती है, वही प्रकार इस शरीररूपी घरके स्वामी आत्मदेवकी आशाएँ इस घरके द्वारोंसे जगत्में प्रगम करके

वहाँके कार्यक्षेत्रमें पुनर्स्थाप्य करनेकी होती है । वास्तवमें इस शरीरमें अनेक द्वार हैं, इधमें भी द्वार हैं, ऐसा अन्यत्र कई स्थानोंमें कहा है । देखिये—

अष्टाशका नवद्वारा देवानां पूरयोप्या ।

उरसो हिरण्यका कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽनृतः ॥

(अथर्व० १०।२।३१)

“आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नामक नगरी है, इसमें सुवर्णमय कोश है वहाँ तेजस्वी स्वर्ग है।”

इस अर्ध्व श्रुतिमें शरीरका और हृदय गुहाका वर्णन करते हुए कहा है, कि इस शरीरमें नौ द्वार हैं। ये द्वार हैं इसमें कोई संदेह ही नहीं है। दो नाक, दो व्यास दो कान, एक मुख, गुदा और शिश्न ये नौ द्वार यहाँ कहे हैं। इनमें से मुख पूर्व द्वार, गुदा पश्चिम द्वार, शिश्न दक्षिण द्वार इन तीनों का संबंध इस अपने प्रचलित मूलके मंत्रमें है। जो चतुर्ध्व द्वार है वह आठ

चक्रवाले पृष्ठवर्गके ऊपर मस्तिष्कसे भी ऊपर के भागमें विद्यति नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार है—

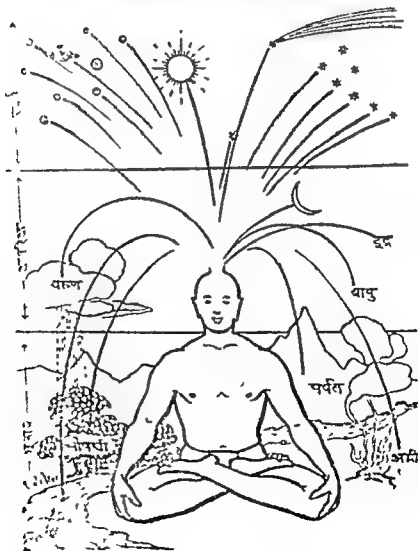
सूर्धानमस्य संसीन्यायवां हृदयं च यत्।

मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि दीर्घतः ॥

(अथर्व० १० २।२६)

“मस्तक और हृदय को सीकर अर्थात् एक केन्द्रमें लीन करके मस्तिष्कसे भी ऊपर सिरके बीचमें से प्राण फैका जाता है।”

विद्यति-द्वारसे प्रवेश ।



विदिति द्वारसे तैत्तिरीय देवोंके साथ आत्माका शरीरमें प्रवेश।
मंदर जानेपर यह द्वार बंद होता है। पश्चात् प्राणसाधन
द्वारा अपनी इच्छासे इसी द्वारसे वापस जानेपर मुक्ति।
साधारण जन देहत्याग करनेके समय किसी अन्य द्वारसे
बाहर जाते हैं, परन्तु केवल योगी ही अथर्ववेदके कहे मार्गसे
मस्तिष्कके परे इसी द्वारसे जाता है और मुक्त होता है।

इस मंत्रमें “मस्तिष्मात् ऊर्ध्वः । अपि शीर्षत ।” आदि
शब्दों द्वारा मस्तिष्कके ऊपर के उतार द्वाराका वर्णन किया है।
अथोत् जो चार द्वार हमने इस मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें
निश्चित किये हैं उनका वेदमें अन्यत्र वर्णन इस प्रकार आता है।
नौ द्वारोंमेंसे तीन और इस मन्त्रा सत्यतया एक मिलकर चार
द्वार हैं और उनको चार आशाएँ अथवा दिशाएँ हैं। अब वे
आशाएँ देखिये—

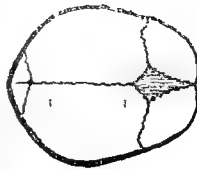
द्वार

आशा

- १ पश्चिमद्वार = गुदा = की आशा विसर्जन करना।
शरीरधर्म।
- २ पूर्वद्वार = मुख = “ ” संभ्रु भोजन करना।
अर्थप्राप्ति।
- ३ दक्षिणद्वार = शिख = “ ” भोगका उपभोग
करना। काम।
- ४ उत्तरद्वार = विदिति = “ ” बंधनसे मुक्त होना।
मोक्ष।

आरोग्यका आधार

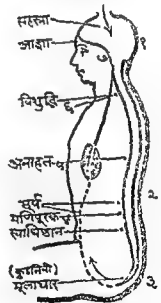
इसमें पश्चिमद्वारसे जो आशा है वह केवल “शरीरधर्म”
पालन करने की ही है तथापि इस शीघ्र धर्मसे अर्थात् पावित्र्य
बनने के कर्मसे शरीर शुद्ध होनेके कारण इससे शरीर स्वास्थ्यकी
प्राप्ति होती है। सब अन्य भोग इसके आश्रयसे हैं यह बात
हरएक जान सकते हैं। इस द्वारका कार्य विगड़ जानेसे शरीर
रोगी होता है और अन्य द्वारों की आशाएँ पूर्ण होने की असमर्थ-
ता होती है। इसके सामान्य प्रकार कार्य करनेपर अन्य आशाएँ
सफल होनेकी संभावना है। इसलिये हम कह सकते हैं, कि
इस पश्चिम द्वारकी आशा मनुष्यके मनमें “आरोग्यकी प्राप्ति”
रूपसे रहती है। इस आशाका कार्यक्षेत्र बहुत बड़ा है, मनुष्य
इस विषयमें जितना कार्य करेगा उतना वह स्वस्थता प्राप्त करेगा
और वह यदि ऐसे व्यवहार करेगा कि इस पश्चिम द्वारके
व्यवहार ठीक न चले तो उसके रोगी होनेमें कोई शंकाही नहीं
है।



मस्तकमें
विदितिद्वार



विदितिद्वार



सहस्रार चक्र
पृष्ठवंशमें चक्रोंके स्थान ।

पृष्ठवंश

खानपान ।

अब पूर्वद्वारकी आशा देखिये । संक्षेपे इतना कहना इस विषयमें पर्याप्त होगा कि इस द्वारसे मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम पान करने की इच्छा करता है । मधुरतावा प्रेम करते करते मनुष्य इतना आशिक आता है कि वह अजीर्णसे बीमार हो जाता है । इसलिये इस विषयमें प्रत्यन्तपूर्व संयम रखना चाहिये । घनिका गुलाम और गिहिका दास जो बनता है उसकी आत्मा कष्टप्रद ही होती है । हरएक इन्द्रियके विषयमें यही बात है । इस प्रकार इन्द्रिय भोगके लिये धनकी आवश्यकता है इन हेतु इस द्वारकी आशा "अर्थकी प्राप्ति" ही है । यह आशा अत्यधिक बढानेसे कष्ट होने और संयम द्वारा कल्याणप्रयुक्तके अनुसार भोग लेनेसे सुख बढेगा, उन्नति होगी । सुखद्वारसे शब्द बोलनेका भी एक काम होता है । उत्तम शब्द-प्रयोगसे जगत्में धानि फैलती है और कुलपदके प्रयोगसे अनाति फैलती है । इस विषयमें भी गिहिक संयम रहना आवश्यक है । अन्नया अन्नार्थ होनेमें कोई देर नहीं खगेगी । इस प्रकार इस द्वितीय द्वारकी आशाका संबंध मनुष्यकी उन्नतिके साथ है ।

कामोपभोग ।

श्रीशरा दक्षिण द्वार है । इस द्विजद्वारा जगत्में उत्तम प्रजनन अर्थात् सुप्रजाजनन करना आवश्यक है । परंतु जगत् में इसके अर्थमते जो अन्न ही रहते हैं, वे किन्हीं छिने नहीं हैं । इसका संयम महत्प्रयाससे साध्य होता है । ऊर्ध्वरेखा होना ही वैदिक धर्मका साध्य है । इसके विचारसे इन द्वारकी आशाएँ पता लग जायगा । यह केंद्र अर्थात् महत्प्रयास है, परंतु जनता का रुढ़ इनके कार्यमें बिगाड़ करनेकी ओर अधिक है और सुधारके मार्गमें प्रयत्न अति कम है ।

संघनका नाश ।

बननेके लिये ही ये सब धर्ममार्ग हैं । जिस समय आये हुए मार्गसे यह जीवजगत्ता वापस जानेकी शक्ति प्राप्त कर सकेगा उस समय इसको कोई बंधन कष्ट नहीं पहुँचा सकता । हरएक बंधन की दूर करनेकी इच्छा इसमें इस द्वारके कारण है ।

इस प्रकार चार द्वार की चार आशाएँ हैं और हरएक मनुष्य इन आशाओंके कार्यक्षेत्रमें घुसा या भला कार्य करता है और गिरता है या छठता है । इन आशाओंके कार्यक्षेत्रकी कल्पना पाठकोंकी ठीक प्रकार होगई, तो इस सूक्तके मंत्रोंका विचार समझनेमें कोई कठिनाता नहीं होगी । इसलिये प्रथम इन चार द्वारोंका विचार पाठक बारम्बार मननद्वारा करें और यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें । तत्पश्चात् निम्नलिखित स्थोत्र-करण पढ़ें—

अमर दिक्पाल ।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रके कथनमें तीन बातें कही हैं—“(१) चार आशाओंके चार अमर आत्मा पालक हैं । (२) देही चार भूतान्तर हैं । (३) उनकी पूजा हम इनसे करते हैं ।”

मनुष्यमें चार आशाएँ बीजनी हैं, उन आशाओंका स्वरूप क्या है और उनके साथ मनुष्यके पतन अथवा उत्थानका किस प्रकार संबंध है, यह पूर्व स्थलमें बताया ही है । चार आशाएँ मनुष्यके अंदर घनातन हैं, (१) शरीरधर्मका स्थापन करना, (२) भोग प्राप्त करना, (३) कामका भोग करना और (४) संघनेसे निवृत्त होना, ये चार आशाएँ अथवा कथनार्थ मनुष्यमें सदा जागती हैं, पूर्वमें तथा प्राक्में ये समानतासे रहती हैं । पशुपक्षियोंमें भी अस्त्रांशसे ये रहती हैं अर्थात् भूतनाशमें वे सदा रहती हैं, इसलिये इनका घनातन आधिकार प्राणीमात्रपर है, मानो ये ही भूतानि अन्वस्य हैं । इनको अप्स्यत इसलिये कहा कि वे इनकी श्रेणमें ही प्राणी अपने अपने सब व्यवहार करते हैं । यदि ये आशाएँ प्राणिवर्गके अंदर न रहतीं तो उनकी इनका भी बंद हो जायगी । मनुष्यके संपूर्ण प्रयत्न इनकी आधीनत्वमें

पूजा से लोग अपना ही पात कर रहे हैं। इतनी बात मत्स्य है कि उत्तरद्वार जिसका नाम विदिति है उसमें पूजक अत्यंत अस्य हैं और पश्चिमद्वार की पूजा करना थोड़े ही जानते हैं। पश्चिमद्वार की पूजा योगमें प्रसिद्ध “अपानायाम” से की जाती है। जिस प्रकार नासिका द्वारासे करनेका प्रणायाम होता है उसी प्रकार पश्चिम गुद द्वारसे अपानायाम किया जाता है। इसकी क्रिया भी थोड़े लोग जानते हैं। यह क्रिया योग-शास्त्रमें प्रसिद्ध है और इससे नाभिके निचले भागका आरोग्य प्राप्त होता है। उत्तरद्वार विदितिके उपासक स्वाम योगी होते हैं वे इस स्थानकी चालना करके अपनी मुक्तता प्राप्त करते हैं। इनकी हवनसे पूजा यह है—

१ पूर्वद्वार— (मुख)— अक्षपानादिके हवनसे पूजा

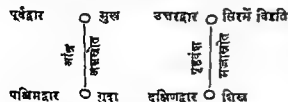
२ दक्षिणद्वार— (शिख)— भोगादिद्वारा कामदेवकी पूजा ।

६ पश्चिमद्वार — (गुदा)— अपानायाम—अपानका प्राणमें हवन करके पूजा । इसका उल्लेख भगवद्गीतामें । भी है — अपाने जुद्धति प्राण प्राणोऽपानं तथा परे । (म० गी० ४।२९)

७ उत्तरद्वार— (विदिति)— मस्तिष्कके मज्जाकेन्द्रके सहस्रारचक्रमें ध्यानादिसे पूजा ।

यहां पाठक जान सके होंगे, कि पहिली दो उपासनाएं जगत् में अधिक हैं और दूसरी दो कम हैं। परंतु बीजरूपसे हैं। प्रथम मंत्रमें “ हम चारों अमर आशापालोंकी हवनद्वारा पूजा करेंगे” ऐसा स्पष्ट कहा है। यह इसलिये कि हर एक मनुष्य चारोंकी उपासनाद्वारा अपना उद्धार करे ।

‘ यहाँ नियमन की बात पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये । यह नियमन इस प्रकार है—



पूर्व तथा पश्चिमद्वार से हमारे आंतिके विषय दिशाके मुख है । मुखका अतिरेक होनेसे गुदाका कार्य बिगड़ता है, और

गुदाका कार्य ठीक रहनेसे मुखकी शक्ति ठीक रहती है। इस प्रकार ये एक दूसरेपर नियमन करते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क और शिख ये परस्परका नियमन करते हैं। यदि शिखदेवने अतिरेक किया तो मस्तिष्क हलका होता है, और मनुष्य बुद्धि-का कार्य करनेमें असमर्थ होता है, पागल बनता है, निरम्मा होता है। तथा मस्तिष्कमें सुविचारोंको स्थिर करनेसे वे सुविचार शिखदेवका संयम करनेमें सहायक होते हैं। इस प्रकार ये परस्पर उपकारक भी हैं और घातक भी हैं। पाठक सोच कर जाननेका प्रयत्न करें कि ये किस प्रकार उपकारक होते हैं और कैसे घातक होते हैं तथा इनकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और इनके प्रकीर्णसे किस प्रकार बचना चाहिये । अब द्वितीय मंत्रका विचार करेंगे—

पापमोचन ।

द्वितीय मंत्रका आशय यह है— “चार आशाओंके चार आशापालक देव हैं वे हमें पापसे तथा अधोगतिसे पापासे बचावें । ”

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंने जान लिया होगा कि ये चार देव हमें किस प्रकार बचा सकते हैं और किस प्रकार गिरा सकते हैं । देखिये—

१ पूर्वद्वार—मुख=जिह्वाकी गुलामीसे खानपानमें अतिरेक होकर, पेटका बिगाड़ और स्वास्थ्यका नाश । इसी जिह्वाके संयमसे आरोग्यप्राप्ति ।

२ पश्चिमद्वार—गुदा=पूर्वोक्त संयम और असंयमसे ही इसका त्याग या हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

३ दक्षिणद्वार—शिख=अज्ञानध्वंसाद्वारा संयमसे शक्ति, संयम-पूर्वक शुद्धसंघर्षमें पालनसे सुप्रज्ञाप्राप्ति और असंयमसे क्षय ।

४ उत्तरद्वार—विदिति—पूर्वोक्त संयम और असंयमसे इसके त्याग और हानि प्राप्त होनेका संबंध है ।

इसका मनन करनेसे ये किस नियमसे पापसे छुड़ा सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है । पापसे छुड़ानेसे ही निश्चितिके पाप-से मनुष्य छूट जाता है । निश्चितिका अर्थ नाश है । पाप करने-वालेको निश्चितिके अर्थात् विनाशके पाप नाश देते हैं । और पुण्यवानोंसे उनसे कोई कष्ट नहीं होता । इस मंत्रका यह कथन बड़ा बोधप्रद है कि ये चार द्वारकी चार आशाएं मनुष्यको पापसे छुड़ा सकती हैं और संयमसे भी मुक्त कर सकती हैं । पाठक अपनी आरती अवस्थाका विचार करें और आत्मपरीक्षाद्वारा जाननेका यत्न करें कि उनके ऊपरमें क्या दो रखा है । यदि

कोई आशापालक उनके विरुद्ध कार्य करता हो, या उन्मुखे आधीन हुआ हो, तो सावधानीसे अपने बचावका सत्न करें। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका विचार करनेसे इतना बोध मिला; अब तृतीय मंत्र देखते हैं—

चतुर्थ देव ।

तृतीय मंत्रका आशय यह है—“मैं न यकता हुआ और अंगोष्ठे दुर्बल न होता हुआ हवनसे तथा पक्षि इनकी तृप्ति करता हूँ। इन चार आशापालकों जो चतुर्थ आशापालक देव है वह हूँ सुखसे यश आनंद स्थानमें पहुंचावे।”

इस मंत्रमें कहा हुआ “तुरीयः देवः” अर्थात् चतुर्थ देव त्रितित्वारका रक्षक मोक्षकी आशाका पालक है। इसी देवकी कृपासे अन्य सब द्वागोष्ठा नियमन हो सकता है। इसी दृष्टिसे अन्य सब कार्य-व्यवहारका नियमन होना चाहिये। वैदिक धर्मके संपूर्ण कार्य-व्यवहार इसी दृष्टिसे रचे गये हैं। मोक्षके मार्गके ध्यानसे जगत्के सब व्यवहार होने चाहिये। इसीका नाम धर्म है। बंधनसे मुक्त होना मुख्य साम्य है, उसके सहायकारी सब अन्य व्यवहार होने चाहिये। अमृत्या जगत्के व्यवहारको अधिक महत्त्व देनेसे और मोक्षधर्मको कम महत्त्व देनेसे मनुष्यमें कोमलता होनेके कारण बड़ा अनर्थ होगा। त्यागपूर्ण जीवन और भोगपूर्ण जीवनका भेद यहाँ स्पष्ट होता है।

मंत्रमें कहा है कि न यकता हुआ और अवयवोंसे विकल न होता हुआ मैं इन देवोंकी पूजा करूँगा। इस कथनका भाव यह है कि मनुष्य प्रयत्न करके अपना शरीर सुदृढ़ बनावे और अनेक पुरुषार्थ करनेका उपाय मनमें स्थिर करे।

इन चार देवोंकी आज्ञादिये तथा यी आदिसे कृति करनी चाहिये। त्रिवक्त्र जो हवन दे उसीके अनुकूल उषस यी भी है। वह जैसा त्रिवक्त्र देना दे वह यथायोग्य रीतिसे देकर उसकी तृप्ति करनी चाहिये। इस विषयमें धडाघट करना योग्य नहीं। न यकते हुए और न शीत होते हुए मे भोग प्राप्त करने और योग्य प्रमाणसे उनका स्वीकार भी करना चाहिये। अर्थात् बड़ी दक्षतासे जगत्का व्यवहार करना अभिनंदे। परंतु सब व्यवहार करते हुए चतुर्थ देवकी कृपा गंगाधन करनेका अनुसंधान रहना चाहिये। क्योंकि उसकी कृपासे अनंद, उन्नति, यश आदि की यश प्राप्ति होती है और मन्त्रों भी मिल सकती है।

चतुर्थ मंत्र इस प्रकार हमारे सम्मुख आता है—“इन आशापालकों सहायतासे हम तथा हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोड़े आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे तथा हम ज्ञानी बनकर निःश्रेयसके भागी बनें और दीर्घायु बनें।” इस मंत्रमें चार बातें कही हैं—

१ स्वस्ति (सु+ अस्ति) = सबका उत्तम अस्तित्व हो अर्थात् इस लोकका जीवन सुखपूर्वक हो।

२ सुभूतं = (सु+ भूति) = उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो, यह उत्तम अभ्युदयका सूचक विधान है।

३ सुविद्वत् = (सु+ विद+ वत्) = उत्तम ज्ञान मिले। आत्मज्ञान ही सब ज्ञानोंमें उत्तम और निःश्रेयसका हेतु है। वह हमें प्राप्त हो।

४ उयोक् = दीर्घकाल जीवन हो। यह तो अभ्युदय और निःश्रेयसके सहज ही प्राप्त हो सकता है।

वेदमंत्रोंमें बारंबार “उयोक् व सूर्यं दधेम” अर्थात् “दीर्घकालतक सूर्यकी हम देखते रहें।” यह एक सुहावण है, इसका तात्पर्य “हमारी आयु अनिर्दीर्घ हो” यह है। परंतु यहाँ ध्यानमें विशेषतया धारण करनेकी बात यह है कि अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका संबंध सूर्यसे अवश्यही है। जहाँ जहाँ दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपदेश वेदमें आया है वहाँ वहाँ सूर्यका संबंध अवश्य बताया है। इसलिये जो लोग दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहते हैं वे सूर्यके साथ आयुष्यवर्धनका संबंध है यह बात न भूलें। इसकी कृपासे दीर्घ आयु प्राप्त होती है इस विषयमें अथर्ववेदमें अन्यत्र कहा है—

यो ये तां ब्रह्मणो वेदाद्युतेनायुतां पुरम् ।

सन्ने ब्रह्म च ब्राह्मणं चतुः प्राणं प्रजो ददुः ॥ १९ ॥

न वै च चतुर्जैहाति न प्राणो जरसः पुरा ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद पस्याः पुरय उज्यते ॥ २० ॥

(अथर्व ११२)

“जो निययते ब्रह्मकी अमृतते पूर्णों नगरोंको जानता है उसको स्वयं ब्रह्म और ब्रह्मके साथी अन्य देव चतुः, प्राण और प्रजा देते हैं ॥ १९ ॥ अति बृहदवस्थासे पूर्ण-उषसः प्राण और चतुः उषसः नहीं जो मन्त्रपुराणोंको जानता है और त्रिवक्त्र उषसे रहनेके कारण इसका पुरय करती है ॥ २० ॥”

इस प्रकार यह ज्ञानी मनुष्य इस परलोकमें यशस्वी होता है ।
यही इस सूक्तका उपदेश है ।

विशेष दृष्टि ।

यह सूक्त केवल बाह्य दिशाएं और उनके पालकोंका ही वर्णन नहीं करता है । बाह्य दिशाओंका वर्णन इस सूक्तमें है, परंतु दिशा शब्द न प्रयुक्त करते हुए " आशा " शब्द का प्रयोग इसमें इधालिये हुआ है कि मनुष्य अपनी आशाओं और उनकी पालक शक्तियोंकी अपने अंदर अनुभव करे और उनके संयम, नियमन, और योग्य उपासन आदिसे अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे

इस सूक्तका यह लेपालंकार बड़ा ही महत्वपूर्ण है । और जो इस सूक्तका केवल बाह्य दिशाओंके लिये ही समझते हैं वे इसके महत्वपूर्ण उपदेशसे वंचित ही रहते हैं । पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें

इस सूक्तका संवेध आयुष्य गण, अपराजित गण आदि अनेक गणेश विषयकी अनुकूलतासे है । यह सूक्त स्वयं वास्तोष्पाति गण अथवा वसु गण का है । इसलिये "यहाँके निवास" के साथ इसका अपूर्व संबंध है । इस प्रकारकी दृष्टिसे विचार करनेसे पाठक इससे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं और उसको आचरणमें डालकर अपना अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं ।



जीवन-रसका महासागर ।

(३२)

(प्राप्तिः— ब्रह्मा । देवता—चावाशुधिवी)

इदं जनासो विदथं महद्ब्रह्मं वदित्यति । न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणान्ति वीरुधः ॥ १ ॥
अन्तरिक्ष आसां स्थाम् आन्तसदाभिव । आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेषतो न वा ॥ २ ॥
यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् । आद्रं तदथ सर्वदा समुद्रस्यैव स्रोत्याः ॥ ३ ॥
विश्वमन्यामभीवारं तदन्यस्यामर्षिथितम् । दिवे च विश्वेदसे पृथिव्यै चोक्तुं नमः ॥ ४ ॥

अर्थ—दे (जनासः) लोगो ! (इदं विदथं) यह ज्ञान प्राप्त करो । वही ज्ञानी (महद् ब्रह्मं वदित्यति) वही ब्रह्मके विषयमें कहेगा । (येन वीरुधः प्राणान्ति) जिससे वीरुधियों आदि प्राण प्राप्त करती है, (तत् पृथिव्यां न, नो दिवि) यह पृथ्वीमें नहीं और नहीं गुलोक में है ॥ १ ॥ (आसां अन्तरिक्षे स्थाम्) इन औषधि आदिकोंका अन्तरिक्षमें स्थान है, (आन्तसदां इव) धक कर बैठेहुओंके समान (अस्य भूतस्य आस्थानं) इस बने हुएका स्थान जो है (तत् पृथिव्यां विदुः वा न) वह ज्ञानी जानते हैं वा नहीं ? ॥ २ ॥ (यत् रेजमाने रोदसी) जो दिलनेवाले यावाशुधिवीं और (भूमि-च) केवल भूमिने भी (निरतक्षतं) बनाया (तत् जय सर्वदा आद्रं) वह आज्ञात सदासर्वदा रसमय है (समुद्रस्य स्रोत्याः इव) जैसे समुद्रके स्रोत होते हैं ॥ ३ ॥ (विश्वं) सब ने (अन्दां अभीवारं) दुष्टोंकी घेरलिया है, (तत्) वह (अन्यस्यां अभिथितम्) दुष्टोंमें आश्रित हुआ है । (दिवे च) गुलोक और (विश्वेदसे च पृथिव्यै) संपूर्ण पनाले शुक्ल पृथिवीके लिये (नमः अर्कः) नमस्कार मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—दे लोगो ! यह समझो कि जो तत्त्वज्ञान समझेवा वही ज्ञानी उसका विवरण करेगा । तत्त्वज्ञान यह है कि—जिसमें बनेवाली वनस्पतियां आदिक अपना जीवन प्राप्त करती हैं वह जीवनका सत्त्व पृथ्वीपर नहीं है और नहीं गुलोक में है ॥ १ ॥ इन वनस्पति आदिका स्थान अंतरिक्ष है । जैसे ब्रह्मदेवि विश्राम करते हैं उसप्रकार ये वनस्पति आदिक अंतरिक्षमें रहते हैं । इस बने हुए जगत्का जो आधार है उसकी कौनसे ज्ञानी लोग जानते हैं और कौनसे नहीं जानते ? ॥ २ ॥ दिवने जुम्ने जाने

युलोक और पृथ्वीलोक के द्वारा जो युद्ध बनाया गया है, वह सब इस समयतक विलकुल नया अर्थात् जीवन रससे परिपूर्ण जैसा है, जैसे सरोवरमें चलनेवाले स्रोत रससे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥ यह सब जगत् दूसरी शक्तिके ऊपर रहा है और वह भी दूसरी के ही आश्रयसे रहा है। युलोक और सब धनोपे युक्त पृथ्वी देवीको मैं नमन करता हूँ (क्योंकि ये दो देवताएँ इस जगत् का निर्माण करनेवाली हैं ।) ॥ ४ ॥

स्थूल सृष्टि ।

जो सृष्टि दिखाई देती है वह स्थूल सृष्टि है, इसमें मिट्टी परस्पर आदि अतिरथूल पदार्थ, पृथ्वीतलस्थत्यादि बढनेवाले पदार्थ, पद्मपक्षी आदि बढने और हिलनेवाले प्राणी तथा मनुष्य बढने हिलने और उन्नत होनेवाले उस खोटीके प्राणी हैं। परस्पर मिट्टी आदि स्थिर सृष्टीको छोड़ा जाय और वनस्पति पशु तथा मानव सृष्टिमें देखा जाय, तो ये उन्मूल होते हैं, बढते हैं और प्राण धारण करते हैं यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें दिखाई देनेवाला जीवनतत्त्व कौनसा तत्व है ? क्या यह स्थूल ही है या इससे भिन्न और कोई तत्व है इस का विचार इस सूक्तमें किया है ।

सब लोग इस जीवन रसका ज्ञान प्राप्त करें। यदि उनको जीवनसे आनन्द प्राप्त करना है तो उनको उचित है कि वे इस (जनास. विदथ) ज्ञानको प्राप्त करें। यह मनन करने योग्य सूचना प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही दी है। (मंत्र १)

यह जीवन रसकी विद्या कौन देगा ? नियते यह प्राप्त होगी ! यह शका यही आती है, इस विषयमें प्रथम मंत्रने ही आशं जाहर कहा है कि, जो इस विद्याको जानता होगा, परी (महत् मद्र वदिष्यति) वही मद्रके विषयमें अर्थात् इस महत्त्वपूर्ण ज्ञानके नियममें कहेगा। जिसको इस विद्याकी प्राप्ति करनेकी इच्छा हो, वह ऐसे विद्वानके पास जावे और ज्ञान प्राप्त करे। शिष्या अन्यत्रके पास जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

आगे के मंत्रोंमें आज्ञायाग ।

भूतमात्रका आश्रय ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—“ इस सृष्टिगत संपूर्ण परा शक्ति आश्रयस्थान अंतरिक्ष है। इन स्थूल पदार्थ मात्रका जो अंतरिक्षमें आश्रय स्थान है वह ज्ञानी भा जानते हैं वा नहीं ? ” अर्थात् इनका ज्ञान सब ज्ञानियोंको भी एकसा है वा नहीं ? ज्ञानियोंमें भी जो परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं वे ही केवल जानते हैं। सृष्टि विद्याके जाननेवाले इस बातको नहीं जान सकते, परंतु आरामविद्याका ज्ञान जाननेवाले ही इसको यथावत् जानते हैं। (मंत्र २)

इस द्वितीय मंत्रमें “ भूत ” शब्द है, इसका अर्थ ‘बना हुआ पदार्थ’ । “ जो यह बनी हुई सृष्टि है इसीका नाम भूत है और इसकी विद्याका नाम भूतविद्या है। इस सब सृष्टिका आधार देनेवाला एक सूक्ष्मतत्त्व है जिसका ज्ञान अप्यारामविद्या जाननेवाले ही जान सकते हैं। इसलिये जीवनरस विद्याका अध्ययन करनेवाले ऐसे सद्गुरुके पास जावें, कि जो इस ज्ञाता ही और उसके पाससे यह जीवनकी विद्या प्राप्त करें। यह ही ज्ञानी (महत् मद्र वदिष्यति) बड़े ब्रह्मका ज्ञान कहेगा। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका प्रथम मंत्रके साथ संबंध है।

सनातन जीवन ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि—“ जो हम यावापृथिवीके अंदर बना हुआ पदार्थ मात्र है वह यदा सर्वदा, जिस समय बना है उस समयसे लेकर इस समयतक बराबर जीवन रससे परिपूर्ण होनेके कारण नवीन सा रहा है, इसमें जीवन रस ऐसा गहरा है कि सरोवरमें चलनेवाले विविध स्रोतोंमें सरोवरका लस चलता है। ”

विषय नामोंमेंसे किसी नामका प्रयोग किया है और जगत्की मूल उत्पादक शक्तियोंका वर्णन किया है ।

जीवनका एक महासागर ।

वेदमें यावा पृथिवी — तुलोक और पृथ्वीलोक — को जगत् के माता पिता करके वर्णन किया है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् इन्हींके अंदर समाया है । यह बना हुआ जगत् यद्यपि बननेके पश्चात् घटता और बिगड़ता भी है तथापि बने हुए सम्पूर्ण पदार्थोंमें जो जीवन तत्त्व व्याप रहता है वह एक रूपसे व्यापता है, इसलिये सम्पूर्ण जगत्के निश्चय अटल और एक जैसे हैं । हजारों वर्षोंके पूर्व जैसा जीवन संसारमें चलता था वैसा ही आज भी चल रहा है । इससे जीवनामृतकी अगाध सत्ता कई कल्पना हो सकती है ।

जिस प्रकार एक ही सागरमें अनेक झोत चलते हैं तो उनमें एक ही जीवन रस सबमें एकसा प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार इस संसारके अंदर बने हुए अनंत पदार्थोंमें एक ही अगाध जीवनके महासागरसे जीवन रस फैल रहा है, मानो सम्पूर्ण पदार्थ उस जीवनामृतमें धोतप्रोत मरपूर हो रहे हैं ।

पाठक क्षणभर अपने आपको भी उसी जीवन महासागरमें धोतप्रोत भलेबाले एक चूनेके सामान समझें और अपने अंदर वही जीवन झोत चल रहा है इसका ध्यान करें । जिस प्रकार तैरनेवाला मनुष्य अपने चारोंओर जलका अनुभव करता है उसीप्रकार मनुष्य भी उसी जीवन महासागरमें तैरनेवाला एक प्राणी है, इसलिये इस प्रकार ध्यान करनेसे उस जीवनामृतके महासागर की अल्पसी कल्पना हो सकती है । यह जीवन सदा ही नवीन है, कभी भी यह पुराना नहीं होता, कभी बिगड़ता नहीं । अन्य पदार्थ बनने और बिगड़ने पर भी यह एहसास नवीन रहता है । और यही सबको जीवन देता है । (तत् त्वय सर्वदा आर्द्रं) वह आज और सदा सर्वदा एक जैसा अभिनव रसपूर्ण रहता है । सबको जीवन देने पर भी जिसकी जीवन शक्ति रतिमान भी कम नहीं होती, इतनी अगाध जीवन शक्ति उसमें है ।

सबका एक आधय ।

चतुर्थ मंत्रका कथन है कि—”संपूर्ण विश्व अर्थात् यह स्थूल जगत् एक दूसरी शक्तिके ऊपर रहता है और वह शक्ति और दूसरी शक्तिके आश्रयसे रहता है । वही आधारका तत्त्व पृथ्वी और तुलोकके स्वरूपमें दिखाई दे रहा है इसलिये मैं तुलोकमें उसकी प्रकाशशक्तिको और पृथ्वीमें उसकी आधार शक्तिको नमस्कार करता हूँ ।” अर्थात् संपूर्ण जगत्में उसकी शक्ति ही जगत् के रूपमें प्रकट होगई है ऐसा जानकर, जगत्की देखकर उस शक्तिका स्मरण करता हुआ उस विषयमें अपनी नम्रता प्रकट करता हूँ ।

स्थूल सूक्ष्म और कारण ।

इस मंत्रमें विश्व ”शब्द” स्थूल जगत्का बोधक है इस स्थूलका आधार (अन्या) दूसरा है, इससे सूक्ष्म है और वह इसके अंदर है अथवा उसके बाहर यह सब विश्व है । प्रत्येक स्थूल पदार्थके अंदर यह सूक्ष्म तत्त्व है और यह भी तबसे आतिसूक्ष्म तत्त्व पर आश्रित है । यह तीसरा तत्त्व ही सबका एक मान आधार है और इसका जीवन अमृत सबमें एक रस होकर व्याप रहा है । इसी जीवनके समुद्रमें सब विश्वके पदार्थ तैर रहे हैं अथवा सम्पूर्ण पदार्थ रूपी छोटे बड़े होत उसी एक अद्वितीय जीवनामहासागर में चल रहे हैं । इनमें उसीका जीवन कार्य कर रहा है यह सत्ताना इस सूक्तका उद्देश्य है । अनेकों में एक ही जीवन भर है इसका अनुभव यही होता है ।

यह सूक्त केवल पढ़नेके लिये नहीं है, प्रत्युत यह मनकी धारणा करके अपने मनमें धारणाने स्थिर करनेके अनुष्ठानके लिये ही है । जो पाठक इसकी उक्त प्रकार धारणा कर सकेंगे वे ही इससे योग्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे । पाठक यहां देखें कि छोटेसे छोटे सूक्तों द्वारा वेद कैसा अद्भुत उपदेश दे रहा है । निःसंदेह यह उपदेश जीवन पलटा देनेमें समर्थ है । परंतु यह लाभ वही प्राप्त करेगा कि जो इसको जीवनमें डाढ़नेका मन करेगा ।

जलसूक्त

(३३)

(ऋषिः-शन्तातिः । देवता आपः । चन्द्रमाः)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यासुग्निः ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ १ ॥

यासां राजा वरुणो याति मर्च्ये सत्यान्ते अउपश्यन् जनानाम् ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ २ ॥

यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भुक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।

या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ ३ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।

घृतश्रुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु

॥ ४ ॥

अर्थ-जो (हिरण्य-वर्णा) सुवर्णके समान चमकनेवाले वर्णसे युक्त (शुचय पावका) शुद्ध और पवित्रता बढ़ानेवाला (यासु सविता जात) जिनमें सविता हुआ है और (यासु अग्नि) जिनमें अग्नि है, (या सुवर्णा) जो उत्तम वर्णवाला जल (अग्निं गर्भं दधिरे) अग्निको गर्भमें धारण करता है (ता आप) वह जल (न शं स्योना भवन्तु) हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ १ ॥ (यासां मर्च्ये) जिस जलके मर्च्यसे रहता हुआ (वरुण राजा) वरुण राजा (जनानां) जो सत्यान्ते अवपश्यन्) जनोके घृत्य और अवस्य कर्मोंका अवलोकन करता हुआ (याति) चलता है । (या सुवर्णा) जो उत्तम वर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ २ ॥ (देवा दिवि) देव गुप्तोन्मै (यामा भक्ष कृण्वन्ति) जिनका भक्षण करते हैं, और जो (अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति) अन्तरिक्षमें अनेक प्रकार से रहता है और जो उत्तमवर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ३ ॥ (मा चक्षुषा पश्यतापः) कल्याणकारक नेत्र द्वारा मुझको तुम देखो । (शिवया तन्वा मे स्पृशत) कल्याणमय अपने शरीरसे मेरी त्वचाको स्पर्श करो । जो (घृतश्रुत) तेज देनेवाला (शुचय पावका) शुद्ध और पवित्र (आप) जल है (ता न शं स्योना भवन्तु) वह जल हमारे लिये शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

भार्यार्थ-अन्तरिक्षमें सारा करनेवाले मेघमण्डलमें तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है, जिन मेघोंमें तेज दिखाने देता हो, जिनमें विगुरूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूपसे दिखाने देता हो, वह जल हमें शांति और आरोग्य देनेवाला होवे ॥ १ ॥ जिनमें वरुण राजा प्रसन्न है और जल जाते जाते मनुष्योंके हाथ और अश्वोंके चारों ओर कर्मोंका निर्वाह करता है जिन मेघोंमें विगुरूपी अग्निसे गर्भके रूपमें धारण किया है उन मेघोंका चदक हमें सुख और आरोग्य देवे ॥ २ ॥ गुप्तोन्मै के देव जिसका भक्षण करते हैं और जो विविध रूपरूपवाले अन्तरिक्षस्थानीय मेघोंमें रहता है तथा जो विपुलता धारण करते हैं उन मेघोंका जल हमारे लिये सुख और आरोग्य देवे ॥ ३ ॥ जल हमारा कल्याण करे और उसका हमारे शरीरके हाथ होनेवाला स्पर्श हमें आनन्द देनेवाला प्रतीत हो । मेघोंका तेजस्वी और पवित्र जल हमें शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

वृष्टिका जल ।

इन चारों मंत्रोंमें वृष्टिजलका काव्यमय वर्णन है। इन मंत्रोंका वर्णन इतना काव्यमय है और छंद भी ऐसा उत्तम है कि एक स्वरसे पाठ करनेपर पाठकको एक अद्भुत आनंदका अनुभव होता है। इन मंत्रोंमें जलके विशेषण “शुचि, पावक, सु-वर्ण” आदि शब्द वृष्टि जलकी शुद्धता बता रहे हैं। वृष्टि जल जितना शुद्ध होता है उतना कोई दूसरा जल नहीं होता। शरीर शुद्धिकी इच्छा करनेवाले विद्येलोग इसी जलका पान करें और आरोग्य प्राप्त करें। इसके पानसे शरीर पवित्र और निरोग

होता है। सामान्यतया वृष्टि जल शुद्ध ही होता है परंतु जिस वृष्टिमें सूर्यकिरणें भी प्रकाशती हैं उसकी विशेषता अधिक है। इसी प्रकार चंद्रमाको किरणोंका भी परिणाम होता है।

इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें उत्तम स्वास्थ्यका लक्षण बताया है वह ध्यानमें धारण करने योग्य है—“जलका स्पर्श हमारी चमड़ाको आत्माद देवे।” जबतक शरीर निरोग होता है तबतक ही शीत जलका स्पर्श आनंद कारक प्रतीत होता है, परंतु शरीर रुग्ण होते ही जल स्पर्श दुरा लगने लगता है।



मधु-विद्या ।

(३४)

(ऋषिः— अथर्वा । देवता—मधुवल्ली)



इयं श्रीरुन्मधुजाता मधुना त्वा खनामसि । मधोराधि प्रजातासि सा नो मधुमतस्कृधि ॥ १ ॥
जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् । ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥ २ ॥
मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे पुरारणम् । वाचा वंदामि मधुमद भूयामं मधुसंदहः ॥ ३ ॥
मधोरस्मि मधुतरो मधुघ्नमधुमत्तरः । मामित्किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ॥ ४ ॥
परि त्वा परितस्तुनेक्षुणांगामविद्विषे । यथा मां कामिन्यसो यथा मत्तार्पणा असः ॥ ५ ॥

अर्थ— (इयं श्रीरुन्मधुजाता) यह वनस्पति मधुरताके साथ जपल हुई है, म (त्वा मधुना खनामसि) तुझे मधुसे खोदता हू। (मधो अधि प्रजाता असि) शहदके साथ तू उत्पन्न हुई है अतः (सा) वह तू (न मधुमत स्कृधि) हम सबको मधुर कर ॥ १ ॥ (जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे । (जिह्वामूले मधूलकम्) मेरी जिह्वाके मूलमें भी मीठास रहे । हे मधुरता । तू (मम क्रतावसो मम चित्तमुपायसि) मेरे कर्ममें निधय रहे । (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तमें मधुरता बनी रहे ॥ २ ॥ (मे निक्रमणं मधुमत्) मेरा चालचलन मीठा हो । (मे पुरारणं मधुमत्) मेरा दूर होना भी मीठा हो । मैं (वाचा मधुमत् वदामि) वाणसे मीठा बोलता हू जिससे मैं (मधुसंदहः भूयामं) मधुरताकी मूर्ति बनूँगा ॥ ३ ॥ मैं (मधो मधुतरो अस्मि) शहदसे भी अधिक मीठा हू । (मधुघ्न मधुमत्तरः) मधुरपदार्थसे अधिक मधुर हू । (मां इह किल त्वं वना) गुप्तपर ही तू प्रेम कर (मधुमती शाखां इव) जैसे मधुर रखवाली वृक्ष शाखासे प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥ (अ निद्विषे) वैर दूर करने के लिये (परितस्तुनेक्षुणांगामविद्विषे) फैले हुए ईश्वरके साथ तुझे घेरेता हू । (यथा मां कामिनी असः) जितने तू मेरी कामना करनेवाली होवे और (यथा मत्तार्पणा असः) जिससे तू मुझसे दूर न होनेवाली होवे ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह ईश्वर नामक वनस्पति स्वभावसे मधुर है और उसको लगनेवाला और उखाड़नेवाला भी मधुरता की भावनासे ही उसको लगाता है और उखाड़ता है । इस प्रकार यह वनस्पति परमात्मासे मीठास अपने साथ लाती है, इसलिये हम चाहते हैं कि यह हम सबको मधुरतासे युक्त बनावे ॥ १ ॥ मेरी जिह्वाके अग्रभागमें मधुरता रहे, जिह्वाके मूल में और मध्यमें मधुरता

रहे । मेरे कर्ममें मधुरता रहे, और मेरा चित्त भी मधुर विचारोंका मनन करे ॥ २ ॥ मेरा चलचलन मीठा हो, मेरा आना जाना मीठा हो, मेरे शरीर और भाव तथा मेरे शब्द भी मीठे हों । ऐसा होनेसे मैं खंदर बाहरसे मीठापन की मूर्ति ही बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं गृहदशे भी मीठा बनता हूं, मैं मिठाईसे भी मीठा बनता हूं, इसलिये जिस प्रकार मधुर फलवाली शाखापर पक्षी प्रेम करते हैं इस प्रकार तू सुखपर प्रेम कर ॥ ४ ॥ कोई किसीका द्वेष न करे इस उद्देश्यसे व्यापक मधुरवृत्तियोंका अर्थात् व्यापक मधुर विचारोंकी बाढ़ चारों ओर बनाता हूं ताकि इस घाटमें सब मगुरता ही बटे और सब एक दूसरेपर प्रेम करें और विद्वेषसे कोई किसीसे विमुख न हो ॥ ५ ॥

मधुविद्या ।

वेदमें कई विद्याएं हैं अध्यात्मविद्या, देवविद्या, जन विद्या, गुरु विद्या; इसी प्रकार मधुविद्या भी वेदमें है । मधुविद्या जगत् की और किस प्रकार देखना चाहिये वह दृष्टिकोण ही मनुष्यमें उपज करती है । उपनिषदों में भी यह मधुविद्या वेद मंत्रोंसे ली है । यह जगत् मधुरूप है अर्थात् मीठा है ऐसा मानकर जगत् की ओर देखना इस बातका मनु विद्या उपदेस करता है । दूसरी विद्या जगत् की कष्टका आगर बताती है, इसको पाठक कष्टविद्या कह सकते हैं । परंतु यह कष्टविद्या वेदमें नहीं है । वेद जगत् की ओर दुःख दृष्टिसे देखाता नहीं, न ही दुःख दृष्टिसे जगत्को देखनेका उपदेस करता है । वेदमें मधुविद्या इच्छालिये है कि इसका ज्ञान प्राप्त करके लोग जगत् की ओर मधुरदृष्टिसे देखनेकी बात सीखें । इस विद्याके मंत्र अथर्ववेदमें भी बहुत हैं और अन्य वेदोंमें भी हैं, उनका यही विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । इस सूक्तके मंत्र ही स्वयं उक्त विद्याका उत्तम उपदेस देते हैं । पाठक इन मंत्रोंका विचार करें और उचित ध्यान प्राप्त करें ।

जन्म स्वभाव ।

श्रुतिमें क्या और प्राणियोंमें क्या हर एक का व्यक्तित्व जन्मस्वभाव रहता है जो बदलता नहीं । जैसा सर्वका प्रकाशना, अमिषा उष्ण होना, ईश्वर मीठा होना, करेला कड़वा होना, इत्यादि ये जन्मस्वभाव हैं । ये जन्मस्वभाव बहोसे आते हैं वह विचारणीय प्रश्न है । ईश्वर मिठाव खाता है और करेला कड़वाष्ट खाता है । पर ही भूमिमें उगी ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न दो रसोंको अपने साथ लाती हैं । कभी कोलेमें मीठा रस नहीं होता और न ही ईश्वरमें कड़वा । ऐसा क्यों होता है ? कहानियों में रस आते हैं ?

कौटिल्यके कि भूमि । कर्मादि भूमि का नाम "रसा" है । इस भूमिमें विभिन्न रस होते हैं । जो भी पौधा उगने पर पाया जाता है, वह अपने स्वभावके अनुसार भूमिमें रस गोचर है और जगत्में देना है । करेला स्वभाव-कड़वा है और ईश्वर

मीठा है । ये पौधे भूमिके विविध रसोंमें से अपने स्वभावके अनुसार रस लेते हैं और उनको लेकर जगत् में प्रकट होते हैं ।

मनुष्यमें भी यही बात है । विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न गुणधर्म प्रकट कर रहे हैं, उनको एक ही खजानेसे एकदो जीवनके महानगरसे जीवन रस मिलता है, परंतु एकमें वही जीवन शान्ति बढानेवाला और दूसरेमें अशान्ति फैलानेवाला होता है । ये स्वभाव धर्म हैं । एवही जल भेषोंमें जाता है और मीठा बनकर दृष्टिसे परिशुद्ध स्थितिमें प्राप्त होता है, जिसकी पीकर मनुष्य तृप्त हो सकता है वही जल तमुद्रमें जाता है और खारा बनता है, जिसको कोई भी नहीं सस्ता नहीं यह स्वभाव भेद हैं ।

अन्य पदार्थ अथवा अन्य योनिया अपने स्वभाव बदल नहीं सकती । मरनेतक उनमें बदल नहीं होता । परंतु मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है कि जिस योनिमें लोग छानियोंने आचरणसे अपना स्वभाव बदल सकते हैं । दुष्टके पुष्ट बन सकते हैं, सुखके प्रयुक्त बन सकते हैं, दुराचारियोंके सदाचारी हो सकते हैं, इच्छालिये वेद मनुष्योंको भलाई के लिये इस मधुविद्याका उपदेस दे रहा है । मनुष्य अपनी कड़वाहट कम करे और अपनेमें मिठाव बढाये यही यही इस विद्याका उद्देश्य है ।

अब मधुविद्याका प्रथम मंत्र देखिये— "यद् ईश्वर नामक वनस्पति मिठाव के साथ जन्मी है, मनुष्य मीठी मावनाके साथ उत्पन्न होता है । यह मधुरता लेकर आगे है, इसलिये हम आपको यह पानी मिठावसे युक्त करे ।" (मंत्र १)

यह प्रथम मंत्र बड़ा अर्थपूर्ण है । इसमें चार बातें हैं—(१) स्वयं मीठी स्वभाव का होना, (२) मांसे स्वभाव वालोंसे संबंध करना, (३) स्वयं मधुर जीवनको व्यवहृत करना, और (४) दूसरोंको मीठा बना देना । पाठक देखें कि—(१) ईश्वर स्वभावमें मीठा होता है, (२) मीठा उत्तम करनेकी इच्छा वालें दिवानोंसे उत्तरी मित्रता होती है, (३) ईश्वर स्वयं मीठा जीवन रस अपने साथ लाता है और (४) जिस बीज के साथ

मिलता है उसको। मीठा बनाता है। क्या पाठक इस आदर्श मीठे जीवनसे बोध नहीं ले सकते ?

ये चार उपदेश हैं जो मनुष्यको विचार करने चाहियें। यह ईश अपने व्यवहारसे मनुष्यको उपदेश दे रहा और बता रहा है कि इस प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य मीठा बन सकता है। इससे मनसे प्राप्त होनवाले नियम ये हैं -

(१) अपना स्वभाव मीठा बनाना। अपनेमें यदि कोई कटुता, कठोरता या तीक्ष्णता हो तो उसको दूर करना तथा प्रति समय आत्मपरीक्षा करके, दोष दूर करके, अपने अंदर मीठा स्वभाव बढ़ानेका यत्न करना।

(२) मनुष्यको उचित है कि वह स्वयं ऐसे मनुष्यों के साथ मित्रता करे कि जो मीठे स्वभाव वाले हों अथवा मधुरता फैलाने के इच्छुक हों।

(३) अपना जीवन ही मीठा बनाना, घालचलन, खेलना घालना मीठा रखना। अपने इशारेसे भी कटुताका भाव व्यक्त न करना।

(४) प्रथम इस बातका करना कि दूसरोंके भी स्वभाव मीठे बनें और कठोर मकृतिवाले मनुष्य भी सुधर कर उत्तम मधुर मकृतिवाले बनें।

पाठक प्रथम मंत्रका मनन करने तो उनका ये उपदेश मिल सकते हैं। "ईश स्वयं मीठा है मीठा चाहनेवाले किमान से मित्रता करता है, अपनेमें मधुर जीवन रख लाता है और जिसमें मिल जाता है उनको मीठा बना देता है।" इस प्रथम मंत्रके चार पादोंका भाव उक्त चार उपदेश दे रहे हैं। पाठक इन उपदेशोंका अपनापना प्रयत्न करें। (मंत्र १)

यहाँ अन्योक्ति अलंकार है। पाठक इस काव्यमय मंत्रका यह अलंकार देखें और समझें। वेदमें ऐसे अलंकारोंसे बहुत उपदेश दिया है।

मीठा जीवन।

पूर्वोक्त प्रथम मंत्रके तीसरे पादमें अन्योक्ति अलंकारसे सूचित दिया है कि "मनुष्य मिठाई के साथ जीवन व्यतीत करे।" अर्थात् अपना जीवन मधुर बनाये। दूरी बातको व्याख्या अगले तीन मंत्रोंमें सार्य वेद करता है। इसलिये उक्त तीन मंत्रोंका भाव योश विह्वल। न कहा देते हैं-

(दूसरा मंत्र) - "मेरी मिठाईके मूल, मधु और अन्नभागने मिठाई रहे अर्थात् मेरा भी मधुर चरित्र ही बनना। कभी कटु चरित्रका प्रयोग खेलनेमें और भेदमें नहीं करना, कि प्रियसे जगत्में कटुता फैले। मेरा विषय भी मीठे विचारोंका

चिन्तन करेगा। इस प्रकार चित्तके विचार और वाणीके उच्चारण एक रूपता से मीठे बन गये तो मेरे (कतु) आचार व्यवहार अर्थात् कर्म भी मीठे हो जायेंगे। इस प्रकार विचार उच्चारण आचारमें मीठा बना हुआ मैं जगत् में मधुरता फैलाऊंगा। मेरे विचार से, मेरे भाषणसे और मेरे आचार व्यवहार से चारों ओर मिठाई फैलेगी।"

(तीसरा मंत्र) - "मेरा आचार व्यवहार मीठा हो, मेरे पासके और दूरके व्यवहार मीठे हों, मेरे इशारे मीठे हों, मैं वाणीसे मधुर ही वाद्व उचरूंगा और उस भाषणका अन्वयभी मधुरता बढ़ानेवाला ही होगा। जिस समय मेरे विचार उच्चारण और आचार में स्वाभाविक और अतिशय मधुरता टपकने लगेंगी, उस समय मैं माधुर्य की मूर्ति ही बनूंगा।"

(चतुर्थ मंत्र) - "जब वाद्वसे भी मैं अधिक मीठा बनूंगा, और लट्टूहूसे भी मैं अधिक मीठा बनूंगा तब तब सब लोग निःसंदेह मुझपर वैसा प्रेम करेंगे कि जैसा पाणिन मीठे फलोंसे युक्त वृक्षशाखापर प्रेम करते हैं।"

ये तीन मंत्र कितना अद्भुत उपदेश दे रहे हैं इसका विचार पाठक अवश्य करें। ऊपर भाषार्थ देते समय ही भाषार्थ ठीक व्यक्त करने के लिये कुछ अधिक शब्द रखे हैं, उनके कारण इनका अर्थ अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रतिज्ञा।

ये मंत्र प्रतिज्ञा के रूपमें हैं। मैं प्रतिज्ञा इस प्रकार करता हूँ यह भाव इन मंत्रोंमें है। जो पाठक इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठावेके इच्छुक हैं वे वही प्रतिज्ञा करें, यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की और उस प्रमाण उनका आचरण हुआ तो उनका यह सर्वत्र वैश्यापण। यह पूर्ण अर्द्धिवा भी प्रतिज्ञा है। अपने विचार, उच्चारण, व्यापारके छिन्नी प्रकार किसीकी भी हिंसा न हो, द्वितीका द्वेषन हो, द्वितीका वैर न हो, द्वितीकी छत्रुता न हो, इस प्रकार अपना आदर्श जीवन बननेपर जगत्में आनन्ददायी शान्ताय बन जायगा। इस आनन्दका साप्ताहिक ध्यान करना वैदिक धर्मोद्योग परम धर्म ही है और इसीसे ही मधुविद्याका उपदेश ही सार्वभौम है।

भाव आदि शत्रु-उस तक न आसके । यह बाढ अपने मनमें सुविचारोंकी हो, अपने इंद्रियोंके साथ संयम की हो, अपने घरमें परस्पर प्रेमकी हो, समाजमें परस्पर मित्रताकी हो । अपने सब मित्रभा उत्तम मीठे विचार जीवन में लाने और मधुरता फैलाने बाल हों ऐसी बाढ होगई तो अंदरका मिठासका खेत बिगड़ेया नहीं । इस विषयमें पंचम मंत्र देखने योग्य है-

(पंचम मंत्र)—“ मै विद्वेषको हटानेके लिये चारों ओर फैलनेवाले मीठे ईखोंकी बाढ तुम्हारे चारों ओर करता हूँ जिससे तू मेरी इच्छा करेगी और मुझसे दूर भी न होगी । ”

यह जितना छी पुरयके आपसके अविद्वेषके लिये सत्य है

उतना ही अन्य परिवारों और मित्रजनोंके अविद्वेष और प्रेम बढ़ानेके विषयमें सत्य है । परंतु अपने चारों ओर मीठों बाढ करनेकी शुक्ति पाठकोंको अवश्य जाननी चाहिये । अपने साथ ईख की संटेरिया लेनेसे यह कार्य नहीं होगा । यह कार्य करनेके लिये जो ईख चाहिये वे विचार, उचार और आचारके तथा मनोभावना की ईख चाहिये । जो पाठक अपने अंतःकरणके क्षेत्र में ईख लगायें और उसको पुष्टि अपने मीठे जीवन से करेंगे, वे ही वे वैदिक उपदेश आचरणमें ढाल सकते हैं ।

ये मंत्र स्पष्ट हैं । अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, परंतु पाठक इनको काव्य की दृष्टिसे समझनेका यत्न करेंगे, तभी वे लाभ उठा सकेंगे ।

तेजस्विता बल और दीर्घायुष्य

की प्राप्ति ।

(३५)

(ऋषिः—अथर्वा । देवता—हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः)

यदावभन्दाक्षायुणा हिरण्यं श्रुतानीकाय सुमनुस्थमानाः ।

तत्ते वक्ष्नाभ्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय श्रुतशारदाय ॥ १ ॥

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः संहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येकतत् ।

यो विभक्तिं दाक्षायुषं हिरण्यं स जीवेयुं कृणुते दीर्घमायुः ॥ २ ॥

अर्वा तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुष जीर्वाणि ।

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्षमाणो विमरद्विरण्यम् ॥ ३ ॥

समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पर्यंता पिपामि ।

इह ाग्नी विश्वं देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ ४ ॥

अर्थ—(सुमनुस्थमानाः दाक्षायुणा) शुभ मनवाले और बलकी छद्दि करनेवाले धैर्य पुरुष (दात अनीकाय) बलके धी विमानों के सचालक के लिये (यन् हिरण्यं अथर्वा) जो सुवर्ण वाधते रहे (वन्) वह सुवर्ण (आयुषे वर्चसे) जीवन, तेज, (बलाय) बल और (श्रुतशारदाय दीर्घायुत्वाय) धी वर्धनी दीर्घ आयुके लिये (ते यन्नामि) तेरे ऊपर बांधता हूँ ॥ १ ॥ (न रक्षांसि, न पिशाचाः) न राक्षस और न पिशाच (एनं संहन्ते) इन पुरुषका हमला यह सकते हैं (हि) क्योंकि (एतन् देवानां प्रथमजं)

भोजः) यह देवोंसे प्रथम उपज हुआ सामर्थ्य है। (यः दाक्षायणं हिरण्यं त्रिभक्तिं) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है (सः जीवेतु दीर्घ आयुः कृणुते) वह जीवोंमें अपनी दीर्घ आयु करता है ॥ २ ॥ (अर्थां तेजः ज्योतिः भोजः बलं च) जलका तेज, कान्ति, पराक्रम और बल (उत्त) तथा (वनस्पतीनां वीर्याणि) औषधियोंके सब वीर्य (अस्मिन् अधि धारयामः) इस पुरुषमें धारण कराते हैं (इन्द्रे इन्द्रियाणि इव) जैसे आत्मानें इन्द्रिय धारण दोते हैं। इस प्रकार (दक्षभागः) हिरण्यं त्रिभक्तं बल बढ़ाने की इच्छा करनेवाला सुवर्णका धारण करे ॥ ३ ॥ (समानां मायां ऋतुभिः) सम महिनोंके ऋतुओं के द्वारा (संवत्सरस्य पयसा) वर्ष वर्षी गौके दूधसे (त्वा वयं पिपर्मि) तुम हम सब पूर्ण करते हैं। (इन्द्राग्री) इन्द्र और अग्नि (विश्वे देवाः) तथा सब देव (अहर्णीयमानाः) संकोच न करते हुए (ते अनु मन्यन्तां) तेरा अनुमोदन करें ॥४॥

भार्या- बल बढ़ानेवाले और मनुष्यें शुभ विचारों की धारणा करनेवाले श्रेष्ठ महात्मा पुरुष सेना संचालकके देइए बलवृद्धि के लिये जिस सुवर्णके आभूषणको लटका देते हैं, वही आभूषण में तेरे धारण करनेवाले लटकाता हूँ कि इससे तेरा जीवन सुधरे, तेज बढ़े, बल तथा सामर्थ्य वृद्धित हो और तुमसे सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ १ ॥ यह आभूषण धारण करनेवाले धारण पुरुषके हमलोगों ने राक्षस और नदी विशाच सद सकते हैं। वे इसके हमलोगों से घबराकर दूर भाग जाते हैं, क्योंकि यह देवी से निकला हुआ सबसे प्रथम दर्जा का वस्त्र है। इसका नाम दाक्षायण अर्थात् बल बढ़ानेवाला सुवर्णका आभूषण है। जो इसका धारण करता है वह मनुष्योंमें सबसे अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २ ॥ इससे इस पुरुषमें जीवन का तेज, पराक्रम सामर्थ्य और बल धारण कराते हैं। और साथ साथ औषधियोंसे नाना प्रकारके कर्मेयगन्धी बल भी धारण कराते हैं। जिस प्रकार इन्द्रमें अर्थात् आत्मानें इन्द्रिय छवियां रहती हैं वही प्रकार इस सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले मनुष्यके अंदर सप्तप्रकाशके बल रहें, वे बाहर प्रगट हो जायें ॥ ३ ॥ दो महिनोंका एक ऋतु होता है। प्रत्येक ऋतुकी शक्ति भलग्ना भलग्ना होती है; मानों संवत्सरकी गौका दूध ही संवत्सरकी छह ऋतुओंमें निकोटा हुआ है। यह दूध मनुष्य पाने और बलवान् बने। इसकी अनुकूलता ईद अग्नि तथा सब देव, करें ॥ ४ ॥

दाक्षायण हिरण्य ।

हिरण्य शब्दका अर्थ सुवर्ण अथवा सोना है, यह परिशुद्ध स्थितिमें बहुत ही बलवर्धक है। यह वेदमें भी लिया जाता है और शरीरपर भी धारण किया जाता है। श्री० वारकाचार्य हिरण्य शब्दके दो अर्थ देते हैं—“हितरमणीयं, हृदयरमणीयं” अर्थात् यह सुवर्ण हितकारक और रमणीय है तथा हृदयकी रमणीयता बढ़ानेवाला है। सुवर्ण बलवर्धक तथा रोग नाशक है इसलिये आरोग्य चाहनेवाले इसका उपयोग कर सकते हैं।

इस सूक्तमें “दाक्षायण” शब्द (दक्ष+अयन) अर्थात् बलके लिये प्रयत्न करनेवाला इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। प्रथम मंत्रमें यह शब्द मनुष्योंका विशेषण है और द्वितीय मंत्रमें यह सुवर्णका विशेषण है। तृतीय मंत्रमें इसी अर्थका “दक्ष-भाग” शब्द है जो शक्तिमानका वाचक है। शठक विचार करके तो उनको निश्चय होगा कि “दाक्षायण और दक्षभाग” वे दो शब्द करीब एकान्वय के हैं। वाचक हैं। दक्ष शब्द श्रेष्ठमें बलवाचक प्रयुक्त है। इस प्रकार इस सूक्तमें बल बढ़ानेका जो मार्ग बताया है, उसमें सबसे प्रथम हिरण्यधारण है। हिरण्यधारण दो प्रकारसे होता है, एक तो आभूषण शरीरपर धारण करना और दूसरा

सुवर्ण शरीरमें सेवन करना। सुवर्ण शरीरमें खानेकी रीति वैद्यमेंसे भी प्रसिद्ध है। सब अन्य धातु तथा औषधियां सेवन करनेपर शरीरमें नहीं रहती, परंतु सुवर्ण की ही विशेषता है कि यह शरीरके अंदर हस्त्रियोंके जोड़ोंमें जाकर स्थिर स्थाने रहता है और श्रुत्युक्त समय तक साथ देता है। इस प्रकारकी मुहूर्तधारणसे अनेक रोगोंमें मुक्तता होती है। इस रीतिसे धारण किया हुआ सुवर्ण देह मूल होनेपर उसके अंतर्गतके बाद शरीरकी शक्तों पर बलका मूल मिलता है। अर्थात् यदि किसी पुरुषने एक तोला सुवर्ण वैद्यकीय रीतिसे सेवन किया तो वह तोलामर सुवर्ण पूरा शरीरके दाह होनेके पश्चात् उसके संबंधियोंको प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार कोई हानि न करता हुआ यह सुवर्ण बल और आरोग्य देता है।

जो वेद इस सुवर्ण धारण विधिसे जानने हैं उनका नाम “दाक्षायण” प्रथम मंत्रने कहा है। इस प्रकारका परिशुद्ध सुवर्ण बलवर्धक होनेसे उक्त नाम भू “दक्षायण” है यह बात द्वितीय मंत्रने बतल दी है। जो मनुष्य इस प्रकार सुवर्ण धारण विधिसे अपना आयुष्य बढ़ाना चाहता है उक्त ही मंत्र देखने

तृतीय मंत्रमें ' दक्ष-माण ' बताया है। इस प्रकार यह सूक्त यलवर्षन की बात प्रारंभसे अंत तक बता रहा है।

दाक्षायणी विद्या ।

यल यज्ञानेकी विद्याका नाम दाक्षायणी विद्या है। (दक्ष-अयनः) यल प्राप्त करनेके मार्गका उपदेश इस विद्यामें होता है। इस विद्यामें मनके साथ विशेष संबंध रहता है (सु-मनस्यमानः) उत्तम मनसे युक्त अर्थात् मनका विशेष शक्तियों में पड़ना । कमजोरीकी भावनासे मन अशुद्ध होता है और सामर्थ्य की भावनासे बलशाली होता है। मनका शक्ति यज्ञानेकी जो विद्या है उस विद्यासे अनुसार मन सुनियमसे युक्त बननेवाले अष्ट लोग "सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः" बन जायेंगे वेदमें बताया है। पाठक अपने मनकी अवस्थाके साथ अपने बलका संबंध देखें और इन शब्दों द्वारा जो सुमनस्य होना की सूचना मिलती है, वह शेष और इस प्रकार मानसिक धारणासे अपना बल बढ़ावें।

धातु है जो जीवन शक्तिका वाचक प्रसिद्ध है। इसलिये जीवन शक्तिका अर्थ भी अनेक शब्दमें है। इस अर्थके लेनेसे "घातानीक" शब्दका अर्थ "सौ जीवन शक्तियां, अथवा सौ जीवन शक्तियोंसे युक्त" होता है। यह भाव लेनेसे उक्त मंत्र भागका अर्थ ऐसा होता है कि—

सत्तानीकाय हिरण्यं यज्जामि । (मंत्र १)

"सौ जीवन शक्तियोंकी प्राप्ति के लिये मैं सुवर्णका धारण करता हूँ।" सुवर्णके अंदर से कौनो चीज है, उन सबकी प्राप्ति के लिये मैं उसका धारण करता हूँ। यह आशय प्रथम मंत्र भाग का है। इस प्रथम मंत्रमें इनमें से कुछ गुण कहे भी हैं—

आयुषे । यजंसे । यलाय । दीर्घायुलाय । शतसारदाय ।

"आयु, तेज, बल, दीर्घ आयु, सौ वर्षकी आयु" इत्यादि शब्द जीवन शक्तियोंकी ही सूचक हैं। इनका घोषणा परिणाम यहाँ किया है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं और जान सकते हैं कि इसी प्रकार अनेक जीवन शक्तियाँ हैं, उनकी प्राप्ति अपने अंदर करनी और उनकी शुद्धि भी करनी वैदिक धर्मका उद्देश्य है। इस विचारसे ज्ञात हो सकता है कि यहाँ "घातानीक" शब्दका अर्थ "जीवनके सौ धर्म, जीवन की सैकड़ों शक्तियाँ" अभीष्ट है। यद्यपि यह अर्थ हमने संशर्प करने समय किया नहीं है तथापि यह अर्थ हमें यहाँ प्रतीत हो रहा है। इसलिये प्रसिद्ध अर्थ उत्तर देकर यहाँ यह अर्थ लिता है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

इस प्रकार प्रथम मंत्रका यजन करनेके बाद इसी प्रकारका एक मंत्र यजुर्वेदमें जोड़ते पाठभेदसे जाता है उसकी पाठकोंके विचारके लिये यहाँ देते हैं—

यदायधन्दाक्षायणा हिरण्यं सत्तानीकाय सुमनस्यमानाः ।

तस्य आयागामि शतसारदायायुष्मा अरदायैयामम् ॥

(मंत्र १५२)

प्रथमार्थ वैसाका वैसा ही है । यहाँ प्रथम मंत्रका विवरण समाप्त हुआ, अब द्वितीय मंत्रका विचार करते हैं । —

राक्षस और पिशाच ।

नरमांस भोजन करनेवाले राक्षस होते हैं और रक्त पीनेवाले पिशाच होते हैं । ये सबमे मूर्ख होनेके कारण संस्रव लोग इनसे बरते रहते हैं । परंतु जो पूर्वोक्त प्रकार "सुवर्ण प्रयोग करता है उनके हमलेको राक्षस और पिशाच भी सह "नहीं "सकते ।" इतनी शक्ति इस सुवर्ण प्रयोगसे मनुष्यको प्राप्त होती है । सुवर्णमें इनकी शक्ति है । क्योंकि "यह देवोंका पहिला भोजन है ।" अर्थात् संपूर्ण देवोंकी अनेक शक्तियाँ इसमें संश्लिष्ट हुई हैं । इसलिये द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमे कहा है कि— "जो यह बल पूर्ण सुवर्ण शरीरमें धारण करता है वह सब प्रयोज्योंसे भी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ।" अर्थात् इस सुवर्ण प्रयोगसे शरीरका बल भी बढ जाता है और दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है । यह द्वितीय मंत्रका भाव पहिले मंत्रका ही एक प्रकारका स्पष्टीकरण है, इसलिये इच्छा इतना ही, मनन पर्याप्त है । यही मंत्र मनुर्वेदमें निम्न लिखित प्रकार है—

न चन्द्रक्षानि न पिशाचास्तस्मिन् देवानामोतः प्रथमर्जं ह्येतत् ।
यो निर्माति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः ।
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ यजु० ३५५१

'यह देवोंके उत्पन्न हुआ पहिला भोजन है, इसलिये राक्षस और पिशाच भी इसके पार नहीं हो सकते । जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है और मनुष्योंमें भी दीर्घ आयु करत है ।'

इस मंत्रके द्वितीयार्धमें योधा भेद है और जो अपूर्व पाठमें "जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः" इतनाही पा, वहाँ ही इसमें "देवेषु और मनुष्येषु" मे शब्द अधिक है । "जीवेषु" शब्दका ही यह "देवेषु, मनुष्येषु" आदि शब्दोंद्वारा अर्थ हुआ है । इस प्रकार अन्य शाखासंहिताओंके पाठभेद देखनेसे अर्थ निश्चय करनेमें बड़ी सहायता होती है ।

यहाँ तक दो मंत्रोंका मनन हुआ । इन दो मंत्रोंमें शरीर पर सुवर्ण धारण करनेकी बातका उल्लेख किया है अब अगले दो मंत्रोंमें जल धन-प्राप्ति तथा शत्रुनाशानुसार उत्पन्न होनेवाले अन्य बलवर्धक पदार्थोंका अनर्वाग सेवन करनेकी महत्त्वपूर्ण विषया दी जाती है, उसका पाठक विरह प्यानमे मनन करे ।

तृतीय मंत्रमे कहा है— "जल और औषधियोंके तेज, क्षाति, शक्ति, बल और दीर्घवर्षक रम्यो इस रीति धारण करते हैं कि

जैसे आराममें इंद्रिय शक्तियाँ धारण हुई हैं । इसी प्रकार बल बढ़ानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सुवर्णका भा धारण करे ।"

जलमें नाना औषधियोंके गुण हैं यह बात इसे पूर्व आगे हुये जल सूक्त में वर्णन हो चुकी है । ये सूक्त पाठक वगैरे दत्त । औषधियोंके अंदर वीर्यवर्धक रस हैं, इसीलिये वैद्य भी पाय प्रयोग करते हैं, अर्धवेदमें भी यह बात आगे आमायागी । जिस प्रकार जल अंतर्गोष्ठा पवित्रता करके बल आदि गुणोंकी वृद्धि करता है, इसी प्रकार नाना प्रकारकी वीर्यवर्धक औषधियोंके पथ्य दिन मित भक्षण भक्षण पूर्वक सेवनसे मनुष्य बल प्राप्त करके दीर्घजीवन भी प्राप्त करता है । सुवर्ण सेवनसे भी अथवा सुवर्णदि धातुओंके सेवनसे भी इसी प्रकार लाभ होते हैं, इसका वैद्यशास्त्रमें नाम "रस प्रयोग" है । यह रस प्रयोग सुयोग्य वैद्य ही के उपदेशानुसार करना चाहिये । वहाँ यजुर्वेदका इसी प्रकारका मंत्र देखिये—

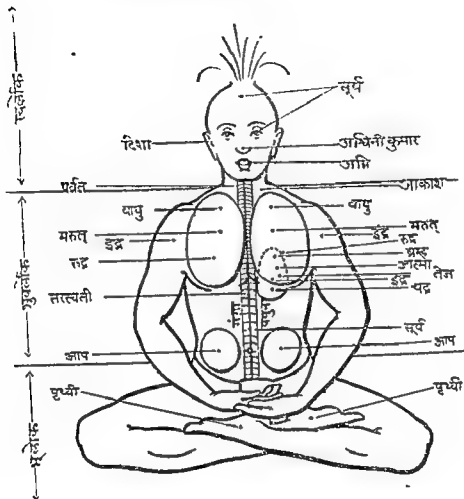
सुवर्णके गुण ।

आयुष्यं वर्षस्वं रायस्थानमौन्निरदम् ।
इदं हिरण्यं वर्षस्वस्त्रीरायाम्बिनाताडु मात् ॥
वा. यजु. ३४।५०

"(आयुष्यं) दीर्घ आयु करनेवाला, (वर्षस्वं) क्षाति बढ़ानेवाला, (रायस्थान) शोभा और पुष्टि बढ़ानेवाला (औन्निरदं) खानम उत्पन्न होनेवाला अथवा कार उठानेवाला, (वर्षस्वत्) तेज बढ़ानेवाला (जैरायु) प्रियमेते लिये (इदं हिरण्यं) यह सुवर्ण (मां त औषधिताम्) पुत्रे अथवा भरे शरीरमें प्रविष्ट हो ।"

सुवर्णका सेवन ।

मनुष्यके शरीरमें देवोंके अंश ।



जगत्में जो अग्नि आदि देव हैं उनके अंश शरीर में हैं। इनके स्वाध इस धित्रमें बताया है। इसके मननसे ज्ञात हो सकता है कि वायु जगत् के अग्नि आदि देवोंकी सहकारिताके साथ शरीरके स्वारूपका कितना घनिष्ठ संबंध है।

काली कामधेनुका दूध ।

इस चतुर्थ मंत्रमें कहा है कालरूपी संवत्सरका (काली कामधेनुका) दूध जो कनूओके द्वारा मिलता है, उससे मनुष्यकी पूर्णता करते हैं। इस कार्यमें इन्द्र अग्नि विष्णुदेव आदि सब पूर्णताये अनुकूल रहें।

संवत्सर—वर्ष अथवा साल—यह एक कामधेनु है। काल संबंधी यह धेनु होनेसे इसकी काली धेनु कहने में, यह इसलिये कामधेनु कही गई है कि मनुष्यादिकोंके इच्छित फल धान्य आदि पदार्थ जलकोंके अनुकूल देकर यह मनुष्यादि प्राणियों

की पुष्टी करती है। प्रत्येक ऋतुके अनुकूल नाना प्रकारके फल और फूल संवत्सर देता है, इसलिये वेदमें संवत्सरको पितृभी कहा है और यहां मधुर दूध देनेवाली कामधेनु कहा है। हर एक ऋतुमें कुछ नवीन फल, फूल, धान्य आदि मिलता है, यही इस धेनुका दूध है। यह दूध हर एक ऋतु इस संवत्सर रूपी गौसे निचोड़कर मनुष्यादि प्राणियोंको देते हैं, यह अनुकूल अलंकार। इस मंत्रमें बताया है। पाठक इस काव्यपूर्ण अलंकार का अस्वाद यहां लें।

प्रत्येक मासमें प्रत्येक ऋतुमें तथा प्रत्येक क्षणमें जो जो

फल फूल उत्पन्न होते हैं उनका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके बल, तेज, वीर्य, आयुष्य आदि बढ सकते हैं। यह इस मंत्रका आशय हरएक मनुष्यको मनन करने योग्य है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ व प्रयत्नसे शत्रुके अनुसार फल फूल धान्य आदिकी अधिक उत्पत्ति करे और उनके उपयोग से मनुष्योंकी लाभ पहुँचावे।

पूर्व मंत्रमें "(अपो वनस्पतीनां च वीर्याणि) जल तथा वनस्पतियोंके वीर्य" धारण करनेका जो उपदेश हुआ है उसीका स्पष्टीकरण इस चतुर्थ मंत्रने किया है। जिस शत्रुमें जो जल और जो वनस्पति उत्तम वीर्यवान् प्राप्त होनेकी संभावना हो, उस शत्रुमें उसका संप्रद्वारके, उसका सेवन करना चाहिये। और इस प्रकार आयु, बल, तेज, वांति, धार्म्य आदि गुण अपने में बढाने चाहिये।

यह वेदका उपदेश मनन करने और आचरणमें लाने योग्य है। इतना उपदेश करनेपर भी यदि लोग निर्बीर्य, निःशक्त्त्व, निस्तेज, निर्बल रहेंगे और वीर्यवान् बननेका यत्न नहीं करेंगे तो वह मनुष्योंका ही क्षोभ है। पाठक इस स्थानपर विचार करें और निश्चय करें कि वेदका उपदेश आचरणमें लानेका यत्न वे कितना कर रहे हैं और कितना नहीं। जो वैदिक धर्मी लोग अपने वैदिक धर्मके उपदेशको आचरणमें नहीं लाते वे शीघ्र प्रयत्न करके इस दिशासे योग्य सुधार अवश्य

करें और अपनी उन्नतिको साधन करें।

इस मंत्रके उत्तरार्धका भाव मनन करने योग्य है। "इन्द्र अग्नि आदि सब देव इसकी अनुकूलतासे सहायता करें" अग्नि आदि देवताओंकी सहायताके बिना कौन मनुष्य कैसे उन्नतिको प्राप्त हो सकता है? अग्नि ही हमारा भोजन पकाता है, जल ही हमारी तृप्ति प्राप्त करता है, धृष्टी हमें आधार देती है, विजली सबको चेतना देती है, वायु सबका प्राण बनकर प्राणियोंका धारण करता है, सूर्यदेव सबको जीवन शक्ति देता है, चंद्रमा अपनी किरणोंद्वारा वनस्पतियोंका पोषण करनेसे हमारा महायक बनता है, इसी प्रकार अन्यान्य देव हमारे सहायक हो रहे हैं। इनके प्रतिविधि हमारे शरीरमें रहते हैं और उनके द्वारा ये सब देव अपने अपने जीवनोस हमतक पहुँचा रहे हैं। इस विषयमें इसके पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है, इसलिये यहाँ अधिक विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

इतने विवरणसे यह बात पाठकोंके मनमें आगई होगी कि अग्नि आदि देवताओंकी सहायता किस रीतिसे हमें हो रही है और यदि इनकी सहायता अधिक से अधिक प्राप्त करेंगे और उससे अधिकसे अधिक लाभ उठानेकी विधि ज्ञात हो गई, तो मनुष्योंका बहुत ही लाभ हो सकता है। आगे है कि पाठक इसका विचार करेंगे और अपना आयु, आरोग्य बल और वीर्य बढाकर जगत् में दग़रबी होंगे।

यहाँ पाठ अनुवाद और प्रथम पाठ समाप्त।

प्रथम काण्डका मनन ।

थोडासा मनन ।

इस प्रथम काण्डमें दो प्रपाठक, छः अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मंत्र हैं । इस काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, और विषय बतानेवाला कोष्टक यहां देते हैं—जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन करना चाहते हैं उनको यह कोष्टक बहुत लाभदायक होगा—

अथर्व वेद प्रथम काण्ड के सूक्तों का कोष्टक ।

सूक्त	ऋषि	देवता	गण	विषय
१	अथर्वी	वाचस्पति	वर्चस्वगण	मेधाजनन
२	"	पर्जन्य	अपराजितगण साम्राजिक गण	विजय
३	"	मंत्रोक्त (वृध्वी, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य)	—	आरोग्य
४	सिधुद्वीपः	आपः	—	"
५	"	"	—	"
६	"	"	—	"
		(इति प्रथमोऽनुवाकः)		
७	चातनः	इन्द्राग्नी	—	अधुनाशन
८	"	अग्निः, वृहस्पतिः	—	"
९	अथर्वी	वसुदेवः	वर्चस्व गण	तेजकी प्राप्ति
१०	"	अश्वरो वरुणः	—	पापनिवृत्ति
११	"	पूषा	—	सुखप्रसूति
		(इति द्वितीयोऽनुवाकः)		
१२	भुवंगिराः	सकृन्नाशन	सकृन्नाशनगण	रोगनिवारण
१३	"	विदुः	—	ईशमन
१४	"	यमो वरुणो वा	—	कुलवधुविवाह
१५	अथर्वी	सिन्धु	—	संगठन
१६	चातनः	अग्नि, इन्द्र, वरुणः अधुनाशन गण	—	अधुनाशन
		(इति तृतीयोऽनुवाकः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ।)		
१७	महा	सोमिन्द्र	—	रक्तप्राप-दूरीकरण
१८	प्रविशोदाः	विनावक, सोमाश्वं	—	सोमामयवर्धन
१९	महा	ईश्वरः, अथ	सोमाधिकगण	अधुनाशन
२०	अथर्वी	शिव	—	महान् अश्व
२१	"	इन्द्रः	अभयगण	प्रजापालन

(इति चतुर्थोऽनुवाकः)

२२	मन्त्र	सूर्यः, हरिमा, हृद्भोगः	—	हृद्भोग तथा कामिला रोग नाशन
२३	अथर्वा	ओषधिः	—	कुष्ठनाशन
२४	मन्त्रा	आमुषी धनस्पतिः	—	”
२५	भृश्वंगिराः	अग्निः, तत्कमा	तत्कमनाशनगण	ज्वरनाशन
२६	मन्त्रा	इन्द्रादयः	स्वस्त्ययनगण	सुखगति
२७	अथर्वा	इन्द्राग्नी	”	विजयी हन्त्री
२८	चातनः	स्वस्त्ययनं	”	दुष्टनाशन

(इति पंचमोऽनुवाकः)

२९	प्रसिद्धः	अभिवर्तमानः	—	राष्ट्रवर्धन
३०	अथर्वा	विश्वेदेवाः	आमुष्यगण	आमुष्यवर्धन
३१	मन्त्रा	आद्यापालाः, धास्तोऽपतिः	वास्तुगण	आद्यापालन
३२	”	वावाप्राप्येदी	—	जीवनतत्त्व
३३	शान्ताति	आपः, चन्द्रमाः	शान्तिगण	जल
३४	अथर्वा	मधुवल्ली	—	मौठा जीवन
३५	”	हिरण्यं, इन्द्राग्नी	—	दीर्घायु
		विश्वेदेवाः	—	

(इति षष्ठोऽनुवाको द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः)

इति प्रथमं काण्डम् ।

इन सूक्तोंका मनन करनेके लिये ऋषि और गणोंका विभाग जाननेकी भी आवश्यकता है । इसलिये ये ऋषिगण मीने दत्ते हैं—

३ चातन ऋषि — शत्रुनाशन, दुष्टनाशन ।

४ भृग्वंशिरा ऋषिः—रीगनिवारण, उवरनाशन, ईशनमन विवाह ।

५ सिधुदीप ऋषि — जलसे आरोग्य ।

६ श्रवणे दा ऋषिः—सौभाग्यवर्धन ।

७ वसिष्ठ ऋषिः—राष्ट्रसंवर्धन ।

८ शान्ताती ऋषि—वृष्टि जलसे स्वास्थ्य ।

इस प्रकार किन ऋषियोंके नामोंसे किन दिन विषयोंका संबंध है यह देखना बड़ा बोधप्रद होता है । (१) सिधुदीप ऋषिके नाममें “ सिधु ” शब्द जल प्रवाह का वाचक है और यही जल देवताके मनोंका ऋषि है । (२) चातन ऋषिके नामका अर्थात् “ चातन ” शब्दका अर्थ “ घबरादेना भगदेना, शत्रुको उखाड़ देना ” है और इस ऋषिके सूक्तोंमें भी यही विषय है । इस प्रकार सूक्तोंके अंदर आनेवाला विषय और ऋषिनामोंका अर्थ इसका कई स्थानोंपर घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है । इसका विचार करना योग्य है ।

सूक्तों के गण ।

जिन प्राचीन मुनियोंने अथर्व सूक्तोंपर विचार किया था, उन्होंने इन सूक्तोंके गण बना दिये हैं । एक एक गणके संपूर्ण सूक्तोंका विचार एक साथ होना चाहिये । ऐसा विचार करने से अर्थज्ञान भी शीघ्र होता है और शब्दोंके अर्थ निश्चित करना भी सुगम हो जाता है । इस प्रथम कांडक पैंतीस सूक्तोंमें कई सूक्त कई गणोंके अंदर आगये हैं और कई गणोंमें परैगणित नहीं हुए हैं । जो गणोंमें परैगणित नहीं हुए हैं उनको अथर्वकी दृष्टिसे हम अन्धगणोंके साथ पढ़ सकते हैं । इस प्रकार गणशा विचार करनेसे सूक्तोंका बोध शीघ्र हो जाता है, देखिये—

१ चर्चर्य गण — इसके सूक्त १, ९ ये हैं । तथापि तेज, आरोग्य आदि यजुर्मेका उपदेश करनेवाले सूक्त हम इस गणके साथ पढ़ सकते हैं, जैसे — सूक्त ३—६, १८, २५, २६, ३०, ३१, ३४, ३५ आदि ।

२ अपराजित गण, साम्प्रतिकगण इसके सूक्त २, १९ ये हैं तथापि इन्हें साथ संबंध रखनेवाले अमय गणकेसूक्त हैं । तथा राष्ट्रशासन और राज्य पालनके सब सूक्त इनके साथ संबंधित हैं, जैसे—सूक्त ७, ८, १५, १६, १७, २०, २१, २७, २९, ३१ आदि ।

३ तत्कमनाशन गण—इस गणके सूक्त १२, २५, ये हैं तथापि सब रोग नाशक और आरोग्यवर्धक सूक्त इस गणके सूक्तोंके साथ पढ़ना चाहिये । जैसे सूक्त ३—६; १७, २१, २३, २५, ३३, ३५, आदि—

४ स्वस्त्ययनगण—इस गणके सूक्त २६, २७ ये हैं ।

५ आयुष्यगण—इस गणके सूक्त ३०, ३५ ये हैं, तथापि स्वस्त्ययन गण, वर्चस्वगण, तत्कमनाशन गण तथा शांतिगणके सूक्तोंका इससे संबंध है ।

६ शांतिगण—जल देवताके सब सूक्त इस गणमें आते हैं ।

७ अभयगण— इसका सूक्त २१ वां है, तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले गण स्वस्त्ययनगण, अपराजितगण, तत्कमनाशनगण, चातन सूक्त ये हैं ।

इस प्रकार यह सूक्तोंके गणोंका विचार है और इस रीतिसे सूक्तोंका विचार होनेसे बहुत ही बोध प्राप्त होता है ।

अध्ययन की सुगमता ।

कई पाठक शङ्का करते हैं कि एक विषयके सब सूक्त इकट्ठे क्यों नहीं दिये और सब विषयोंके मिलेजुले सूक्त ही सब काण्डोंमें क्यों दिये हैं । इसका उत्तर यह है कि यदि जल आदि विषयोंके संपूर्ण सूक्त इकट्ठे होते, तो अध्ययन करनेमें बड़ा कष्ट हो जाता । अभाव होनेके कारण अध्ययन करनेमें बड़ा कष्ट हो जाता । अध्ययनकी सुविधाके लिये ही मिलेजुले सूक्त दिये हैं । अच्छी पाठशालाओंमें घण्टे दो घण्टेमें भिन्न भिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं, इसका यही कारण है कि पढ़नेवालोंके मस्तिष्कको कष्ट न हो । सबरेसे शान्तक एक ही विषयका अध्ययन करना ही तो पढ़ने पढ़ानेवालोंको अतिकष्ट होते हैं । इस बातका अनुभव हरएकको होगा ।

इससे पाठक जान सकते हैं कि विषयोंकी विभिन्नता रखनेके लिये विभिन्न विषयोंके सूक्त मिलेजुले दिये हैं ।

इसमें दूसरा भी एक हेतु प्रतीत होता है, वह यह है कि, पूर्वोपर सबधका अनुमान करने और पूर्वोपर संबंधका स्मरण रखनेका अभ्यास हो । यदि जलसूक्त प्रथम काण्डमें आया हो, तो आगे जहाँ जल सूक्त आजायें वहाँ वहाँ इसका स्मरण पूर्वक अनुसंधान करना चाहिये । इस प्रकार स्मरणशक्ति भी बढ गच्छती है । स्मरणशक्तिका यजुना और पूर्वोपर संबंध जोड़नेका

अभ्यास होना ये दो महत्वपूर्ण अभ्यास इस व्यवस्थासे साध्य होते हैं।

इस प्रथम काण्डके दो प्रपाठक हैं, इस “प्रपाठक” का तात्पर्य ये दो पाठ ही हैं। दो प्र-पाठक” अर्थात् दो विशेष पाठ हैं। शुद्धि एकवार जितना पाठ लिया जाता है उतना एक-प्र पाठक होता है। इस प्रकार यह प्रथमकाण्ड दो पाठोंकी पढ़ाई है। अथवा एक अनुवाकका एक पाठ अल्पबुद्धिवालोंकेलिये माना जाय तो यह प्रथमकाण्डकी पढ़ाई छ पाठोंकी मानी जा सकती है। एक अनुवाकमें भी विषयोंकी विविधता है और एक प्रपाठकमें भी पाठ्य विषयोंकी विविधता है और इस विविधता के कारण ही पढ़ने पढ़ानेवालोंकी बड़ा रोचकता उत्पन्न हो जाता है।

आजकल इतनी पढ़ाई नहीं हो सकती, यह सुद्धि कम होना या माहकता कम होनेका प्रमाण है। यह अथर्ववेद प्रमुद विद्यार्थीके ही पढ़नेका विषय है। इसलिये अच्छे प्रमुद तथा अन्य छात्रोंमें कृतपरिधम उक्त प्रकार पढ़ाई कर सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

अथर्ववेदके विषयोंकी उपपुस्तता।

जो पाठक इस प्रथमकाण्डके सब मंत्रोंकी अच्छी प्रकार पढ़ने और धीमा मनन भी करे तो उनकी उन्नी समय इस बातका पता लग जायगा कि, इस वेदका उपदेश इस समयमें भी अर्थात् आर्यन उपयोगी तथा आज ही अपने आचरणमें लाने योग्य है। सूक्त पढ़नेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, यह उपाय आज ही हम आचरण में लायें और अपना लाभ उठावें। उपदेश की जीवितता और आपत्ता इसी बातमें पाठकोंके मनमें स्पष्ट रूपसे साझी हो जाती है।

वेद सब मंत्रोंसे घुलने संघ होनेपर भी नशान से नशान है और यही इनकी “मन्त्रात्मक प्रिया” है, यह बिना कभी पुरानी नहीं होती। जो जिस समय और जिस अवस्थामें पड़ेगा उसको उन्नी अवस्थामें और उन्नी समय अपनी उन्नतिका उपदेश प्राप्त हो सकता है। इस प्रथम काण्डके सूक्त पढ़कर पाठक हम जानका अनुभव करें और वेद विद्याका महान् अपने मनमें गिरा करें।

कम दस पांच बार मनन पूर्वक करना चाहिये।

व्यक्तिके विषयमें उपदेश।

प्रथम काण्डके २५ सूक्तोंमें करीब १६ सूक्त ऐसे हैं कि जो मनुष्यके स्वास्थ्य, आरोग्य, नीरीयता, बल, आयुष्य, सुद्धि आदि विषयोंका उपदेश देनेके कारण मनुष्यके दैनिक व्यवहार के साथ संबंध रखते हैं। हर एक मनुष्य इस समय में भी इनके उपदेशसे लाभ उठा सकता है। आरोग्यवर्धनके वैदिक उपायोंकी ओर हम पाठकोंका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जो इस गणके सूक्त हैं उनका मनन पाठन सबसे अधिक करें और अपनी परिस्थितिमें उन उपायोंकी बालनेका जितना हो सकता है उतना यत्न करें। आरोग्यवर्धनके उपायोंमें साधारणसे इन उपायोंका वर्णन विशेष करने का यह काण्डमें किया है—

जलसे आरोग्य—जल आरोग्य होता है, पानीमें साँत, तुल, नीरीयता आदि मात होती है वह बतनेवाले जल देवता के चार सूक्त दिये हैं। अनेक प्रकारके जलोंका इन सूक्तोंमें वर्णन करनेके बाद “दिव्य जल” अर्थात् वेदोंमें प्राप्त होनेवाले जलका महत्त्व बताया है यह कभी भूलना नहीं चाहिये। शृष्टिसे दिनोंमें जिन दिनोंमें शुद्ध जलकी शृष्टि होती है—उन दिनोंमें हम जलका समग्र इराका सुदृश्य कर सकते हैं। जहाँ शृष्टि बहुत होती है वहाँही बात छोड़ दी जाय तो अन्तर्गत् यह जल सालभरके फीकेके लिये पर्याप्त प्रमाणमें मिल सकता है। परंतु हमरज रखना चाहिये कि पारके एनरपर जमा हुआ जल लेना नहीं चाहिये परंतु छत पर लुले और बड़े मुखाका बर्तन रखकर उसमें गंधी शृष्टिपाराओं से जल गहराई करना चाहिये। अर्थात् ऐसा ईतकाम करना चाहिये कि शृष्टिजल की पारण गंधी अनेक बर्तनोंमें आनीय। बीचमें हर, एनर आदि टिनकी बरतन न हो। इस प्रकारका इच्छा किया हुआ जल स्वच्छ और निर्मल बोनलों भरकर हमने एनर रहना है और बिगड़ना नहीं। यह बात यदि अच्छा समझें तो वर्तमान रहना है और इसका वह नुविगमनेका गुण ही मनुष्यका आरोग्य वर्धन करना है।

चाहिये और भोजन अत्यन्त लघु होना चाहिये । हरदिन भी पानेके लिये डमका उपयोग करनेपरि बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसका नाम 'अमरवाहणा वा पान' है । इसीको 'मुरा' भी कहते हैं । मुरा शब्द केवल मय अर्थमें आजकल प्रयुक्त होता है, परन्तु प्राचीन धर्मा में इसका अर्थ 'टूट्टि जल' भी था । वर्णन का जन साम्राज्य मेघ मंडल में है और वही इस आरोग्य वर्षक टूट्टि जल को देता है । इसका वर्णन वेदके अनेक सूक्तों में है ।

वेदका यह आरोग्य प्राप्तिः सोधा, सुगम और व्ययके बिना प्राप्त होनेवाला उपाय यदि पाठक व्यवहारमें लायेंगे तो वे बड़ा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं । इसलिये हम सानुरोध पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे इस विषयमें दत्तचित्त हों और अपना लाभ उठावें ।

आरोग्य साधनके अन्य उपाय ।

जल पश्चात् आरोग्य स धनके उपाय जो वेदमें बताये गये
अथ हेतव्ये-

तंग कपड़े पहननेवाले वायु लोगोंको होती है, इसका कारण यही है कि, जिनका शरीर सूर्य किरणोंके माय संबंध होनेके कारण नीरोग रहता है वे तन्दुरुस्त रहते हैं और जो नाना कपड़े पहननेके कारण कमजोर बगड़ी बाल बनते हैं वे अधिक बीमार हो जाते हैं ।

रामायण महाभारतके समयमें रामकृष्णादि वीर अतिदीर्घ आयुवाले थे । वे वीर लोग धोती पहनते थे और धोती ही ओढ़ते थे । प्रायः अन्य समय शरीरपर एक उत्तरीय पहनते थे । पाठक इनके वर्णन यदि पढ़ेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आजायगी कि सभाओंमें भी वे लोग केवल धोती पहनकर ही बैठते थे । इसकारण इनके शरीरके साथ वायु और सूर्य प्रकाश का संबंध अच्छी प्रकार होजाता था । अनेक कारणोंमें यह भी एक कारण है कि जिस हेतु वे अतिदीर्घायुवाले और अति बलवान् थे । वह सादगी इस समय नहीं रह गई है और इस समय बड़ी टिमति हमारे जावन व्यवहारमें आगयी है इसका परिणाम हमारे अस्वास्थ्य दुर्बल और रोगी होनेमें हो रहा है । पाठक वेदके उपदेशके साथ इस ऐतिहासिक बालका भी मनन करें ।

सूर्य प्रकाश इतने विपुल प्रमाणमें भूमिपर आता है कि वह आवश्यकतासे कई गुना अधिक है । इतना होतै हुए भी तंग गलियों, तंग मकान, अंधेरे कमरे और उनमें अत्यधिक मनुष्यों की संख्या होनेके कारण जीवन देनेवाला सूर्यनारायण हमारे आरोग्यवर्धनके लिये प्रातेदिन आता है, संभाव्य हमारे लिये वह क्षतना लाभ नहीं पहुँचा सकता जितना कि वह पशुवाने में समर्थ है । ये सब दोष मनुष्यकृत हैं । प्राणिजीवनका हमें इस विषयमें बहुत विचार करना चाहिये और जहातक हो सके वहाँ तक चलन करके वह सादगी हमारे स्वागपान, वस्त्राभूषण तथा अन्योन्य व्यवहारमें आनी चाहिये । वेदके उपदेशानुसार ऋषि अपना व्यवहार रखते थे, इसलिये ब्राह्मण लोगोंको अतिदीर्घ आयु प्राप्त होती थी, और हम उसके बोलबाल उल्टे आ रहे हैं, इसलिये मनुष्यके वयसमें हम अधिक हो रहे हैं ।

ही है। खुली वायु और गुला सूर्य प्रकाश मनुष्योंकी पूर्ण आयु प्रदान करनेमें समर्थ है, परंतु जो मनुष्य उनसे दूर भागते हैं उनका लाभ कैसे हो सकता है? दृष्टिजल, सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु ये तीन पदार्थ वेद मंत्रों द्वारा आरोग्य बढ़ानेवाले बताये हैं और आजकलके शास्त्री भी उन बातों की पुष्टि कर रहे हैं, इतना ही नहीं परंतु युरोप अमेरिकामें जहां शरीर अधिक होता है, उन देशोंमें भी ऐसी संस्थाएं स्थापित हुई हैं कि जहाँ आरोग्य वर्धनके लिये सूर्य प्रकाशमें करीब करीब नगा रहना आवश्यक माना गया है। जिन लोगोंने तब कपड़े पहननेके रिवाज जारी किये, वे ही युरोप अमेरिकाके लोग इस प्रकार ऋषिजीवन की ओर झुक रहे हैं यह देखकर हमें बदरी सच्चाईका जगत् में विजय हो रहा है यह अनुभव होनेसे अधिक ही आनंद होता है। बिना प्रचार किये हुए ही लोग भूलते और भटकते हुए वैदिक सच्चाईका इस प्रकार प्रवृत्त कर रहे हैं; ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने वैदिक अध्ययन करेंगे, उन वेद मंत्रोंके उपदेशोंकी अपने आचरणमें डालेंगे, और अनुभव लेनेके पथान् अपने धार्मिक जीवनमें उस सच्चाईका जगत्में प्रचार करेंगे तो जगत्में इस सच्चाईका विजय होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी।

इसलिये हम पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे वेदका पाठ केवल मनोरंजनके लिये न करें, वेदल पारलौकिक भावनासे भी न करें, प्रत्युत वह उपदेश इस जगत् के व्यवहार में किस प्रकार वाला जा सकता है, इसका विचार करते हुए वेदका अध्ययन करें। तब इसके महत्त्वका पता विशेष रीतिसे लग जायगा।

राष्ट्रीय जीवन।

जंग वैयक्तिक जीवनके लिये वैदिक उपदेशोंकी उपयोगिता है उसी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनके लिये भी वेदके उपदेशानि मनन करने योग्य हैं। यह विषय आगेके भागमें विशेष रीतिमें आनेवाला है, और वही इसका अधिक निरूपण होगा। इस प्रथम कांडमें भी राष्ट्र विषयक मंत्र वड़े ओजस्वी और अत्यंत बोधप्रद हैं।

उन तीनोंमें सूक्तमें 'राष्ट्रके लिये गुप्त बडावो,' तथा 'राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये यह आभूषण मेरे शरीरपर बांधा जावे' इत्यादि ओंकारकी उपदेश हर एक गमयमें और हर एक राष्ट्रके मनुष्यों और राजपुरुषोंके लिये आदर्श रूप हैं। राष्ट्रीय हितोंके यह वसिष्ठ सूक्त हर एक मनुष्यकी विचार करने योग्य है।

इस प्रथम कांडमें कई महत्त्वपूर्ण विषय आये हैं उन सबका यदा विचार करनेके लिये स्थान नहीं है। उग उग गुप्तके प्रसंगमें ही विशेष ध्यान दिवदर्शन किया है। इसलिये हमसे दुहराने की यहाँ कोई आवश्यकता ही नहीं है। पाठक इस सूक्तका बारबार मनन करेंगे तो मननसे उनके मनमें ही विशेष बातें स्वयं स्फुरित हो जायगी, जो ऊपरके विषयमें लिखी नहीं हैं। वेदका अर्थ जाननेके लिये मनुष्य की करना चाहिये।

आजा है कि पाठक मनन पूर्वक इस सूक्तका अन्वय करेंगे और इस उपदेशसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करनेका यत्न करेंगे तथा जो विशेष बात अनुमनमें आ जायगी उसका प्रकाशन जनताकी सहायके लिये करेंगे। इस प्रकार करनेसे सबका ही भला हो जायगा।





अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

प्रथमकाण्डकी विषय-सूची ।

सूक्त	विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अथर्ववेदके विषयमें स्मरणीय कथन ।	३	पृथ्वीमें जीवन ।	॥	
अथर्ववेदका महत्त्व ।	॥	मृत्युकी निवारण ।	११	
अथर्वशास्त्र ।	॥	पूर्वोपर सम्बन्ध ।	२०	
अथर्वके कर्म ।	॥	आर्य शास्त्र का ज्ञान ।	॥	
मन्त्रका सम्बन्ध ।	४	४ जल सूक्त ।	॥	
छान्तिर्कर्म के विभाग ।	॥	५	॥	
मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य ।	५	६	॥	
सूक्तोंके गण ।	६	जलकी मिश्रता ।	॥	
अथर्ववेदका महत्त्व ।	॥	जलमें औषध ।	११	
अथर्ववेद प्रथम काण्ड ।	८	समता और विषमता ।	॥	
१ वैधाजनन ।	९	जलकी वृद्धि ।	१४	
गुहिका संवर्धन करना ।	१०	दीर्घ आयुष्यका साधन ।	॥	
मनन ।	११	प्रजनन काल ।	॥	
अनुसंधान ।	१२	७ धर्म-समाचार-सूक्त ।	१५	
२ विजय-सूक्त ।	॥	अग्नि बौन है ।	१६	
वैयज्ञिक विजय ।	१३	ज्ञानी उपदेशक ।	॥	
पिताके गुण-धर्म-कर्म ।	॥	महा सखिय ।	॥	
माताके गुण-धर्म-कर्म ।	॥	इन्द्र बौन है ।	॥	
पुत्रके गुण-धर्म-कर्म ।	॥	धर्मोपदेश का क्षेत्र ।	॥	
एक अनुसंधान अलंकार ।	१४	दुष्टोंका सुधार ।	१७	
दुष्टका विजय ।	॥	मित्र भोजन करो ।	१८	
पूर्वोपर सम्बन्ध ।	१५	दुष्ट जीवनका पथान्वय ।	॥	
दुष्टमर्यादा आदर्श ।	॥	धर्मोपदेशक कार्य बन्धन ।	॥	
औषधि प्रयोग ।	॥	दुष्टोंकी पथान्वय छान्ति ।	१९	
राष्ट्रका विजय ।	१६	धर्मका दृष्टि ।	॥	
३ आरोग्य सूक्त ।	॥	आयुर्भोग दण्ड ।	॥	
आरोग्य का साधन ।	१७	अपत्य और सखियोंके प्रत्यक्ष सम्बन्ध ।	२०	
धर्मन्वये आरोग्य ।	॥	८ धर्म-समाचार-सूक्त ।	॥	
मित्र (प्राय) वापुगे आरोग्य ।	॥	धर्मोपदेशक की काम ।	११	
बल (बल) देवते आरोग्य ।	॥	मर्यादित आहार ।	॥	
बल (धर्म) देवते आरोग्य ।	१८	दुष्टोंकी सम्बन्धका सुधार ।	१९	
सूर्यदेवते आरोग्य ।	॥	९ धर्म-समाचार-सूक्त ।	॥	
वधवार विष्णु ।	॥			

९ सर्व-भासि सूक्त।	३३	वरकी परीक्षा।	"
देवताओंका सम्बन्ध।	"	पतिके गुणधर्म।	"
उष्णतिका मूलमन्त्र।	३४	बधू परीक्षा।	५१
विजयके लिये संयम।	३५	बन्ध्याके गुणधर्म।	"
ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी भासि।	"	मगनीका समय।	"
जनताकी भलाई करना।	"	धिरकी सजावट।	"
उष्णतिकी चार सीदियाँ।	३६	मंगनीके पथान् विवाह।	५२
इन सूक्तोंका स्मरणार्थ उपदेश।	"	१५ संगठन-महायज्ञ-सूक्त	"
१० असत्य भाषणादि पापोंसे छुटकारा।	३७	संगठनसे क्षत्रिकी वृद्धि।	५३
पापसे छुटकारा पानेका मार्ग।	३८	यज्ञमें संगतिकरण।	"
एक शासक ईश्वर।	"	संगठन का प्रचार।	५४
ज्ञान और भक्ति।	"	पशुभाव का यज्ञ।	"
प्रायश्चित्त।	"	पशुभाव छोड़नेका फल।	"
पापी मनुष्य।	३९	१६ चौर-नाशन-सूक्त	५५
११ सुख-प्रसूति सूक्त।	"	सिंसेकी गोली।	"
प्रसूति प्रकरण।	४०	शत्रु।	"
ईशभक्ति।	"	आर्य वीर।	५६
देवोंका गर्भमें विकास।	४१	१७ रक्तछाव बन्द करना।	"
गर्भवती स्त्री।	"	थाव और रक्तभाव।	५७
गर्भ।	"	इर्भाव की क्षी।	"
सुख प्रसूतिके लिये आदेश।	४२	विषवाके वध।	"
आईकी सहायता।	"	१८ धौमाव-वर्धन-सूक्त।	५८
सूचना।	४३	कुलक्षण और सुलक्षण।	५९
१२ श्वादि रोग निवारण सूक्त।	४४	वाणीसे कुलक्षणोंको हटाना।	"
महत्त्वपूर्ण रूपक।	४५	वाणीसे श्रेयणा।	"
आरोग्य का दाता।	"	दायी और पावोंका दह।	६०
सूर्य किरणोंसे चिकित्सा।	४६	धौमावके लिये।	"
शर्व साधारण उपाय।	"	सन्तानका कल्याण।	"
१३ अन्तर्यामी ईश्वरको नमन।	४७	क्षत्रु नाशन-सूक्त।	"
सूक्त की देवता।	"	आन्तरिक कवच।	६१
तापका महत्व।	४८	दस सूक्तके दो विभाग।	"
परम धाम।	४९	वैदिकधर्मका माध्य। ब्राह्मकवच	"
सुखमें सहायता।	"	अग्न कवच। क्षात्र कवच।	६२
नमन।	"	दासभावका नाश।	"
१४ कुलवत् सूक्त।	"	२० महावृक्षसूक्त।	६३
पक्षिण प्रस्ताव।	५०	पूर्व सूक्तसे सम्बन्ध।	"
प्रस्तावना अनुमोदन।	५१	आपसकी पूट हटा दो।	"
		बड़ा शापक।	६४

२१ प्रजा-पालक--सूक्त ।	३१	दुष्टका सुधार ।	"
आन भर्मा ।	६५	२९ राष्ट्र-सर्वधन सुवर्त ।	७९
२२ हृदयरोग तथा कामिलारोगकी चिकित्सा ।	६५	अनुष्ठान ।	८०
वर्ण चिकित्सा ।	६६	अभीवर्त माणि	"
सूर्यकिरण चिकित्सा ।	"	इस सूक्तका संवाद ।	"
परिधारण विधि ।	"	राजके गुण ।	"
हृय और बल ।	"	राजविजु ।	"
रंगीन रंगोंके दूधसे चिकित्सा ।	६७	राजके सङ्घ ।	८२
पथ्य ।	"	सबकी सहायता ।	"
२३ भेद-कुष्ठ-नाशन सूक्त ।	६७	केवल राष्ट्रके लिये ।	"
श्वेतकुष्ठ ।	६८	" राष्ट्र " का अर्थ ।	८३
निदान ।	"	३० आयुष्य-वर्धन-सूक्त ।	"
दो भेद और उनका उपाय	"	आयुका सर्वधन ।	८६
रंगका पुसना ।	"	सामाजिक निर्भयता ।	"
औषधियोंका पोषण ।	"	देवोंके आधीन आयुष्य ।	८५
२४ कुष्ठ-नाशन-सूक्त ।	६९	इस क्या करते हैं ?	"
ननस्पतिके माता पिता ।	"	आदित्य देवोंकी जामती ।	८६
सकप करण ।	७०	देवोंके पिता और पुत्र ।	"
ननस्पतिपर विजय ।	"	देवोंके स्थान ।	८७
सूर्यका प्रभाव ।	"	देवताओंके चार वर्ग ।	८८
सूर्यसे बोधे प्राप्ति ।	"	३१ आशा-पालक-सूक्त ।	८९
२५ शीत-उष्ण-दूरीकरण सूक्त ।	७०	दिवपाल ।	९०
उष्णकी उत्पत्ति ।	७१	देहमें चार दिक्पाल ।	"
उष्णका परिणाम ।	"	आशा और दिशा ।	९१
दिसम्बरके नाम ।	७२	सूक्तका अनुष्ठान वाचक भावार्थ ।	"
नम शब्द ।	७३	अनुष्ठानमें चार द्वारोंकी चार आशाएँ ।	"
२६ सुख-प्राप्ति-सूक्त ।	७३	विदिति-द्वारसे प्रवेश । (चित्र)	९२
देवोंसे मित्रता ।	"	द्वार, आशा ।	"
विशेष सूचना	७४	आरोग्यका आधार ।	"
२७ विजयी की का पराक्रम ।	७५	महत्त्वमें विदिति द्वार । (चित्र)	"
इन्द्राणी ।	"	पृष्ठ वंश (चित्र)	"
भोर (जो) ।	"	विदितिद्वार, सहचारक, पृष्ठ-	"
शत्रुवाचक शब्द ।	७६	वर्धमें वर्धोंके स्थान । (चित्र)	"
तीन गुणा सात ।	"	कानपान ।	९४
निर्जरायु ।	"	कामोपयोग ।	"
२८ दुष्ट-नाशन सूक्त ।	७७	बंधनका नाश ।	"
पूर्वोपर सम्बन्ध ।	"	अथर्व दिक्पाल ।	"
दुर्जनके सङ्घ ।	७८		

हवनसे पूजन ।	१	प्रविष्टो	१
पापमोचन ।	१५	मीठी बाढ	११
स्वतुल्य देव ।	१६	३५ तेजस्विता, बल और दीर्घायुष्यकी प्राप्ति ।	१०४
द्वार्थ श्राद्ध ।	१७	दाक्षायण हिरण्य	१०५
विशेष रणि ।	१७	दाक्षायणी विद्या	१०६
३३ जीवन रसका महासागर	१७	सुवर्ण धारण	१०७
स्थूल घटि ।	१८	राक्षस और पिशाच	१०८
जीवन का रस ।	१८	सुवर्णके गुण	१०९
भूतमात्रका साधन ।	१८	सुवर्ण का सेवन	११०
सनातन जीवन	१९	शरीरमें देवोंके अघ (चित्र)	१११
जगत् के मातापिता	१९	काली कामधेनुका दूध	११२
जीवनका एक महासागर	१९	त्रयस पाण्डका मनन ।	११३
सपका एक आश्रय	१९	सूक्तोंका कोष्ठक	११४
स्थूल सूक्ष्म और कारण	१९	अपिषिभाग	११५
३३ जल सुवत् ।	१००	सूक्तोंक गण	११६
वृद्धिवा जल	१०१	अभ्यसन की सुगमता	११७
४१ मनु विद्या ।	१०२	अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता	११८
मनु विद्या ।	१०२	व्याक्तिके विषयमें उपदेश	११९
जन्म स्वभाव	१०३	आरोग्य साधनके अभ्य उपाय	१२०
मोठा जीवन	१०३	राष्ट्रीय जीवन	१२१



ॐ अथर्ववेद

का

सुक्तेषु भाष्य ।

द्वितीयं काण्डम् ।

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,

साहित्यकायस्थति, वेदाचार्य, गीशरुद्रा

अध्यक्ष-स्वाध्याय मण्डल, बामनदाश्रम, सिरुवा पारदी (जि. सुरत)

तृतीय वार

सद्यत् १००८, शके १८७३, सन १९५१

सबका पिता ।

स नः पिता जनिता स उव वन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो दुवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अथर्ववेद २।१।३

“वह ईश्वर हम सबका पिता, उत्पादक और बन्धु है, वही सब स्थानों और भुवनों को
संभालता है । उसी अकेले ईश्वरको अन्ध सम्पूर्ण देवोंके नाम दिये जाते हैं और सम्पूर्ण
भुवन उसी प्रशंसनीय ईश्वरको प्राप्त करने के लिये घूम रहे हैं ।”



मुद्रक तथा प्रकाशक— बल्लभ श्रीवास्तव, लाहौर।

भारत मुद्रणालय, राधास्वामी बंशज, पारसी (वि. शरत)



अथर्ववेद का सुबोधभाष्य ।

द्वितीय काण्ड ।

इस द्वितीय काण्डका प्रारंभ "वेन" सूक्तसे और "वेन" शब्दसे होता है। यह मंगल वाचक शब्द है। 'वेन' शब्दका अर्थ "स्तुति करनेवाला, ईश्वरके गुण गातेवाला भक्त" ऐसा है। परमात्मा पूर्ण रीतिसे स्तुति करने योग्य होनेसे उसीके साक्षात्कारके और उसीके गुण वर्णन के मन्त्रोंका यह सूक्त है। इस परमात्माकी विद्याके नाम "गुप्त विद्या, गूढ़ विद्या, गुह्य विद्या, परा विद्या, आत्मविद्या" आदि अनेक हैं। इस गुह्य विद्यामें परमात्माका साक्षात्कार करनेके उपाय बताये जाते हैं। यह इस विद्याकी विशेषता है। विद्याओंमें भेद विद्या यही है जो इस काण्डके प्रारंभमें दी गई है, इसलिये इसका अध्ययन पाठक इस दृष्टिसे करे।

जिस प्रकार प्रथम काण्ड मुख्यतया चार मंत्रवाले सूक्तोंका है, उसी प्रकार यह द्वितीय काण्ड पाँच मन्त्रवाले सूक्तोंका है। इस द्वितीय काण्डमें ३६ सूक्त हैं और २०७ मन्त्र हैं। अर्थात् प्रथम काण्डकी अपेक्षा इसमें एक सूक्त अधिक है और ५४ मन्त्र अधिक हैं। इस द्वितीय काण्डमें सूक्तोंकी मन्त्र संख्या निम्नलिखित प्रकार है।

सूक्त	मंत्रोंके	संख्या	हैं, इनकी	मंत्र	संख्या	११०	हैं
१	"	"	"	"	"	३०	"
७	"	"	"	"	"	३५	"
८	"	"	"	"	"	३२	"
कुल सूक्त संख्या		३६	कुल मंत्र संख्या		२०७		

इस द्वितीय काण्डके त्रयि देवता छंद आदि निम्नलिखित प्रकार हैं—

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
प्रथमोऽनुवाकः				
१	५	वेन	ब्रह्म, आत्मा	त्रिष्टुप्, ३ अगती
२	"	मातृनामा	गयत्री, अप्सराः	" १ विराहप्रगती, ४ त्रिवाटिरागनाम गायत्री ५ श्रीगन्धर्व

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
३	६	अंगिराः	भैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः	अनुष्टुप्, ६ स्वराडुपरिष्ठा- न्महाबृहती.
४	"	अथर्व	चन्द्रमाः, अङ्गिः	२ विराद् प्रस्तारपंक्तिः
५	७	ऋगुः (आपर्वणः)	इन्द्रः	त्रिष्टुप्, १, २ उपरिष्ठाद्बृहती (१ निचृत्, २ विराद्) विराद् पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराद्

द्वितीयोऽनुवाकः

६	५	शौनकः (संपत्कामः)	अग्निः	" ४ चतुष्पदाभी पंक्तिः ५ विराद् प्रस्तारपंक्तिः
७	"	अथर्व	भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः	अनुष्टुप्, १ मूरिक, ४ विराडुपरिष्ठाद्बृहती
८	"	ऋगुः (अंगिरसः)	वनस्पतिः यक्ष्मनाशनं,	" ३ पथ्यापंक्तिः, ४ विराद् ५ निचृत् पथ्यापंक्तिः
९	"	" "	" "	" १ विराद् प्रस्तारपंक्तिः
१०	८	" "	निकैलि, पावाष्ट्रपिथी, नामादेवताः	१ त्रिष्टुप्, २ सप्तपदष्टिः ३-५, ७, ८ (१) सप्तपदी ष्टिः, ६ सप्तपदी मंजुष्टिः ८ (२, ३) द्वौ पदौ, अग्निर्हो।

तृतीयोऽनुवाकः

११	५	शुक्रः	हृत्पादपुणं, हृत्पादपरिहरणं	१ चतुष्पदा विराद्, २-५ त्रिषदा परोष्णिहः, ४ विपीलिकमाया निधुम्
१२	८	मरुद्गामः	नानादेवताः	त्रिष्टुप्, २ जगती, ७, ८ अनुष्टुभी
१३	५	अथर्व	" अग्निः	" ३ अनुष्टुप्, २ विराद् जगती
१४	६	पातनः	पाता, अग्निः, मंत्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्, २ मूरिक, ४ उपरिष्ठाद्विराद्बृहती.
१५	"	महा	मरणः, अपाना, आयुः	त्रिषाप्तपत्री.
१६	७	"	"	१, २ पृथ्व्यागुनी निधुम्, ३ पृथ्व्यागुनी अङ्गिह, ४, ५ द्विष्यागुनी पावनी

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
१७	"	"	"	१ इ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ भासुरी वृष्णिक् ।
चतुर्थोऽनुवाकः				
१८	५	चातन (सपरन क्षयकाम)	अग्नि	साप्ती वृद्धी.
१९	"	अथर्व	"	१-४ त्रिचंद्रिणमा गावती ५ भूरिग्विणमा
२०	"	"	चायु	" "
२१	"	"	सूर्य	" "
२२	"	"	धव	" "
२३	"	"	आय	" "
२४	८	अह्ना	आयुष्य	वृत्ति
२५	५	चातनः	वनस्पति	अनुष्टुप्, ४ भूरिक्
२६	"	सविता	पशु	त्रिष्टुप् ३ उपगिष्टाद्विराट् वृद्धी ४, ५ अनुष्टुप् (४ भूरिक्)
पञ्चमोऽनुवाकः				
२७	७	कविः	ववस्वति	अनुष्टुप्
२८	५	हाम्भुः	उरिमा, आयु	त्रिष्टुप् १ जगती, ५ भूरिक्
२९	७	अथर्व	वृद्धदेवता	" १ अनुष्टुप् ४ वग्वृद्धी त्रिष्टुप् प्रत्ययपतिः
३०	५	महापति	अग्नि	अनुष्टुप्, १ वग्वपति. ३ भूरिक्
३१	"	काण्व	मही, धन्वमा	" २ वग्वपतिद्विराट् वृद्धी ३ आयुर्विष्टुप् ४ आयुर्विष्टुप् वृद्धी, ५ आयुर्विष्टुप्

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
३४	५	अथर्वी	पशुपतिः	त्रिष्टुप्
३५	"	आंगिराः	विश्वकर्मा	" १ गृहतीर्गमा, ४, ५ भूरिक्
३६	८	पतिवेदनः	अग्नीषोमी	" १ भूरिक् २, ५-७ अनुष्टुप् ८ निचृत्तुर अणिग्

इस प्रकार सूक्तोंके ऋषि देवता और छंद हैं । स्तव्याध्यय करनेके समय पाठकों को इनके ज्ञानसे बहुत लाभ हो सकता है । अब हम ऋषि क्रमसे सूक्तोंका कोटक देते हैं—

१ अथर्वी— ४, ७, १३, १९-२३; २९, ३४ ये दस सूक्त ।

२ अग्नी— १५-१७, २४, ३३, ये पांच सूक्त ।

३ आंगिरसो ऋषिः— ८-१० ये तीन सूक्त ।

४ चावतः— १४, १८, २५, " " "

५ आंगिराः— ३, ३५, ये दो सूक्त ।

६ काश्यपः ११, ३२ " " "

७ अथर्वणी ऋषिः— ५ यह एक सूक्त ।

८ वेनः— १ " "

९ मातृनामा— २ " "

१० दौनिकः— ६ " "

११ शुक्लः— ११ " "

१२ भरद्वाजः— १२ " "

१३ सविता— २६ " "

१४ कविश्रुतः— २७ " "

१५ शम्भुः— २८ " "

१६ प्रजापतिः— ३० " "

१७ पतिवेदना— ३६ " "

१ ब्रह्म, आत्मा— १ यह एक सूक्त ।

२ गंधर्वः— २ " "

३ इन्द्रः— ५ " "

४ अग्निः— ६, १३, १४, १८, १९, ये पांच सूक्त ।

५ वनस्पतिः— ३, ७-९, २५, २७ ये छः सूक्त ।

६ दीर्घायुषं— ३, ७, १५-१७, २४, २८ ये सात सूक्त ।

७ आरोग्यं— ८, ९, ११, १५-१७; २८ ये सात सूक्त ।

८ चंद्रमा— ४, २२, ३१, ३३ ये चार सूक्त ।

९ अग्निहः— ४ यह एक सूक्त

१० निष्कृतिः— १० " "

११ वायुः— २० " "

१२ सूर्यः— २१ " "

१३ आदित्यः— २२ " "

१४ आपः— २३ " "

१५ अश्विनी— ३० " "

१६ विश्वकर्मा— ३५ " "

१७ अग्नीषोमी— ३६ " "

१८ पशुपतिः— ३४ " "

१९ पशुः— २६ " "

ये ऋषि— क्रमानुसार सूक्त हैं । अब देवता— क्रमानुसार सूक्तों की गणना देखिये—

अन्य सूक्तों में अनेक देवताएँ हैं, जो अनेक मंत्रके विवरण में पाठक देख सकते हैं । समान देवताके सूक्तोंका अर्थविचार एक साथ करना चाहिए । अर्थविचार करनेके समय ये कोटक पाठकोंके लिए बड़े उपयोगी हो सकते हैं । इस कोटकसे मिलने सूक्तों का विवरण साथ साथ करना चाहिए । यह बात पटक जान सकते हैं और इस प्रकार विचार करके मंत्रों और सूक्तों का अनुष्ठान कर सकते हैं ।

इसकी आवश्यकता वगैरहों के अर्थ विचार करतें हैं—

अथर्व वेदका सुबोध भाष्य ।

द्वितीय काण्ड ।

गुह्य-अध्यात्म-विद्या ।

(१)

[ऋषिः-वेनः । देवता-ब्रह्म, आत्मा]

वेनस्तत्त्वज्ञत्परम् गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।

इदं पृथ्विरदुहज्जायमानाः स्वविदो अम्पत्न्यतः प्राः

॥ १ ॥

प्र तद्वोचेदुमृत्तस्य विद्वान् गन्धर्वो धामं परम् गुहा यत् ।

श्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितृष्पितासत्

॥ २ ॥

स नः पिता जनिता स उत बन्धुधर्मानि वेद भुवनानि विद्या ।

यो देवानां नाम्ब एक एव तं संप्रशं भुवना यन्ति सर्वा

॥ ३ ॥

अर्थ— (वेनः तत् परम् पदपद) मरुत ही उस परमप्रेत परमा माधो देखता है, (यत् गुहा) जो हृदय की गुफा में है और (पत्र विश्वे एकरूपं भवति) जिसमें सम्पूर्ण जगत् एकरूप हो जाता है । (इदं पृथ्विः जायमानाः अनुहत्) इसीका प्रकृतिने दोहन करकेही जन्मलेनेवाले पदार्थ बनाये हैं और इसलिये (स्वविदो प्राः) प्रकाश को जानकर प्रत पालन करनेवाले मनुष्यही इसकी (अम्पत्न्यतः) उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

(यत् गुहा) जो हृदय की गुफा में है (यत् अमृतस्य परम धाम) वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान (विद्वान् गन्धर्वः प्रबोध्यतः) ज्ञानी ब्रह्मा कहें । (अथ श्रीणि पदा) इस के तीन पद (गुहा निहिता) हृदय की गुफा में रखे हैं, [यः तानि वेद] जो इनको जानता है (सः पितुः पिता असत्) वह पिताका भी पिता अर्थात् ब्रह्मा समर्थ हो जाता है ॥ २ ॥

[सः नः पिता] वह हम सबका पिता है, (जनिता) जन्म देनेवाला (उत सः बन्धुः) और वह भाई है, वह (विश्वा भुवमानि धामानि वेद) सब भुवनों और स्थानोंको जानता है । (यः एकः एव) वह अकेलाही एक (देवानां नाम्ब—यः) सम्पूर्ण देवोंके नाम धारण करनेवाला है, (तं संप्रशं) इसी उत्तम प्रकारसे पूजने योग्य परमात्मा के प्रति (सर्वा भुवना यन्ति) संपूर्ण भुवन पहुँचते हैं ॥ ३ ॥

भाषार्थ— जिसमें जगत् की विविधता भेदका स्थान कर एकरूपताको प्राप्त होती है और जिसका निवास हृदय में है, उस परमात्माको मरुही अपने हृदय में छायात देखाता है । इस प्रकृतिने उसी एक आत्माकी विविध शक्तियोंको निबोध कर उत्पन्न होनेवाले इस विविध जगत् की निर्माण किया है, इसलिये आत्मज्ञानी मनुष्य सदा उसी एक आत्माका गुप्तगान करते हैं ॥ १ ॥ जो अपने हृदयमें ही है उस अमृतके परम धाम का वर्णन आत्मज्ञानी संतों ने ब्रह्मा ही कर लयना है । इसके तीन पद हृदय में प्राप्त हैं, जो इनको जानता है, वह परम ज्ञानी होता है ॥ २ ॥

वही हम सबका पिता, जन्मदाता और भाई भी है, वही संपूर्ण क्रियाओं का स्वकारणों को दयान्वित जानता है । वह अकेलाही एक है और अनेक आदि संतुल्य अन्य देवोंके नाम उगीको प्राप्त होने हैं अर्थात् उसको ही शिव न के हैं । विश्व जगत् की विविधता का कारण प्रभ संपूर्ण है और ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्यमें उर्ध्व को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

परि धावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमज्ञामृतस्य ।

वाचमिव वक्तारि भुवनेष्ठा धास्युरेप नन्वेष्टो अग्निः

॥ ४ ॥

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावधैरयन्त

॥ ५ ॥

अर्थ— (सद्यः) तीव्र ही (धावा—पृथिवी परि आयं) सुलोक और पृथ्वी लोकमें सर्वत्र मैं घूम आया हूँ और अब (ऋतस्य प्रथमज्ञां उपातिष्ठे) सत्यके पहिले उपासक की उपासना करता हूँ । (वक्तारि वाचं ह्य) वक्तामें जैसी वाणी रहती है, उसी प्रकार यह (भुवने—स्थाः) सब भुवनोंमें रहता है, और (एपः धास्युः) यही सबका धारक और पोषक है, (ननु एयः अग्निः) निश्चयसे यह अग्नि ही है ॥ ४ ॥

(यत्र) जिसमें (अमृतं जानशानाः देवाः) अमृत खानेवाले सब देव (समाने योनौ) समान आश्रयको (अधैर-यन्त) प्राप्त होते हैं, वस (ऋतस्य) सत्यके (विततं कं तन्तुं दृशे) फैले हुए सुखकारक धागेको देखनेके लिए मैं [विश्वा सुनवानि परि आयं] सब भुवनोंमें घूम आया हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ— सुलोक और पृथ्वी लोकके अंदर जो अनंत पदार्थ है, उन सबका निरीक्षण करनेके बाद पता लगता है, कि अमृत सत्य नियमोंका पहिला प्रवर्तक एकही परमात्मा है, इसलिए मैं उसकी उपासना करता हूँ । जिस प्रकार वक्तामें वाणी रहती है, उसी प्रकार जगत् के सब पदार्थों अथवा सब प्राणियोंमें वह सबका धारण पोषण कर्ता एक आत्मा रहता है, उसको अग्नि भी कह सकते हैं अर्थात् जैसा अग्नि लकड़ोंमें गुप्त रहता है उसी प्रकार वह सब पदार्थोंमें गुप्त रहता है ॥ ४ ॥

जिस एक परमात्मामें अग्नि वायु सूर्यादि देव समान रीतिसे आश्रित हैं और जिसकी अमृत मयी शक्ति सर्वत्र लक्ष देवोंमें कार्य कर रही है, वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक सत्त्व है, उसी का साधारण करनेके लिए सब वस्तुमात्रका निरीक्षण करने किया है और पश्चात् उसके अंदर वही एक सत्त्व फैला है वह मैंने अनुभव किया है ॥ ५ ॥

गूढविद्याका अधिकारी ।

सब विद्यार्थियों यह गुप्त विद्या सुन्दर है, इसलिए हर एक को इस विद्या की प्राप्ति के लिये दान करना चाहिए । वास्तवमें देखा जाय, तो सभी मनुष्य इसकी प्राप्ति के मार्ग में लगे हैं, कई दूर के मार्गपर हैं और कईयों ने समीपका मार्ग पकड़ा है, इन अनेक मार्गोंमें से कौनसा मार्ग इस सूक्तो अभिष्ट है, यह बात यहाँ अब देखेंगे—

वेनः उत्पद्यन् ॥ १ ॥

‘वेनही उसको देखता है,’ यह प्रथम मंत्रका विधान है । यहाँ प्रत्यक्ष देखता है, जिस प्रकार मनुष्य सूर्यको आकाशमें प्रत्यक्ष देखता है उस प्रकार यह भक्त इस आत्मा को अपने हृदयमें प्रत्यक्ष करता है, यह भाव स्पष्ट है । यह व्यधिकार ‘वेन’ का ही है यह ‘वेन’ कौन है ? ‘वेन्’ घातुके अर्थ—‘भजन पूजन करना, विचार से देखना, भक्ति करना, तथा इसी प्रकार के उपासनाके कार्य करनेके लिये जाना’ ये हैं । वे ही अर्थ यहाँ वेन शब्द में हैं । ‘जो ईश्वर का भजन पूजन करता है, हृदयसे उसकी भक्ति करता है, विचारकी दृष्टिसे उसको जाननेका प्रयत्न करता है’ इस प्रकारका जो ज्ञानी भक्त है, वह वेन शब्दसे यहाँ अभिप्रेत है । इसलिए केवल “सुद्धिमान” अर्थ ही यहाँ सेना उचित नहीं है । कितनी भी सुद्धिही विचालता क्यों न हुई हो, जबतक उसके हृदयमें भक्ति की लहरें न उठतीं हो, तबतक उस प्रकारके शुद्ध ज्ञानसे परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता, वह यहाँ इस सूक्त द्वारा विशेष रीतिसे बताया है ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—

अमृतस्य घाम विद्वान् गंधर्वः ॥ २ ॥

“अमृतके घाम की जाननेवाला गंधर्व ही उसका वर्णन कर सकता है ।” इसमें “गंधर्व” शब्द विशेष महत्त्वपूर्ण है । गंधर्व शब्द का अर्थ “संत, पवित्रात्मा” कौनों में प्रसिद्ध है और यह शब्द वेन शब्दके पूर्वोक्त अर्थके साथ मिलता जुलता भी है । तथापि “गो बाणी धारयति” अर्थात् “अपनी बाणीका धारण करनेवाला” यह अर्थ यहाँ विशेष योग्य है । यणीका धारण तो सब करते ही हैं, परंतु यहाँ बाणीका बहुत प्रयोग न करते हुए अपनी वाक्शक्तिका उपयोग करनेवाला, अत्यन्त आदर्शवत्ता होनेपर ही बाणीका उपयोग करनेवाला, यह अर्थ गंधर्व शब्दमें है । विशेष अर्थ से परिपूर्ण परंतु अल्प शब्द बोधनेवाला विद्वान् गंधर्व शब्दसे यहाँ लिया जाता है । प्रायः आत्मज्ञानी वक्ताका वक्तृत्व मूर्खतासे ही होता है, किंवा थोड़े परंतु अर्थपूर्ण शब्दोंसे ही आत्मज्ञानी पवित्रात्मा आस पुरय जो कुछ कहना है, कह देता है । जबतक लौकिक विद्याका ज्ञान मनुष्यके मनमें छलबली मचारा रहता है, तब तक ही मनुष्य भेषगर्जनके समान वक्तृत्व करता रहता है, परंतु इसका परिणाम श्रोताओंपर विशेष नहीं होता । जब आत्मज्ञान होता है और ईश्वर साक्षात्कार होता है, तब इसका वक्तृत्व अल्प होने लगता है । परंतु प्रभाव बढ़ता जाता है । वाक्शक्तिपर संयम होने लगता है । यह गंधर्व अवस्था समझिये ।

यहाँ ‘वेन और गंधर्व’ ये दो शब्द आत्मज्ञानके अधिकारियोंके वाचक शब्द हैं । उपासक, भक्त तथा गंभीर शब्दोंका प्रयोग संयम के साथ करने वाला जो होता है, वही परमात्माका साक्षात्कार करता है और यही उसका वर्णन भी कर सकता है ।

पूर्व तैयारी । (प्रथम अवस्था)

उक्त उपासक आत्मज्ञानी हो सकता है, परंतु इसके बननेके लिये पूर्व तैयारी की आवश्यकता है, यह पूर्व तैयारी निम्न लिखित शब्दों द्वारा उस सूक्तमें बताई है—

सद्यः चावापृथिवी परि भाषम् ॥ ३ ॥

विश्वं भुवनानि परि भाषम् ॥ ५ ॥

कुछ किया, मनुष्यों को जो जो अभ्युदय विषयक करना संभव है, वह सब किया । यह गूढतत्त्वके दर्शनकी प्रथम अवस्था है । इस अवस्थामें भोगेच्छा प्रधान होती है ।

द्वितीय अवस्था ।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है, जिस समय विचार उत्पन्न होता है, कि ये नाशवन्त भोग कितने भी प्राप्त किये, तथापि इनसे सच्ची तृप्ति नहीं होती। इसलिये सच्ची तृप्ति, सच्चा मनका समाधान प्राप्त करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये । इस द्वितीय अवस्थामें भोगांधी और प्रवृत्ति कम होती है और अभौतिक तत्त्व दर्शन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती जाती है; इसका निर्देश इस सूक्तमें निम्न लिखित प्रकार किया है—

अमृतस्य विततं कं तन्तुं द्रव्ये विद्या भुवनानि परि आधम् ॥ ५ ॥

“अमृतका फेला हुआ सुखकारक मूल सूत्र देखनेके लिए मैंने सब भुवनोमें चकर मारा, ” अर्थात् इस द्वितीय अवस्थामें इसका त्वर इतलिये होता है, कि इस विधिधत्तासे परिपूर्ण जगत्के अंदर एकताका मूल स्रोत होगा तो उसे देखें; इस दुःख कष्ट भेद लड़ाई झगको से परिपूर्ण जगत्में सुख आराम ऐश्वर्य और अविरोध देनेवाला कुछ सब होगा तो उसको हूँदेंगे, इस उद्देश्यसे इसका प्रयत्न होता है । यह जिज्ञासुकी दूसरी अवस्था है । इस अवस्था का मनुष्य तीनों क्षेत्रों और गुणप्रदेशों में जाता है, वहाँ सज्जनोंसे मिलता है, देशदेशांतरमें पहुँचता है और वहाँसे ज्ञान प्राप्त करता है इसका इस समय का उद्देश्य यही रहता है, कि इस विमर्द पूर्ण दुःखमय अवस्थासे अभेदमय सुखकारक अवस्थाको प्राप्त करें । इतने परिश्रम करनेसे उसको कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है और फिर वह प्राप्त हुए ज्ञानको अपने में स्थिर करनेका यत्न करनेकी तैयारी करता है । इस प्रकार वह दूसरी अवस्थासे तीसरी अवस्थामें पहुँचता है । इस तीसरी अवस्थाका वर्णन इससूक्तमें निम्न लिखित शब्दों द्वारा किया है—

तृतीय अवस्था ।

द्यावापृथिवी परि आधं सद्यः ऋतस्य प्रथमज्ञां वपातिष्ठे ॥ ४ ॥

“मैं ब्रुलोक और पृथ्वीलोक में खूब घूम आया हूँ और अब मैं सत्यके पहिले प्रवर्तक की उपासना करता हूँ ।” जगत् मरमें घूमकर विचार पूर्वक निरीक्षण करनेसे इसको पता लगता है कि, इस विभिन्न जगत् में एक अमिन्न तत्त्व है और वही (कं) सच्चा सुख देनेवाला है । जब यह ज्ञान इसकी होगा है, तब यह उसके पास जानेकी इच्छा करता है । उपासनासे भिन्न कोई अन्य मार्ग उसको प्राप्त करनेका नहीं है, इसलिये इस मार्गमें अब यह उपासक आता है । ये अवस्थामें इस सूक्तके मंत्रों द्वारा स्पष्ट होगाई है, इन मंत्रों के साथ यज्ञोंद वाजसनेयी संहिताके मंत्र देखनेसे यह विषय अधिक शुल्ल जाता है; इसलिये ये मंत्र अब यहाँ दिये हैं—

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।

उपस्थाप्य प्रथमज्ञामृतस्वात्मनात्मानमाभि सं विवेक्ष ॥ ११ ॥

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्या परि लोकान्परि दिशः परि स्वः ।

ऋतस्य तन्तुं विततं विपुल्य तदपश्यत्तदमवत्तदासीत् ॥ १२ ॥

वा. यत्तु । अ. १२

“ (भूतानि परीत्य) सब भूतोंको जानकर या भूतोंमें घूमकरके (लोकान् परीत्य) सब लोकोंमें प्रयत्न करके (सर्वा दिशः प्रदिश. च परीत्य) सब दिशा और उपदिशाओंमें प्रयत्न करके अर्थात् इन सबको दयावात् जानकर (ऋतस्य प्रथमज्ञां उपस्थाप्य) उसके पहिले नियमके प्रवर्तक की उपासना करके (आत्मना आत्मानं) केवल आत्मस्वरूपसे परमात्माके प्रति (अभि सं विवेक्ष) सब प्रकारसे प्रवेष्ट होता हूँ ॥ ११ ॥

ये दो मंत्र उपासककी उन्नतिके मार्गका प्रकाश उत्तम रीतिसे कर रहे हैं । जगत् में घूम आनेकी जो बात अथर्ववेदने कही थी, उसका विशेष ही स्पष्टीकरण इन दो मंत्रोंके प्रथम अर्धोद्धार द्वारा हुआ है : “सर्व भूत, सर्व लोकलोकान्तर, सर्व उपादिशाएँ, सु और पृथ्वीके अंतर्गत सब पदार्थ, अथवा अपनी सत्ता जहाँ तक जासकती है, वहाँ तक जाकर, वहाँतक विजय करके, वहाँतक पुनर्प्राप्त प्रयत्नसे यश फैलाकर तथा उन सबका परीक्षण निरीक्षण समीक्षण आदि जो कुछ किया जाना संभव है, वह सब करके देख लिया । इतने निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि अठल सन्नियमोंकी चलावेवाला एकही स्वरूप आत्मा सबके अंदर है, वही सर्वत्र फैला है, उसीके आधारसे सब कुछ है, उसके आधार के बिना कोई ठहर नहीं सकता । जब यह ज्ञान लिया तब उसकी ही उपसना की, और केवल अपने आत्मासेही उसमें प्रवेश किया । जब वहीका अनुभव लिया, तब उपासक वैद्या बन गया, जैसा पहिले था ।

पाठक इन मंत्रोंके इस आशयको देखेंगे तो उनको एसा लग जायगा, कि जो अथर्ववेदके इस सूक्तके मंत्रों द्वारा आत्मय व्यक्त हुआ है, वही बड़े विस्तारसे इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ है । और ये मंत्र उन्नतिकी अवस्थाएँ भी स्पष्ट शब्दोंद्वारा बता रहे हैं, देखिये—

१ प्रथम अवस्था—(जज्ञानावस्था)—अपने या जगत् के विषय का पूर्ण अज्ञान ।

२ द्वितीय अवस्था—(भोगावस्था)—जगत् अपने भोग के लिये है, ऐसा मानना, और जगत्को अपने स्वाधीन करनेका यत्न करना । जगत् पर प्रभुत्व स्थापित करना । इसी अवस्थामें राज्यैश्वर्य भोग बढ़ाये जाते हैं ।

३ तृतीय अवस्था—(त्यागावस्था)—जगत्के भोगोंसे अवसमाधान होकर विभक्तियों स्वायत्त अविभक्त सत्तावली सद्गुरुको ईश्वरका प्रयत्न करना । वह जिज्ञासुही अवस्था है ।

४ चतुर्थ अवस्था (भक्तावस्था)—मनुष्य विभिन्न विश्वमें स्वायत्त एक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखने लगता है और भक्ता भक्तिये उसकी उपासना करने लगता है ।

५ पंचम अवस्था—(स्वरूपावस्था)—उपासना और भक्ति दृढ़ और अद्वय होनेपर वह तद्रूप हो जाता है, मानो उसमें एक रूप होकर प्रविष्ट होता है, या जैसा या वैद्या बन जाना है । यही साक्षात्कार की अवस्था है, यहाँ इसके भव ज्ञान प्रत्यक्ष होता है ।

यही मार्ग इस अथर्व सूक्तमें वर्णन किया है । यहाँ पाठकोंको स्पष्ट हुआ होगा कि पूर्व तैयारी कौनसी है और अगेन मार्ग क्या है ।

पूर्णावस्था ।

पूर्वोक्त यजुर्वेदके मंत्रोंमें कहा ही दे कि—

उपस्थाप्य प्रथमजामृतस्य
आत्मनात्मनमभि र्स विवेका
ज्ञातस्य तन्तुं विततं विचूष्य ।
तदुपस्थप्यत्तदभवत्तदासीत्

॥ १२ ॥

वा. यजु० अ. ३१

“ उसके पहिले प्रवर्तक परमात्माकी उपासना करके आत्मासे परमात्मामें प्रविष्ट हुआ । उसके फलसे हुए प्राणको अलग देखकर वैद्या हुआ जैसा कि पहिले था । ” वह सब वर्णन पूर्ण अवस्थाका है । इसीको विप्रसिद्धिष्ट शब्दोंद्वारा इस अथर्व सूक्तमें कहा है—

स्वविदुः माः अम्यनूत
अमृतस्य घाम विद्वान्
यस्मानि वेद स विगुणितः स्यत्

॥ १३ ॥

य ११

॥ १२ ॥

“ (ब्रा.) व्रत पालन करनेवाले (स्वर्धेदः) आत्मज्ञानी वही की स्तुति करते हैं । वे अमृतके धामको जानते हैं । जो ये धाम जानता है वह पिताका पिता अर्थात् सर्वमें अधिक ज्ञानी अथवा सर्वमें अधिक समर्थ होता है । ” यह अंतिम फल है पूर्ण अवस्थामें पहुँचनेका मिथ्य इससे हो सकता है ।

प्रथम मंत्रमें “ ब्रा. ” शब्द बड़ा महत्त्व रखता है । मर्तो या नियमोंका पालन करनेवाला अपनी उन्नतिके लिये जो नियम आवश्यक होंगे उनको अपनी इच्छासे पालन करनेवालेका यह नाम है । नियम स्वयं देखकर स्वयंही सब व्रतका पालन करना बड़े पुरुषार्थसे साध्य होता है । इसमें व्रतमंग होनेपर अपने आपको स्वयंही दंड देना होता है, स्वयं ही प्रायश्चित्त करना होता है । मदान् आत्माही ऐसा कर सकते हैं । हर एक गनुष्य दुष्टों पर अधिकार चला सकता है, परंतु स्वयं अपने पर अधिकार चलाना अति कठिन है । अपनी संपूर्ण शक्तिवा अपने आधीन रखनी और कभी कुविचार आदि शत्रुओंके आधीन न होना इत्यादि महत्त्व पूर्ण बातें इस आत्मशासनमें आती हैं । परंतु जो यह करेगा, वही आत्मज्ञानी और विशेष समर्थ बनेगा और उर्ध्वक महत्त्व सब लोग मानेंगे ।

सुवात्मा ।

मणियोंकी माला बनती है, इस मालामें जितने मणि होते हैं, उन सबमें एक सूत्र होता है, जिसके आधारसे ये मणि रहते हैं । सूत्र टूट गया तो माला नहीं रहती और मणि भी बिखर जाते हैं । जिस प्रकार अनेक मणियोंके बीचमें यह एक सूत्र या तंतु होता है, वही प्रकार इस जगत् के सूर्यचक्रादि विविध मणियोंमें परमात्माका व्यापक सूत्र तन्तु या धागा है, जिसके आधारसे यह सब विद्य रह गई हैं, इसीका दर्शन नहीं होता, सब मालका ही वर्णन करते हैं, परंतु जिस धागेके आधारसे ये सब मणि मालारूपमें रहे हैं, उस सूत्रका महत्त्व तत्त्वज्ञानी ही जान सकता है और वह सब जगदाधार को प्राप्त कर सकता है ।

वेदमें “ तन्तु, सूत्र ” आदि शब्द इस अर्थमें आगये हैं । जगत् के संपूर्ण पदार्थ मात्रके अंदर यह परमात्माका सूत्र फैला है, कोई भी पदार्थ इसके आधारके बिना नहीं है । यह जानना, इस ज्ञानका प्रत्यक्ष करना और इसका साक्षात्कारसे अनुभव लेना गूढ़ विद्याका विषय है, जो इस सूत्र द्वारा यताया है ।

इस गुण विद्याका अनुभव लेनेके विषयमें बड़ा लाभ निश्चयेद होता है; परंतु यह एक बाधा साधन है । सखी गुफा हृदय की गुहा ही है । हृदय की गुफा सब जानते ही हैं । इसी में इस गुणतत्त्वकी खोज करनी चाहिए ।

सब प्राणी तथा सब मनुष्य बाहर देखते हैं, इस बहिर्दृष्टिसे गुणतत्त्वकी खोज नहीं हो सकती । इस कार्यके लिए दृष्टि अंतर्मुख होनी चाहिए, अपनी इंद्रिय शक्तियों का प्रवाह अंदर की ओर अर्थात् चलता शुरू होना चाहिए । तभी इस गुण तत्त्व की खोज हो सकती है । अपने हृदयमें ही उस गुण आत्मयो देखना चाहिए । अर्थात् इसकी प्रतिके लिए बाधा दिशाओंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, अंतर्मुख होकर अपनी हृदयकी गुफामें देखना चाहिए ।

चार भाग

यह अमृतका धाम हृदयमें है । यदि इस अमृत के चार भाग मान लिए जाय, तो तीन भाग अंदर गुप्त हैं और केवल एक भाग ही बाहर व्यक्त है । जो बाहर दिव्यता है, जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आना है वह अत्यंत अल्प है, परंतु जो अंदर गुप्त है, वह बहुत विस्तृत ही है । अपने शरीर में भी देखिये आत्मा-युक्ति, मन, प्राण ये हमारी अंतःशक्तियाँ अदृश्य हैं और स्थूल शरीर वह दृश्य है । यदि शक्तिकी तुलना की जाय तो स्थूलशरीर की शक्ति की अपेक्षा आंतरिक शक्तियाँ बहुत ही प्रभावशाली हैं । अर्थात् स्थूल और व्यक्त की शक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्म और अव्यक्त की शक्ति बहुतही बड़ी है । यही यहाँ निम्नलिखित शब्दोंद्वारा व्यक्त हुआ है—

श्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितृभित्ताऽसत् ॥ १५ ॥

“ इसके तीन पाद गुहामें गुप्त हैं, जो उनको जानता है वह समर्थसे भी समर्थ होता है । ” अर्थात् स्थूलशरीरकी शक्तिकी स्वाधीनता होनेकी अपेक्षा आंतरिक शक्तियोंपर प्रभुत्व प्राप्त होनेसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होता है । इसी विषयमें मैं मंत्र देखिये—

पादोऽस्य विद्या कृतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्वं तदैरुपुनः पादोऽस्पेहाऽभवत्पुनः ॥ ४ ॥

अ० १०१०।ता. य. ३१

त्रिभिः पत्त्रिर्धामोदस्यादोऽस्पेहाऽभवत्पुनः ॥

अथर्व १९।६

त्रिपाद्वक्ष्य पुनरुपुनः वितपे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतसः ॥

अथर्व १०।१९

“ उसके एक पादसे सब भूत बने हैं और तीन पाद अमृत लुप्तके में है । तीन पाद पुरुष का ऊपर उदय हुआ है, और एक पाद पुरुष यहाँ बारंबार प्रकट होता है । तीन पादोंसे स्वर्गपर चढ़ा है और एक पाद यहाँ पुनः पुनः होता है । तीन पाद भद्रा बहुत रूप धारण करके उठता है, जिससे चारों दिशाएं जीवित रहती हैं । ”

इन छह मंत्रोंका तात्पर्य यही है, जो इस शूक्त के ऊपर दिए हुए भागमें बताया है । उस अमृतकी अल्पकी शक्ति स्थूल में प्रकट होती है, शेष अनंत शक्ति अप्रकट स्थितिमें गुप्त रहती है और उस गुप्त शक्तिसे ही इस व्यक्त में कार्य होता रहता है । पाठक मनकी शक्ति की शरीरकी शक्तिके साथ तुलना करेंगे, तो उक्त बातका पता समझें लग जायगा । मनकी शक्ति बहुत है उसका सोचासा भाग शरीरमें गया है और यहाँ कार्य कर रहा है । यह स्थूलमें कार्य करनेवाला अंशरूप मन बारंबार स्थूल गुप्तमनकी शक्तिके प्रभावित होता है, नवजीवन प्राप्त करता है और बारंबार शरीरमें आकर कार्य करता है । यही बात अधिक रुच्यतासे अमृततत्त्वके साथ संगत होती है । उसका केवल एक अंश प्रकट है, शेष अनंत शक्ति गुप्त है, इसके साथ अपना संबंध जोड़ना गृहविद्याका साध्य है ।

एक रूप ।

जगत्में विविधता है और इस आत्मतत्त्वमें एकरूपता है । जगत्में गति है इष्टमें शान्ति है, जगत्में भिन्नता है इष्टमें एकता है; इस प्रकार जगत्का और आत्माका वर्णन किया जाता है, सब लोग इस वर्णन के साथ परिचित हैं, इस सूक्तमें भी देखिए—

वेनस्तत्पश्यन्पशं गुहा यथात्र विद्वं भवत्येकरूपम्

इदं पृथिरदुहज्जायमानाः स्वर्दिदो अम्भनूषत माः ॥ १ ॥

“ज्ञानी भक्त ही उसको देखता है, जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोड़कर एकरूप हो जाता है । इसकी शक्तिको प्रकृति खींचती है और जन्म लेनेवाले पदार्थ पैदा करती है । इसलिये आत्मज्ञानी व्रतपालन करने-वाले भक्त उस आत्माका ही गुण गान करते हैं । ”

पाठक अपने अंदर इसका अनुभव देख लें, जगत्की विविधता का अनुभव आता है, स्वप्नमें भी कायातिक गृष्टिमें विविधताका अनुभव आता है, परंतु तृतीय अवस्था गाढ निद्रा—सुषुप्ति में भिन्नताका अनुभव नहीं आता और केवल एकत्वका अनुभव व्यक्त करना असंभव है, इसलिए उस समय किसी प्रकारका ज्ञान नहीं होता । सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें “ ब्रह्म रूपता ” होती है, तम—रज—सत्व-गुणोंकी भिन्नता छोड़ दी जाय तो उक्त तीनों स्थानोंमें ब्रह्मरूपता, आत्मरूपता अथवा साधारण भाषामें ईशरूपता होती है और इस अवस्थामें भिन्नत्वका अनुभव मिट जाता है, इसलिए इस अवस्थाको “ एक—त्व ” कहते हैं । इसी उद्देश्ये इस मंत्रमें कहा है कि—

यथ विश्वं एकरूपं भवति ॥ १ ॥

“ जहाँ संपूर्ण विश्व एकरूप होता है । ” अर्थात् जिसमें जगत् की विविधता अनुभवमें नहीं आती, परंतु उस सब विविधता को एकताका रूप धा आजाता है । वृक्ष के जड़, शाखा, पल्लव आदि भिन्न रूपताका अनुभव है, परंतु गूठली में इन भिन्नता की एक रूपता दिखाई देती है । इसी प्रकार इस जगत्की वृक्षकी विविधता मूल तत्त्वसिद्धि कारण में जाकर देखनेसे एकरूपता में दिखाई देगी । इसी मुख्य आदि कारणसे विविध शक्तियों प्रकृति अपने अंदर धारण करके उत्पत्ति वाले पदार्थ निर्माण करती है । इस रीतिसे न उत्पन्न होनेवाले एक तत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक तत्त्व बनते हैं । इनका ही नाम उक्त मंत्रमें “ आद्यमाणाः ” कहा है । इनमें मनुष्यभी सम्मिलित हैं और अन्य प्राणी तथा अप्राणी भी हैं । इनमें मनुष्यही (माः) व्रतपालनादि सुविधामें अपनी उन्नति करके आदि मूलको जानता और अनुभव करके (स्वर्दिदः) प्रकाश प्राप्त करके प्रतिदिन अनुष्ठान करता हुआ समर्थ बनता जाता है ।

अनुभव का स्वरूप ।

आत्मज्ञानी मनुष्य को अमृत धामका अनुभव किस प्रकार होता है, उसके अनुभव का स्वरूप अब देखना चाहिये—आत्मज्ञानी मनुष्य अमृतधाम को अपनी हृदयकी गुहामें अनुभव करता है, अनंत शक्तियों यहाँ ही इकट्ठी हुई हैं, यह उसका अनुभव है । (मंत्र २ देखो)

और वह अनुभव करता है कि—“ वही परमत्मा हम सबका पिता, उत्पादक, और माई है, वही सर्वज्ञ है । ” (मंत्र १) इतनाही नहीं परंतु “ वही हमारी माता और वही हमारा सच्चा मित्र है ” यह भी उसका अनुभव है । यहाँ क्रतुवेद और अथर्व मंत्रोंकी तुलना कीजिये—

स नः पिता जनिता स त्वं बन्धुर्धामानि वेदं मुक्त्वानि विधा ॥

यो देवानां नामय एक एव तं स प्रथं मुक्त्वा यन्वि सर्वां ॥

अथर्व. २।१।१

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेदं मुक्त्वानि विधा ॥

यो देवानां नामया एक एव तं स प्रथं मुक्त्वा यन्त्यन्या ॥

क्रतुवेद १०।८२।३

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेदं मुक्त्वानि विधा ॥

या. यजु. ३२।१०

इनमें कुछ फाटमेद है, परंतु सबका तात्पर्य ऊपर बताया ही है । वही ज्ञानी भक्त का अनुभव है और एक अनुभव बज्रवेदके मंत्रमें दिया है यहाँ भी यह देखिये—

जगत् का ताना और बाना ।

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा सद्यश्च विश्वं भवत्येकमीडम् ।

तस्मिन्निष्ठं सं च विचेति सर्वं तस्य भोतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ वा. यजु. ३२।८

‘ज्ञानी भक्त उस परमात्माको जानता है जो हृदय की गुह्यामें है और जिसमें संपूर्ण विश्व एक घोंसले में रहनेके समान रहता है, तथा जिसमें यह सब विश्व एक-समय (सं एति) मिल जाता है या लीन होता है और दूसरी समय (वि एति) अलग होता है । (सं विभूः) वह सर्वत्र व्यापक तथा वैभवसे युक्त है और (प्रजासु भोतः प्रोतः) प्रजाओं में ताना और बाना किये हुए धागों के समान फैला है ।’

धोती में जैसे ताने और बानेके धागे होते हैं, उस प्रकार परमात्मा इस जगत् में फैला है, यह उस ज्ञानीका अनुभव है ।

बालक पर आपत्ति आती है उस समय वह बालक अपने माता पिता, बड़े भाई, चाचा, दादा, नाना आदिके पास सहायताार्थ जाता है । वही बालक बड़ा होनेपर आपत्ति आयेगी तो अपने समर्थ मित्रके पास जाता है और उससे सहायता लेता है । इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में गुरु, राजा, आदिकों की सहायता लेता है । ये सब संबंध परमात्मा में ज्ञानी अनुभव करता है अर्थात् ज्ञानी भक्तके लिये परमात्माही सम्राट्, राजा, सरदार, शासक, शिक्षक, गुरु, माता, पिता, मित्र, भाई आदि रूप हो जाता है ।

एकके अनेक नाम

एक ही मनुष्यको उसका पुत्र पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, उसका भाई उसको बंधु कहता है, इस प्रकार विविध संबंधी उस एकही पुरुषको विविध संबंधोंके अनुभव होनेके कारण विविध नामोंसे पुकारते हैं । इस रीतिसे एक मनुष्यको विविध नाम मिलने पर भी उसके एकत्वमें कोई भेद नहीं आता है ।

इसी ढंगसे परमात्मा एक होनेपर भी उसके अनंत गुणोंके कारण और उसके ही अनंत गुण सृष्टीके अनंत पदार्थोंमें होनेके कारण उसको अनंत नाम दिये जाते हैं । जैसा अग्निमें उष्णता गुण है वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इसलिये अग्नि अग्नि नाम वास्तविक गुणकी सत्ताकी दृष्टिसे परमात्माका ही नाम है, क्योंकि वह अग्निकाही अग्नि है । इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके नामोंके विषयमें जानना योग्य है ।

शरीरमें भी देखिये—आख नाक कान आदि इंद्रियों स्वयं अपने अपने कर्म नहीं कर सकतीं, परंतु आत्माकी छत्तीके अपने अंदर लेकर ही अपने कर्म करनेमें समर्थ होती हैं । इसलिये सब इंद्रियोंके नाम आत्मा में धार्य होते हैं, अतः आत्माको आंखका आंख, कानका कान कहते हैं । इसी प्रकार परमात्मा सूर्यका सूर्य, विद्युतका विद्युत है । देवोंके नाम धारण करनेवाला परमात्मा है ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है, वह इस प्रकार सत्य है ।

वह एकही है ।

परमात्मा एक ही है, यह बात इस तृतीय मंत्रमें ‘एक एव’ (यह एक ही है) इन शब्दों द्वारा जोरसे कहा है । किसीको परमात्माके अस्तित्वके विषयमें यत्किंचित् भी शंका न हो, इसलिये ‘एव’ पदकी योजना यहाँ की है । भक्त को भी ईश्वरके एकरत्नका अनुभव होता है, क्योंकि ‘विभक्तोऽपि विभक्त’ आदि अनुभव उसको होता है, इसलिये विषय इसके पूर्व बताया ही है ।

शार्मा भक्ता विशेष अनुभव यह है कि, वह परमात्मा “स-प्रश्न” है अर्थात् प्रश्न पूछने योग्य और उससे उत्तर लेने योग्य है । भक्ति जब भक्त उसे प्रश्न पूछता है, तब वह उसका उत्तर साक्षात्कार से देता है । कठिन प्रसंगोंमें उसकी सहायता की याचना की, और एकलत्त में अनन्य शरण श्रुति से उसकी प्रार्थना की, तो वह प्रार्थना नि छेदह मुनता है, और भक्तके कष्ट दूर करता है । अन्य मित्र सहायताार्थ समयपर आसक्तने या नहीं इसका नियम नहीं, परंतु वह परमात्मा ऐसा भिन्न है, कि वह अनन्य भावसे शरण जानेपर सदा सहायताार्थ लिख रहता है और कभी ऐसा नहीं होता कि, वह धारणय की सहायता न करे । इसलिये सहायताार्थ यदि किसीसे पूछना हो, तो अन्य मित्रोंकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा इसकी ही प्रार्थना करना योग्य है; क्योंकि हर समय यह सुननेके लिये तैयार है और इसका उदार दायमप हस्त सदा हम सपर है ।

यह सबका (घास्यु) धारण पोषण करनेवाला है और (सुवने-स्याः) सपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हर एक पदार्थमें व्याप्त है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है। वक्ष्यमें जैसा वक्ष्यत्व है, उस प्रकार जगत्में यह है, सचमुच यह अग्नि ही है। (मन्त्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्योंकि पदार्थ मात्र की सत्ता ही यह है, फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यहाँ सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है। मनुष्यका शब्द आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिसे ही प्रकाशता है।

देवोंका अमृतपान।

इस सूक्तके पाँचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशाना समाने योनावधैरयन्त ॥ ५ ॥

“उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुँचते हैं।”

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अपना अपनी विभिन्नताकी छोड़कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहाँ का अनुपमेय अमृत पीते हैं।

मुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है मुक्ति और समाधि तो हर एक के अनुभवमें नहीं है, परन्तु सुषुप्ति हर एक के अनुभवमें है। इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं। इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव अर्थात् सब इन्द्रियाँ अपना भेदभाव छोड़कर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहाँ आत्मामें गोता लगाकर अमृतानुभव करती हैं। इस अमृतपानसे उनकी सब सकावट दूर होती है और जब सुषुप्ति से हटकर ये इन्द्रियाँ जाग्रतावस्थामें पुन लौट आती हैं, तब पुन तैजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिली, तो मनुष्य-शरीर निवासी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा। बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमारी की अवस्था चिंताजनक समझी जाती। परन्तु यदि चार पाँच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्यभी कहते हैं कि, यह रोगी आशाघ्न हुआ है। इतना महत्त्व तमोगुणमय सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और मुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा।

यत्तुर्वदेमं यही मन्त्र थोड़े पाठ भेदसे आगया है यह भी यहाँ देखने योग्य है—

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामसधैरयन्त ॥ वा यजु. ३२।१०॥

“वहाँ देव अमृत का भोग करते हुए तीसरे धाम में पहुँचते हैं।” पूर्वोक्त मंत्र में जहाँ ‘समाने योनौ’ शब्द है वहाँ इस मंत्रमें ‘तृतीये धामन्’ शब्द है। समान योनी का ही अर्थ तृतीय धाम है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यदि ये तीन अवस्थाएँ मन की जाग्रता तीसरी अवस्था सुषुप्ति ही आती है जिसमें सब देव अपना भेद भाव छोड़कर एक रूप होकर ब्रह्मरूप बनकर अमृत पान करते हैं। शूद्र, सूत्रम, कारण ये प्रकृतिके रूप यहाँ लिये, जाग्रत, तो सब इन्द्र चन्द्र सूर्यादि देव अपनी भिन्नता त्यागकर सब मन्त्रमें लीन होकर अमृत रूप होते हैं। शान्ति मन्त्र महात्मा कापुष्यत ये त्याग अपने समान भावसे मुक्त अवस्थामें लीन होते हुए अमृत भोगके महानन्द ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हर एक स्थानमें इसका अर्थ देखा जा सके। [पाठक इस सूक्तका मनन कां० १।१० १३ और २० इन दो सूक्तों साथ करें]

यहाँ इस प्रथम सूक्तका विचार समाप्त होता है। यदि पाठक इस सूक्तके एक एक मंत्रका तथा मंत्रके एक एक भागका विचार करेंगे, बार उभर अधिक मनन करेंगे, तो उनके मनमें शूद्रशियादी बातें स्वयं स्फुरित होंगी। इस सूक्तमें शब्द पुन पुनके रखे हैं, और हर एक शब्द विशेष भाव बना रहा है। विशेष विचार करनेकी गुप्तता के लिये श्रग्वेद और यजुर्वेद के पाठ भी यहाँ दिये हैं इससे पाठक इसका अधिक मनन कर सकते हैं। वेदों यह विशेष दिया है, इसलिये पाठक इस सूक्तके मननसे कितना अधिक लाभ उठावेंगे उटना अधिक अच्छा है।

यह सबका (धात्युः) धारण पोषण करनेवाला है और (भुवने-स्थाः) संपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हर एक पदार्थमें स्थात है । कोई स्थान उससे खाली नहीं है । वक्तानें जैसा वक्तृत्वं है, उस प्रकार जगत्में यह है, सबभूत यह भूमि ही है । (मंत्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्योंकि पदार्थ मात्र ही सत्ता ही यह है; फिर भूमि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यहा सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है । मनुष्य चन्द्र आरमशांके ये उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिसे ही प्रकाशता है ।

देवोंका अमृतपान ।

इस सूक्तके पाँचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मानें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानताताः समाने योनावप्यैरयन्त ॥ ५ ॥

“उस परमात्मानें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुँचते हैं ।”

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अपना अपनी विभिन्नताकी छोड़कर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहाँ का अनुभव अमृतपीते हैं ।

मुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है मुक्ति और समाधि तो हर एक के अनुभवमें नहीं है, परन्तु सुषुप्ति हर एक के अनुभवमें है । इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं । इस समय मानी घरीरमें रहनेवाले देव- अर्थात् सब इन्द्रिया-अपना भेदभाव छोड़कर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहाँ आत्मानें मोठा लगाकर अमृतानुभव करने हैं । इस अमृतपानसे उनकी सब परावृत्ति दूर होती है और जब सुषुप्ति से इतर ये इन्द्रिया जाग्रतावस्थामें पुनः लौट आती हैं, तब पुनः तेजस्वी बनती हैं । यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिले, तो मनुष्य-घरीर निराशो एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये काम नहीं रहेगा । बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमारी की अवस्था चिन्ताजनक समझी नहीं जाती । परन्तु यदि चार पाँच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्यभी कहते हैं कि, यह रोगी आशय्य हुआ है । इतना महारोग तमोग्रसनस सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपता और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है । इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और मुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और चित्त आनन्द होता होगा ।

पञ्चममें यही मंत्र जोड़े पाठ भेदसे आगवा है यह भी वही देखने योग्य है—

अग्निं ये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।

ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कुणोमि

॥ ४ ॥

याः कृन्दास्तर्मिषीचयोऽक्षकामा मनोमुदः ।

ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराम्योऽकरं नमः

॥ ५ ॥

अर्थ— (अन्-अवशामि आभि.) दोपराहित देखे इन प्राणशक्तियोंके साथ वह (उ स जामे) निधयसे मिला रहता है और (अप्सरासु अपि) इन प्राणशक्तियोंमें भी (गन्धर्वः आसीत्) भूमि आदिपोंका धारक देव विद्यमान है । (आसां स्थान समुद्रे) इनका स्थान अन्तरिक्षमें है, (यत्) जहाँसे (सधः) शीघ्र ही ये (आ यन्ति) जाती हैं और (परा यन्ति च) परे जाती हैं । यह बाध (मे आहु) मुझे बतायी है ॥ ३ ॥

(अग्निं ये दिद्युत्) बादलोंकी विद्युत् में अथवा (नक्षत्रिये) नक्षत्रोंके प्रकाशमें भी (याः) जो तुम (विश्वा-रसु गन्धर्वं) विश्वके वसानेवाले धारक देव की (सचध्वे) प्राप्त करती हो अथवा उसकी सेवा करती हो, इसलिए है (देवो) दवियों ! (ताम्य वः) उन तुमको (इत् नम कुणोमि) निश्चय पूर्वक मैं नमन करता हूँ ॥ ४ ॥

(या कृन्दा) जो बुलानेवाली या प्रेरणा करनेवाली, (तर्मिषी-चयः) रत्नानिको हटानेवाली, (अक्ष-कामा) पालोंकी कामना नष्ट करनेवाली, (मनो-मुद) मनको हिलानेवाली हैं (ताम्य गन्धर्व-एतन्म्य अप्सराम्य) उन गन्धर्व-नीरूप अप्सरामोंको—अर्थात् सर्वधारक आत्माको प्राणशक्तियोंको (नमः अकरम्) मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ— इसके साथ जीवनकी अनन्त कल ए है, इतना ही नहीं परतु वह सन जीवन शक्तियोंके अंदर भी है । इन सबका निवास मध्यलोह-अन्तरिक्ष-है, जहाँसे वे सब शक्तियाँ प्रकट होती हैं और जहाँ फिर गुप्त हो जाती हैं ॥ ३ ॥

बादलोंके अंदर चमकनेवाला विद्युत्में क्या और नक्षत्रोंके प्रकाशमें क्या यह सब जगत्का पालन करने एक रस भरा है, और इसकी सेवा सपूर्ण जीवनकी शक्तिरूप देवियों कर रही हैं, इसलिए उनको भी नमन करना योग्य है ॥ ४ ॥

ये प्राणशक्तियाँ सबको प्रेरणा करनेवाली, सबको चलावेवाली, यथावत्को दूर करवेवाली, आँखोंकी कामना नष्ट करनेवाली और मनको हिलानेवाली हैं । यही आत्माकी शक्तियें हैं, इस दृष्टिसे मैं इनको नमस्कार करता हूँ (अर्थत् वह इनको किया हुआ मैं नमस्कार भी उस अद्वितीय ईश्वरको ही पहुँचाया, क्योंकि ये शक्तियाँ उसीके आधारसे रहती हैं) ॥ ५ ॥

पूर्व सम्बन्ध

प्रथम सूक्तमें “ मुग्ध अप्सराभावया ” का वर्णन किया गया है, उस सूक्तमें जिस परमात्मा देवका वर्णन किया गया है, उसीका वर्णन यहाँ “ गन्धर्व ” शब्द से किया गया है । उस प्रथम सूक्तके द्वितीय मंत्रमें भी “ गन्धर्व ” शब्द है, इससे पूर्व गुणका इस सूक्तके साथ संबंध स्पष्ट हो जाता है ।

७ सूर्यस्त्वम्—महान् सहस्ररश्मी सूर्य भगवान् ही इषवा देह है, अर्थात् यह उस में भी है इतनाही नहीं, परंतु उसका बड़ा तेज भी इसीसे प्राप्त हुआ है। यह इसकी महिमा है (मं. २)। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थोंमें इसकी सत्ता देखनी चाहिए। यह शब्द एक उपलक्षण मात्र है।

८ विष्वा-वसुः (गंधर्वाः)—विश्वका यही निवासक है। (मं. ४)

ये लक्षण स्पष्ट कर रहे हैं कि यहाका यह गंधर्वका वर्णन निःसंदेह परमात्मा का वर्णन है। किसीभी अन्य पदार्थ में ये सब अर्थ पूर्णरूपसे सार्थ नहीं हो सकते। इसलिए पाठक इन लक्षणों का मनन करके अपने मनमें इस परमात्मा देव की भाँति स्थिर करें, क्योंकि यही एक सबके लिए पूजनीय देव है।

ब्रह्मकी ब्राह्म उपासना।

इस परमात्माकी प्राप्ति इसकी उपासनासे होती है। इस सूक्तमें इसकी ' ब्राह्म उपासना ' करनेका विधान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

१ तं त्वा यौमि ब्रह्मणा। (मं० १)

२ नमस्यः। (मं० १, २) नमस्ते अस्तु। (मं० १)

३ विधु ईंध्यः। (मं० १)

४ सुवेवाः। (मं० २)

ये चार मंत्र भाग इसकी ब्राह्म उपासना करनेके मार्ग की सूचना दे रहे हैं। ब्राह्म उपासना का अर्थ ' ब्रह्मयज्ञ ' अथवा मन द्वारा करने की ' मानस उपासना ' ही है। आत्मा बुद्धि चित्त मन आदि अंतःसाधनोंसे ही यह परमात्म पूजा होती है, इन बाह्योंका नामही शरीरमें ब्रह्म है। ब्रह्म शब्दका अर्थ मंत्र भी है और मंत्रका आशय ' मनन ' है। मननसे यह उपासना करनी होती है, मनके मनन से ही यह हो सकती है, किसी अन्य रीतिसे यह नहीं होती है, वह स्पष्टतया बतातेके लिए यहाँ ' ब्रह्मणा ' शब्द इस मंत्र में प्रयुक्त हुआ है। यह बात ध्यान में धारण करके उक्त चार मंत्रभागोंका अर्थ ऐसा होता है—

१ तं त्वा यौमि ब्रह्मणा—उस तुझ परमात्माको मननसे प्राप्त होता हूँ। (मनन)

२ नमस्यः [नमस्ते]—तू ही एक नमस्कार करने योग्य है। (मनन)

३ विधु ईंध्यः—धन जगत्में तू ही प्रशंसा करनेके लिए योग्य है। (धनप्र दर्शन)

४ सु—सुखाः—तूही उत्तम सुखके लिए योग्य है। (सुखन)

इन चार मंत्र भागोंके मननसे मानस पूजाकी विधि ज्ञात हो जावे है। (१) प्रभुके गुणोंका मनसे मनन करना, (२) उसी को मनसे नमन करना, (३) श्रेष्ठ पदार्थ में तब प्राणिमात्रयें उसका दर्शन करना और (४) सब धर्म उसकी सेवा करने के लिए करना, ये चार भाग उस प्रभुकी उपासना के हैं। इन चार भागोंमें से जितने भागोंका अनुष्ठान हुआ होगा, उतनी उपासना उन्नेही प्रमाण से हुई है, ऐसा मनना चाहिए। पाठक विचार करें और अपनी उपासनाकी परीक्षा इस कछोटके पर। हाएक मनुष्य अपने आपकी परमात्माका उपासक मनताही है, परंतु उससे जो उपासना हो रही है, वह इस वैदिक मानस उपासना की उक्त कछोटके स्थिति कीपर गिनी जा सकती है, वह भी देखना चाहिये। इस दृष्टिसे ये चार मंत्र भाग विशेषही महत्त्व रखते हैं।

' मनन, नमन, धनप्र दर्शन और सुखन ' ये चार नाम संक्षेप से मानस उपासना के चार अंगोंके दृष्टक मन जा सकते हैं।

१ "मनन" ये परमात्माके महत्त्वकी मनमें स्थिरता होती है। इस दृष्टिसे इसकी अत्यंत आवश्यकता है।

२ "नमन" जब मननेसे उक्तका महत्त्व ज्ञात हुआ, तब स्वभावतः ही मनुष्य उस प्रभुके सामने आनंद होता

है । मननके पश्चात् की यह स्वाभाविक ही अवस्था है ।

३ “ दर्शन ” मननसे ही उसकी सार्वत्रिक सत्ता का भी अनुभव होता है । स्थिर चरमें एक रस व्यापक होनेका साक्षात्कार होनेकी यह तीसरी उच्च अवस्था है । जगत्के अंदर प्रभुका ही सर्वत्र साक्षात्कार इस अवस्था में होता है ।

ये तीनों मानसिक क्रियाएँ हैं । इसके पश्चात् यह भक्त अपने आपको परमात्माके परम वज्रमें समर्पण करता है, वह सेवा-वस्था है ।

४ “ सेवन ” यह इस अवस्थामें उसका सेवक बनता है । सेवन और ‘भजन’ ये दोनों शब्द समान अर्थके ही हैं— सेवन और भजन एकही अर्थ बताते हैं । प्रभुके कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना, यही भक्ति या सेवा है ।

‘ दीनों का उद्धार ’ करना, सत्पुत्रोंका परित्राण करना, सज्जनोंकी रक्षा करना, दुर्जनोंको दूर करना, ये ही परमात्मा के कर्मे हैं । इन कर्मों को परमात्मार्पण बुद्धिसे करनेका नाम ही उसकी भक्ति या सेवा है ।

नामस्मरण ।

नामस्मरण का भी यही तात्पर्य है, जैसा “ हरि ” (दुःखोंका हरण करनेहारा) देव है, इसलिए मैं भी दुःखितोंका दुःख यथाशक्ति हरण करूँगा और दूसरों को सुख देने के लिये मैं ईश्वर की सेवा करूँगा । ‘ राम ’ (आनंद देनेवाला) ईश्वर है इसलिये मैं भी दीन दुःखी मनुष्यों या प्राणिजोंकी पीडा दूर करनेके लिये द्वारा परमात्माकी भक्ति या सेवा करूँगा । ‘ नामस्मरण ’ का यही उद्देश्य है । यद्यपि आजकल केवल नामका स्मरणही रहा है और उससे प्राप्त होनेवाले कर्तव्य का पालन नहीं होता है, तथापि वस्तुतः इससे महान् कर्तव्य सूचित होते हैं, वह पाठक विचारसे जानें और परमेश्वरके इतने नाम कहनेका मुख्य उद्देश्य समझ लें । अनेक ग्रंथ पढ़ने से जो कर्तव्य नहीं समझता, वह एक नाम के मननसे समझमें आता है, इसलिये वेदादि ग्रंथोंमें परमात्माके अनेक नाम दिये होते हैं और वे सब बड़े मार्गदर्शक हैं, परंतु देखनेवाला और कर्म करनेवाला भक्त चाहिये ।

अस्तु । ईश्वर स्थापना के ये चार भाग हैं, इसमें अधिक विचार पाठक करें और इस मार्गसे चलें । यही सीधा, सरल और अतिप्रथम मार्ग है ।

ब्राह्म उपासना का फल ।

पूर्वोक्त प्रकार मानस उपासना करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका वर्णन भी इन मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं—

१ सं त्वा यौमि-परमेश्वरके साथ मिलना, ब्रह्मरूप अवस्था प्राप्त करना । (मं. १)

२ दैव्यस्य हरस जवयाता-परमात्मा सब महापीडाओंको दूर करनेवाला है, इसलिये सब पीडा उसकी प्राप्ति से दूर हो जाती है । (मं. २)

३ मुदात्-वह आनंद देता है । (मं. २)

इन शब्दोंके मननसे पाठकोंको पता लग जायगा कि, उपासना का फल परमानंद प्राप्ति ही है । वह प्रभु सच्चिदानंद स्वरूप होनेसे उसके साथ मिल जानेसे बड़ी आनंद उपासकमें आ जाता है और जितनी उपासनाकी दृढता और पूर्णता होगी, उतना वह आनंद दृढ और पूर्ण होता है । यह फल प्राप्त करनेकाही पूर्वोक्त वैदिक मार्ग है ।

यदा पहिले दो मंत्रोंका विचार हुआ । इसके पश्चात् के तीन मंत्रोंका वर्णन ठीक प्रकार समझमें आनेके लिये उस वर्णनको प्रथम अपने शरीरमें अनुभव करना चाहिये और पश्चात् बड़ी भाव-विशाल जगत्में देखना चाहिये—

अपने अंदरकी जीवन शक्ति ।

इससे पूर्व बताया गया है कि, जलतत्त्वके आधुनिक कार्य करनेवाली प्राणशक्ति या जीवनशक्ति ही ‘ अमरा ’ शब्दसे इस शक्तिमें कही है, देखिये इसका वर्णन—